"To turn over the mental soil of the world, to break the hard pavements of its set and rigid opinion, so as to allow the ideas of the future to grow."

नये नगर की कहानी

लेखक की अन्य पुस्तकें

—***—

गद्यकाव्य :

१.	पूजा	१६३७, मूल्य १)
२.	शुभ्रा	१६४१, मूल्य ॥)

यात्रा, जन-सम्पर्क :

३.	बुकसेलर की डायरी	१६४७, मूल्य १)

कहानी संग्रह :

४.	किसके लिए	१६४६, मूल्य १)
५.	पत्नियों का द्वीप	१६४६, मूल्य २)
६.	उपजाऊ पत्थर	१६५०, मूल्य १॥=)
७.	पाप का पुण्य	१६५१, मूल्य १॥)

नाट्य कहानियाँ :

८.	पूर्व और पश्चिम	१६५०, मूल्य १।)

नाटक :

६.	प्रबुद्ध सिद्धार्थ	१६५१, मूल्य १॥)

लेखमाला :

१०.	मुझे आपसे कुछ कहना है	१६४७, मूल्य २)
११.	नया समाज : नया मानव	१६४६, मूल्य ॥)

नये नगर की कहानी

(मौलिक उपन्यास)

लेखक :
रावी.

राजपाल प्रकाशन
राजपाल प्रेस, आगरा

मार्च १६५३

मूल्य १।)

मुद्रक तथा प्रकाशक :
बूलचन्द वसूमल
राजपाल प्रेस, आगरा

राजा को

यद्यपि वह इस समर्पण के अधिकारियों में सर्व प्रथम नहीं

भूमिका

नये, अधिक विकसित और सुखी मानव-समाज का कल्पन अनेक प्रसिद्ध कलाकारों और चिन्तकों ने की है और कुछ भविष्यदर्शी माने जाने वाले व्यक्तियों ने भी उसके चित्र विश्व के साहित्य को दिये हैं। प्लेटो का 'रिपब्लिक', सर थामस मूर का 'यूटोपिया', विलियम मौरिस का 'न्यूज़ फ्रॉम नो हेयर', सेमुएल बटलर का 'इरेहान' और 'इरेहान रिविज़िटेड', एच. जी. वेल्स का 'दि शेप ऑफ़ थिंग्ज टु कम,' एलडुअस हक्सले का 'ब्रेव न्यू वर्ल्ड', बरनार्ड शा का 'बैक टु मैथ्यूसिलह', राहुल का 'बाईसवीं सदी' ऐसी ही रचनाएँ और कल्पनाएँ हैं। डाक्टर एनी बीसेंट और बिशप सी. डब्ल्यू. लेडबीटर की पुस्तक 'मैन : हूँस, हाऊ एण्ड ह्विदर' उनके अनुयायियों के क्षेत्र में भूत और भविष्य का इतिहास ही मानी जाती है। उसके अन्तर्गत 'दि बिगिनिंग्ज़ ऑफ़ दि सिक्स्थ रूट रेस' नामक खंड में जिस नये मानव-समाज का चित्र उपस्थित किया गया है वह आज से सात सौ वर्ष आगे के एक मानव-समाज का चित्र है। इस तरह की कल्पनाओं, दर्शनों और आज के बढ़ते हुए विविध क्रान्ति-मूलक आन्दोलनों का इतना अर्थ तो अवश्य है कि मनुष्य विविध संकीर्णताओं और कड़वे-मीठे प्रयोगों की राह चलकर एक सजग और सुखी मानव-समाज की स्थापना के लिए प्रयत्नशील है। और प्रयत्न का फल सृष्टि का एक अनिवार्य नियम है।

मानव-समाज के 'यूटोपिया'-ओं (आदर्श स्थितियों) के चित्र प्रस्तुत करने वाली रचनाएँ विश्व के कथा-साहित्य की

सब से अधिक रोचक और उपयोगी अतएव, इस दृष्टि से, सर्वोच्च कोटि की रचनाएँ हैं।

प्रस्तुत उपन्यास 'नये नगर की कहानी' कला और चित्रण की दृष्टि से कैसा भी हो, आता उसी श्रेणी में है। इसमें किसी यूटोपिया का चित्रण नहीं है। आज के साधारण, अर्द्ध-विकसित और दुर्बलचरित दीखने वाले समाज में से ही किस प्रकार एक नये, सुखी समाज का जन्म हो सकता है, और अभी हो सकता है, यही इस उपन्यास में है। इसमें समय की सबसे अधिक व्यापक माँग का एक उत्तर है। यही इस उपन्यास की अपनी विशेषता है और इसी बल पर इस प्रकार के लोक-पूजित कथा-साहित्य में इसका भी नाम भेजते हुए मुझे कोई विशेष संकोच या विनय के शब्द नहीं कहने हैं।

इस उपन्यास में मैंने कुछ स्थानों और व्यक्तियों के नाम ऐसे दिये हैं जो वास्तविक हैं। अपने आपको भी मैंने इसका एक पात्र रक्खा है। यह मेरे लिखने की एक सुविधाजनक शैली है।

कैलास आश्रम,
सिकन्दरा— आगरा
कनिष्ट दिवस,
२३ दिसम्बर १६५२

राघी.

[१]

उस बार डेढ़ महीने की यात्रा के बाद जब मैं अपने कैलास आश्रम में लौटा तो देखा, मेरे लिखने-पढ़ने की जगह पर एक साधु महाराज ने डेरा डाल रक्खा है। आगरा नगर से कोई पाँच मील पश्चिम, यमुना के तट पर, कैलास महादेव नाम की एक छोटी-सी बस्ती है। उसके एक कोने में बंगाल प्रान्त के राज्य बर्दवान के भूतपूर्व महाराजा की, जो भूमानन्द सम्प्रदाय के आचार्य भी थे, बनवाई हुई एक सुन्दर इमारती गुफ़ा और छतरी है, और सच पूछिये तो इसी यमुना-तट की छतरी के आकर्षण से खिंच कर मैंने इस कैलास बस्ती को अपना साहित्यिक उपनिवेश बना लिया है। लिखने के लिए मैं प्रायः इस छतरी में ही प्रति दिन चला आता हूँ।

तो उस दिन छतरी की ऊपरी सीढ़ियों पर पाँव रखते ही मेरी दृष्टि जब उन महात्माजी पर पड़ी तो मेरा हृदय क्षोभ से भर गया। आजकल के साधु महात्माओं से मैं आमतौर पर घृणा करता हूँ। मैं समझता हूँ कि स्वच्छ, एकान्त और रमणीक स्थानों को स्वस्थ चिन्तकों और कलाकारों के लिए छोड़ कर इन साधुओं को ऐसे मंदिरों और मठों में ही डेरे डालने चाहिएँ जहाँ सदाबरत बँटते हों और जहाँ से चरस और गाँजे के ठेके समीप हों।

छतरी के गोल मंडप के बीचोबीच संगमरमर की वेदी पर

सुखासन से बैठे हुए साधुजी पर मैंने एक असन्तुष्ट, त्योरी चढ़ी दृष्टि डाली और मंडप के नीचे चारों ओर फैले पत्थरों के छोटे-से फ़र्श पर एक कोने में जा बैठा। नई लेखमाला प्रारम्भ करने के विचार से मैंने थैले में से कापी और पेंसिल निकाली, लेकिन इन साधुजी के इस स्थान पर आधिपत्य से मेरा मन इतना क्षुब्ध हो गया था कि मुझे लेख का पहला वाक्य ही ढूँढ़े नहीं मिल रहा था। मेरे मन की अस्थिरता और भी बढ़ गई जब मैंने देखा कि साधुजी अपनी चौकी से उतर कर उस पूरे चबूतरे पर टहलने लगे थे और उनकी इस चहल कदमी का एक सिरा ठीक मेरे सामने मुझसे हाथ भर की दूरी पर पड़ता था।

छठी या सातवीं बार जब वह मेरे सामने पहुँचे तब मेरी सहनशीलता का बाँध टूट गया। मैं उठने को ही था कि न जाने क्या सोच कर रुक गया।

"संग्रह, अपहरण और भय की प्रवृत्तियों को—" मैंने आँख उठाकर देखा, साधुजी मेरे पास खड़े हो कर कह रहे थे, "इन प्रवृत्तियों को आप व्यक्ति और समाज का मौलिक रोग बताते हैं। क्या इन्हीं तीनों प्रवृत्तियों में आप इस समय खुलकर नहीं बरत रहे हैं? आप दिन में दो-तीन घंटे और महीने में बीस दिन और साल में आठ-नौ महीने इस छतरी का उपयोग करते हैं और चाहते हैं कि साल के तीन सौ पैंसठ दिनों के चौबीसों घंटे यह आपके लिए ख़ाली रहे। क्या यह आपकी संग्रह की प्रवृत्ति नहीं है? मैं एक पर्यटक साधु दो दिन से यहाँ आकर रुक गया हूँ और इस पर आपको इतना क्षोभ है। आप चाहते हैं कि मैं इसी समय यहाँ से चला जाऊँ;

क्या यह आपकी अपहरण की प्रवृत्ति नहीं है ? और अपने लेखन और चिन्तन के कार्य में आप मेरे कारण जिन जिन बाधाओं की आशंका करते हैं क्या वे सब ठीक ही निकल सकती हैं और क्या यह आपकी भय की प्रवृत्ति का परिचायक नहीं है ?"

एक ऐसे साधु के हाथों मैं अपनी परीक्षा देने के लिए तैयार नहीं था। मैंने कहा:

"आपके हाथों अपनी प्रवृत्तियों की जाँच-पड़ताल कराने में मेरा या समाज का कोई लाभ नहीं है। आप पढ़े-लिखे आदमी जान पड़ते हैं; तब इतना तो आप सोच ही सकते थे कि एक पढ़ने-लिखने वाले आदमी की लिखने-सोचने की जगह पर लकड़ी-कंडे और चिलम-तमाखू का पसारा फैला देने से उसे कितनी असुविधा हो सकती है और उसके लोकोपयोगी काम में भी कितना हर्ज हो सकता है।"

"आप की असुविधा और आपके लोकोपयोगी काम में हर्ज की बात यदि मैंने अभी तक नहीं सोची तो क्या यह सम्भव नहीं कि अब आपके सुझाने पर मैं इन बातों को सोच समझ लूँ और आपका कोई वैसा हर्ज न होने दूँ ? मेरे इस साधु वेश को देख कर आपका यह अनुमान लगाना कि मैं अहंकारी, अशिष्ट, गंदी आदतों वाला और अपनी भूलों को न देख सकने वाला ही हूँगा, कहाँ तक बुद्धिमत्तापूर्ण है ? दूसरों को सीख-सलाह देने और दूसरों से सीख-सलाह लेने के लिए अपना मस्तिष्क खुला रखने के आप बड़े समर्थक हैं। क्या सम्भव नहीं कि मेरा हृदय आपसे कुछ सीखने के लिए यथेष्ट खुला हो और आप भी मुझसे कुछ सीख सकते हों ?"

"यह सब बिलकुल सम्भव है" मैंने खीझ के साथ कहा, "और आपके इस सदाशय के लिए मैं कृतज्ञ हूँ। आप सम्भवतः मुझे कुछ सिद्धियों और चमत्कारों की साधनाएँ सिखा सकते होंगे और पैसा कमाने के कुछ यंत्र-मंत्र बता सकते होंगे। लेकिन उन सब की मुझे आवश्यकता नहीं है। मेरे हित के लिए—"

"आपके हित के लिए" मेरी बात बीच में काट कर साधु ने कुछ मुस्कराते हुए कहा, "आपके हित के लिए इतना तो मैं करही सकता हूँ कि इस स्थान को आपके लिए निर्विघ्न छोड़ कर चला जाऊँ।"

"आप ऐसा करेंगे तो बड़ी कृपा होगी" मैंने निस्संकोच भाव से कहा।

"तब कल सुबह जब आप अपने समय पर यहाँ आयेंगे तो इस स्थान को ख़ाली पायेंगे।"

"धन्यवाद" मैंने कहा और लोकाचारिक अभिवादन के लिए हाथ जोड़ कर उठ खड़ा हुआ और सीढ़ियों से उतर कर अपने आश्रम की राह ली।

[२]

आश्रम में पहुँच कर मैंने अपनी पत्नी से इस घटना की चर्चा की और दोपहर का भोजन करके विश्राम के लिए लेट गया। घंटे भर की नींद के बाद जब मेरी आँख खुली तब सुबह का वह पूरा दृश्य मेरी स्मृति की आँखों के सामने विशेष स्पष्ट रूप में घूमने लगा। तरुण साधु का वह इकहरा, कुछ छोटे कद और गेहुएँ रंग का शरीर। उसकी आयु तीस और चालीस के बीच ही हो सकती है। आमतौर पर साधु-सन्यासी

जोगिया रंग के वस्त्र पहनते हैं पर यह वसन्ती पीले रंग का एक मदरासी तहमद सरीखा वस्त्र कमर से एड़ी तक, और उसी रंग का दूसरा वस्त्र कमर से ऊपर शरीर पर लपेटे हुए था। उसका चेहरा साधारणतया सुन्दर और कुछ दीप्तिमान भी था। मैंने उससे उस स्थान से चले जाने को कह दिया है। वह स्वयं संकेत न करता तो मैं उससे स्पष्ट रूप में ऐसी बात नहीं कह सकता था। उसने कह दिया है तो वह आज शाम को या कल सुबह तड़के ही चला जायगा। लेकिन उससे मैंने ऐसी बात क्यों कह दी है? मेरा ऐसा कहना कहाँ तक ठीक था? उसके यहाँ ठहर जाने में मेरा वास्तव में कितना हर्ज था? क्या वह सचमुच मेरे काम में बाधक और मेरे ऐसे तिरस्कार का पात्र था? मैंने उसके साथ बहुत अनुचित व्यवहार किया है। मैं सोचने लगा। उसने मेरी ही कही हुई एक बात को ठीक-ठीक पकड़ कर मुझ पर आक्षेप किया था। संग्रह, अपहरण और भय की प्रवृत्ति को मैंने ही अपनी एक पुस्तक में व्यक्ति और समाज की मौलिक बुराई बताया है। क्या उसने वह पुस्तक पढ़ी है? निस्संदेह पढ़ी है। तब वह मेरे लिए एक विशेष मनोरंजक व्यक्ति है। यह बात मुझे उस समय क्यों नहीं सूझी? यह आश्चर्य-जनक है! उसका वह आक्षेप कितना सार्थक और पैना था! मैं सोचता गया। मैंने ताव में भर कर कितनी अशोभन बातें कह डाली थीं। लकड़ी, कंडा, चिलम, तमाखू का पसारा। छतरी के एक कोने में कुछ लकड़ियाँ और कंडे रक्खे हुए थे और उसके पास जलाई हुई आग की राख भी पड़ी हुई थी। लेकिन चिलम और तमाखू का वहाँ कोई चिह्न नहीं था। सम्भव है, रात की शीत से बचने या रोटियाँ सेंकने के लिए वह आग जलाई गई हो। हो सकता है वह गाँजा या तमाखू पीने वाला साधु न हो।

मुझे अपने उस ताव पर हँसी भी आ गई। उस साधु का उत्तर, उसकी सारी बातचीत कितनी संयत और सुरुचिपूर्ण थी! मैंने अब देखा, उस साधु की मुख-मुद्राओं में स्पष्टतया एक विचार-शील व्यक्ति की छाप थी और अपनी बातचीत से तो वह निस्संदेह विशेष शिष्ट और सुशिक्षित जान पड़ता था। लेकिन मुझे उस समय क्या हो गया था? उसकी बातचीत और व्यक्तित्व का मुझ पर उस समय ऐसा प्रभाव क्यों नहीं पड़ा और उसके प्रति इतना अनुचित और अस्वाभाविक व्यवहार मुझसे कैसे बन पड़ा? मुझे ध्यान आया कि स्वप्न की अवस्था में ही मनुष्य मेरा उस जैसा व्यवहार कर सकता है; स्वप्न में ही उसे आश्चर्यजनक बातों के सामने आने पर आश्चर्य नहीं होता और वह साधारणतया अनुचित और अस्वाभाविक व्यवहार बहुत सहज भाव से कर जाता है। तब क्या यह सम्भव नहीं कि वह सब कोई सपना ही हो? ऐसी सम्भावना तो नहीं है, फिर भी मुझे अपना संदेह मिटा लेना चाहिए।

इसी समय मुझे जगा देख कर पत्नी समीप चली आई और उससे मेरी विचारधारा कुछ टूटी।

"तुमने आज उस बेचारे साधु की जिस तरह खातिर की वह एक अजीब-सी बात रही। आखिर वह साधू कौन था, कैसा था? कहाँ से आया था? तुमने उससे कुछ पूछा भी नहीं?" पत्नी ने कहा। उसके स्वर में विस्मय और आरोप का पुट था।

"इस सब का उत्तर तुम्हें सोच समझ कर दूँगा" मैंने कहा और पास की खिरनी के पेड़ के नीचे खेलते हुए एक बालक को पुकार कर अपने पास बुला लिया और साधु के नाम

एक परचा लिखा :

साधुजी,

सबेरे मेरी-आपकी जो बातचीत हुई उस पर आप अधिक ध्यान न दें, क्योंकि आप साधु हैं। आप अभी कहीं दूसरी जगह जाने का विचार न करें। मैं आज रात को या कल सुबह आज के ही समय पर वहाँ आऊँगा। आप से कुछ आवश्यक बात करनी है। अपना उत्तर इसी लड़के के हाथ लिख कर भेजने की कृपा करें। आपका

रावी.

लड़के को समझा कर मैंने यह परचा और एक पेंसिल देकर साधु के पास भेजा। दस मिनट के भीतर वह उसका उत्तर लेकर आ गया। मेरे परचे में नीचे उसने लिख दिया था:

यही सही। वे. अचलम्.

[२]

अगले दिन सुबह अपने समय पर ही मैं छतरी में पहुँचा। साधु ने सीढ़ियों तक आकर मुस्कराते हुए मेरा स्वागत किया।

"मेरा नाम वेंकटाचलम् है और आप मुझे केवल वेंकट कह कर पुकार सकते हैं" उसने हाथ बढ़ाकर मेरा हाथ पकड़ते हुए आंग्ल तत्परता के साथ शुद्ध उत्तर प्रदेशीय लहजे में कहा। नाम से उसका मदरासी होना स्पष्ट ही था।

"सब से पहले मैं कल की बात के लिए आप से क्षमा माँगना चाहता हूँ" मैंने कहा।

"वह तो मैं दे ही चुका हूँ" साधु ने वैसे ही मुस्कराते हुए कहा, "और क्षमा से अधिक आपको इस समय मेरे परिचय की आवश्यकता है।"

"निस्संदेह" मैंने संकोच से मानो मुक्ति पाकर कहा।

"आप मेरे ये कपड़े देखते हैं। ये पीले इसलिए नहीं हैं कि मैं किसी पीताम्बर सम्प्रदाय का साधु हूँ, बल्कि इसलिए कि जिस रासायनिक तरल मिश्रण में ये रँगे गये हैं वह पीला ही है। इस रँग में रँगा हुआ वस्त्र कभी मैला नहीं होता और उसमें किसी प्रकार की चिकनाहट या दुर्गन्ध का प्रवेश नहीं हो सकता।"

"यह विज्ञान की कोई नई खोज होगी। तब आप साधु नहीं हैं?" मैंने पहले से भी अधिक आश्चर्य के साथ दूसरी बात पूछी।

"साधु क्यों नहीं हूँ?" उसने माथे पर विरोध की सलवटें उभारते हुए विनोद के स्वर में कहा, "मैं साधु न होता तो ऐसे, मेरा मतलब है इतने कम और सादे, कपड़े क्यों पहनता और इस एकांत कुटी में क्यों आता?"

"साधु तो आप हैं ही" मैंने अपना अभिप्राय स्पष्ट करने के लिए कहा, "मेरा पूछने का मतलब यह है कि आप किसी सम्प्रदाय विशेष के कोई विशेष साधना करने वाले साधु तो नहीं हैं!"

"अवश्य हूँ। मेरा साधुओं के एक विशेष सम्प्रदाय से सम्बन्ध भी है और मेरी एक विशेष साधना भी है। बहुत सम्भव है, उसी सम्प्रदाय और उसी साधना से आपका भी नाता हो।"

मुझे साधु की यह बात, विशेष कर अन्तिम बात बहुत हलकी-सी लगी। यह साधुजी भी मुझे सम्भवतः अपना 'शिष्य बनाने की चिन्ता में हैं, मैने सोचा, तभी ऐसे नाते की बातें कह रहे हैं।

"इस गुफा के पास उस मठ में" मैंने सामने के एक मठ की ओर संकेत करते हुए कहा, " एक बार और एक स्वामीजी आकर ठहरे थे। उनमें बहुत-सी खूबियाँ थीं और मेरा उनका काफ़ी स्नेह हो गया था। साहित्य और कला में उनका बहुत अनुराग था और उनकी परख भी अच्छी थी। लेकिन एक दिन जब बात ही बात में मैंने उन्हें बताया कि योग और वैराग्य की साधनाओं में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है और मैं किसी को भी अपना गुरु बनाना कभी पसंद नहीं कर सकता, तब उसी दिन से उनका स्नेह ढीला पड़ गया। सच बात यह है कि मुझे गुरुडम से, संप्रदायों और उनकी साधनाओं से हार्दिक विरक्ति है।"

"लेकिन क्या आपको गुरु और शिष्य के वास्तविक सम्बन्ध की, विभिन्न या किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय और उसकी साधनाओं की जानकारी है? ऐसी जानकारी आपने कभी गहराई में पैठकर प्राप्त की हो तब तो आपकी ऐसी विरक्ति या अनुरक्ति का कुछ अर्थ हो सकता है।"

मैं नरम पड़ा। बोला: "आज के साधु-महात्माओं का अपने शिष्यों के साथ मैं आमतौर पर जो सम्बन्ध देखता हूँ, सम्प्रदायवादी साधुओं की जो रहन-सहन और विचारधारा और उनकी साधनाओं का जो लक्ष्य देखता हूँ उसमें मुझे ऊँचाई कम और छिछलापन और बुराई ही अधिक दीख पड़ती है।"

"सम्भव है। सम्भव है, जिनको आपने अभी तक देखा हो उनमें ऐसा छिछलापन और बुराई रही हो, और यह भी

सम्भव है कि वैसा दीखने में कहीं-कहीं आपकी आखों का ही कुछ दोष रहा हो। क्या यह सम्भव नहीं है ?"

"हो सकता है।" मैं कह कर सोचने लगा।

"आप जिस वस्तु को देखते हैं, तुरंत ही अपनी पिछली जानकारी के बल पर उसका नामकरण करने के लिए उतावले हो जाते हैं। वह साधु और उससे कुछ नीचे धरातल पर बैठ कर उसकी बात सुनने वाले साथी– यह गुरुडम है। अमुक रंग के वस्त्र पहनने वाला और अमुक प्रकार से रहने-सहने वाला साधक – यह संप्रदायवाद है। गुरुडम और सम्प्रदाय-वाद बुरी चीज़ें हैं, इसलिए वह 'गुरु' और वह सम्प्रदाय बुरे हैं। आप ऐसा ही सोचते हैं न ? यह आज के मानव का, पढ़े-लिखे सभ्य मानव का स्वभाव है।"

"मेरी इसमें ग़लती हो सकती है। हो सकता है, गुरु-शिष्य के कुछ सम्बन्धों में और कुछ सम्प्रदायों की साधनाओं में बड़ी अच्छाइयाँ होती हों। मैंने उन्हें अभी देखा नहीं है। मेरा इस सम्बन्ध में कोई हठ नहीं है।"

"वह स्वामीजी" साधु ने हँसते हुए मेरे कन्धे पर हाथ रख कर कहा, "वह शायद गुरु-पद पर पहुँचे हुए नहीं थे इसीलिए आपको अपना शिष्य नहीं बना सके। मुझे आप उतना कच्चा न समझें।"

मैंने अब अकस्मात् सावधान होकर देखा, मैं छतरी के मंडप पर अपने नित्य के स्थान पर एक नरम कुशासन पर बैठा था और वह साधु मेरे पास ही नंगी शिला पर दोनों पैर एक ओर को मोड़े हुए सुखासन से बैठा था। सारी जगह अच्छी तरह झाड़-पोंछ कर साफ़ की हुई थी। लकड़ी-कंडे

मंडप और उसके फर्श से दूर नीचे एक कोने पर चुन दिये गये थे। साधु का अन्य सामान, मैंने अनुमान लगाया, छतरी के नीचे गुफा की किसी कोठरी में था। यह सब व्यवस्था कुछ-न-कुछ मेरे कारण भी की गई थी। साधु के पास संभवतः बैठने का एक ही आसन है और मेरे सत्कार के लिए उसने मुझे ही वह दे रखा है। मैं इस सबसे प्रभावित हुआ।

कुछ क्षणों की निस्तब्धता के बाद साधु ने कहना प्रारम्भ किया :

"जीवन स्वयं ही साधना है और कोई भी सच्ची साधना हाथ में आने पर नीरस या कष्ट-साध्य नहीं हो सकती। बिना साधना के जीवन असम्भव है। जीवन की व्यापक या उसकी किसी भी एकांगी साधना में प्रविष्ट होने के लिए मनुष्य को किसी न किसी सम्प्रदाय में प्रवेश करना पड़ता है। यह अनिवार्य है। ऊँचे और अधिक व्यापक जीवन में सम्प्रदाय का वही अर्थ है जो साधारण और दैनिक चेतना के सीमित जीवन में समाज का है। और समाज का अर्थ है, जैसा कि आप जानते ही हैं, किन्हीं भी दो या अधिक मनुष्यों के बीच व्यावहारिक सम्बन्ध। इस प्रकार जहाँ भी दो या अधिक मनुष्यों के बीच आन्तरिक और व्यापक सम्बन्ध होता है वहाँ एक सम्प्रदाय का जन्म हो जाता है। सम्प्रदाय और सम्प्रदायों से, उन्हें इस अर्थ में देखकर, क्या आप सचमुच घृणा कर सकते हैं?"

"सम्प्रदाय का यह अर्थ नया है" मैंने कहा, "और इस अर्थ में मेरा किसी भी सच्चे सम्प्रदाय से झगड़ा नहीं है। ओछे स्वार्थ वश दिखावा और पाखंड करने वालों की बात

अलग है। आपका किस सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्ध है, क्या आप बता सकते हैं ?"

"आप उसका अनुमान लगा सकते हैं" साधु ने मुस्कराते हुए मेरी आँखों में दृष्टि जमाकर कहा।

"भूमानन्द सम्प्रदाय ?" अनायास मेरे मुँह से निकल गया। कहते कहते मुझे ध्यान आया कि हम भूमानन्द सम्प्रदाय के आचार्य राजर्षि विजयचन्द्र मेहताब की बनवाई गुफा के ऊपर बैठ कर ही ये बातें कर रहे हैं !

"ठीक है। मेरे गुरु भूमानन्द सम्प्रदाय के ही साधक थे। लेकिन मैं भूमानन्दी नहीं हूँ।"

साधु की इस बात से मेरा कुतूहल जाग उठा। "आपके गुरु भूमानन्द सम्प्रदाय के हैं और आप नहीं हैं, यह कैसी बात है? आपका मत या साधना आपके गुरु से भिन्न है, यह कैसे सम्भव है ?"

"मेरे गुरु का विकास एक दिशा में है और मेरा दूसरी दिशा में। उनका मार्ग ज्ञान योग का है और मेरा कर्म योग का। उन्होंने मुझे अपने सम्प्रदाय की प्रमुख साधना में दीक्षित न करके कर्मयोग की ही दीक्षा दी है, क्योंकि मेरे पूर्व संस्कार इसी मार्ग के थे। यह बिलकुल सहज सीधी-सी बात है।" बात समाप्त कर साधु मेरी ओर देखता हुआ मुस्करा रहा था।

"गुरु का मत और, और शिष्य का और, यह भी मेरे लिए एक नया समाचार है। मैं इसे एक नये सम्मान की दृष्टि से देख रहा हूँ। लेकिन यदि आप भूमानन्दी नहीं हैं तो आप कैसे कहते हैं कि साधना में प्रवेश के लिए किसी न किसी

सम्प्रदाय में प्रवेश आवश्यक है? या आपका सम्प्रदाय भूमानन्दी से भिन्न कोई दूसरा है?" मैंने पूछा।

"मैंने बताया कि मेरे गुरु ने मुझे भूमानन्दी सम्प्रदाय की प्रमुख साधना में दीक्षित नहीं किया; लेकिन अपने मार्ग की साधना में प्रवेश करने के लिए तैयारी की प्रारम्भिक साधनाएँ तो मैंने उसी सम्प्रदाय के अनुसार कीं। इस प्रकार उस सम्प्रदाय से मेरा सम्बन्ध अनिवार्य रूप में हुआ ही।" साधु ने समाधान किया।

"इन बातों से अनेक नये प्रश्न उठते हैं" मैंने उत्सुक होकर कहा, "एक तो यह कि आपके गुरु सिद्ध पुरुष नहीं, एक साधक ही थे। अपने गुरु को केवल साधक बतानेवाले आप पहले ही साधु मुझे मिले हैं। दूसरी बात यह कि भूमानन्द सम्प्रदाय ज्ञानमार्ग का सम्प्रदाय है, कर्म या भक्ति मार्ग का नहीं। मेरे ये अनुमान ठीक हैं न?"

"ठीक और बेठीक, आपके प्रश्न और अनुमान तो असंख्य उठेंगे। उनकी चर्चा हमलोग काफ़ी समय मिलने पर कर सकते हैं। पहले हमें अपने विशेष अभिप्राय की बातें करनी हैं। आपके पहले प्रश्न का उत्तर मैं यही दे सकता हूँ कि संसार में पूर्ण सिद्ध या निरा असिद्ध कोई भी नहीं है। इस सारे मंडल का अधिष्ठाता देव, जो हमारे भूलोक के ऋषियों, मुनियों, सिद्धों और देवताओं की परमगति है, वह भी अपनी श्रेणी की किसी साधना में संलग्न है और उसका भी विकास हो रहा है। दूसरे प्रश्न का उत्तर यह है कि सामान्यतया किसी भी सम्प्रदाय में रह कर ज्ञान, भक्ति या कर्म मार्ग का साधक अपना विकास कर सकता है और उस सम्प्रदाय की साधनाओं को

बीच की किसी भी मंज़िल से छोड़ कर किसी अन्य सम्प्रदाय में भी सम्मिलित हो सकता है या बिना सम्मिलित हुए भी एकाकी बढ़ सकता है। इसके बाद आपका तीसरा प्रश्न होगा कि ब्रह्म-चेतना में लीन हो जाने वाले सिद्धों के लिए विकास की कौन सी दिशा शेष रह जाती होगी। ऐसे प्रश्न कोरे शाब्दिक मात्र और व्यर्थ कुतूहल के प्रश्न होंगे। इसलिए आप आज्ञा दें तो हम इस समय अपने काम की ही कुछ बातें करें।" साधु ने कहा।

"अवश्य" मैंने सहमति दी।

"आपको मुझसे कुछ आवश्यक बात कहनी थी, आपने लिखा था। पहले उसे ही समाप्त कर लीजिए।"

"मेरी आवश्यक बात हो चुकी है। मैं आपकी बात सुनने के लिए उत्सुक हूँ।"

"आपने नये समाज और नये मानव की कल्पना की है। वह बहुत कुछ सार्थक है और उसका कुछ रचनात्मक मूल्य भी है। प्रत्येक संकल्पपूर्ण कल्पना का कुछ न कुछ रचनात्मक मूल्य होता है। यह समय सचमुच महान् आन्तरिक परिवर्तनों का है और बाहर जो हलचलें दीखती हैं वे उनका आंशिक आभास-मात्र हैं। एक नये समाज और नई मानव जाति की रचना के लिए इस समय तैयारियाँ पूरे ज़ोर-शोर पर हैं।" उसने कहा।

"मैं भी ऐसा ही कुछ अनुभव करता हूँ। ये महान् आन्तरिक परिवर्तन क्या हो रहे हैं, आप मुझे कुछ बता सकेंगे तो यह मेरे लिए अत्यन्त रुचिकर प्रसंग होगा। आपने मेरी वह लेख-माला 'नया समाज: नया मानव' पढ़ी है?" मैंने एक मीठे अहंकार का अनुभव करते हुए कहा।

"मैंने उसे पढ़ा है और उसके बाद मुझे आपकी सभी रचनाएँ पढ़नी पड़ी हैं। उनमें आजके आन्तरिक परिवर्तनों की ही प्रेरणा है। उन परिवर्तनों को आप कुछ अधिक स्पष्ट रूप में देखेंगे। आपने नये मानव और नये समाज की कल्पना की है, मैं नये मानवों के एक नये नगर का निर्माण करना चाहता हूँ। यही इस समय मेरा मुख्य काम है और इसमें मुझे आपके सहयोग की आवश्यकता है।"

नये नगर का निर्माण! मैं चौंका। साधु के चेहरे पर और आँखों में उसके समूचे व्यक्तित्व को खोजने का प्रयत्न करती हुई एक पैनी दृष्टि मैंने डाली। मैंने कहा :

"आप एक नये नगर का निर्माण करना चाहते हैं, लेकिन उसमें बसने के लिए नये मानव कहाँ हैं? नगर-निर्माण के लिए आवश्यक धन-साधन, परिचय और प्रभाव क्या आपके पास मौजूद हैं?"

साधु मुस्कराया। उसकी आँखों में एक नई चमक दौड़ गई। बोला :

"नये मानव दो तो यहीं प्रत्यक्ष मौजूद हैं। मैं समझता हूँ, हम दोनों के हृदय और मस्तिष्क नई मनस्विता और नई चेतना के लिए खुले हुए हैं। उस चेतना की व्याख्या हम आगे देखते चलेंगे। और यदि अपने सम्बन्ध में आपकी धारणा अनुचित दम्भपूर्ण नहीं है तो आपको यह स्वीकार करने में अधिक कठिनाई न होगी कि हम-आप जैसे, या कम-से-कम आप जैसे साठ हज़ार मनुष्य इस देश में सहज ही निकल आयेंगे। नया नगर बसाने के लिए तो प्रारम्भ में छह हज़ार

से ही काम चल जायगा। दूसरे धन-साधन आदमी के पीछे स्वयं ही लगी आने वाली वस्तुएँ हैं।"

"लेकिन उन छह हज़ार व्यक्तियों को एकत्र करना भी क्या कोई आसान काम है? आप इसे कैसे करेंगे? क्या आप समझते हैं कि वे छह हज़ार व्यक्ति धनवान और साधन-सम्पन्न होंगे और उनमें से हरेक आपके नये नगर में आने के लिए तैयार हो जायगा और एक एक कोठी बनवाने के लिए रुपया लगा सकेगा?"

"क्या कुछ कैसे होगा, यह कहने-सुनने से नहीं, करने और देखने से ही आपके सामने आता जायगा। मैं इस काम की अपनी योजना आपके सामने रक्खूँगा, वह जैसे जैसे आपकी समझ और पसंद में आती जाय, आप अपनी रुचि के अनुसार उसमें मेरा हाथ बँटाते जायँ। मुझे विश्वास है कि यह काम आपकी विशेष रुचि का होगा।"

"निस्संदेह, संकुचित मानसिकता, सँकरे स्वार्थों आदि से पीड़ित संसार में कहीं-कहीं समझदार और सुखी मनुष्यों के कुछ उपनिवेश बन सकें तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है? वे सारी मानव जाति के लिए मरुस्थल में मरुद्यानों का काम करेंगे। ऐसा कोई नगर मेरी आँखों के सामने बसे और उसके निर्माण में मेरा भी कोई हाथ हो, इसे मैं अपने सबसे बड़े सौभाग्य की बात मानूँगा। लेकिन वैसे नगर के निर्माण की आशा रखने के लिए मुझे आपके हाथों कुछ योगिक चमत्कारों की भी आशा करनी पड़ेगी। इस काम को उठाने के लिए आपमें अवश्य कुछ दैवी सिद्धियाँ-शक्तियाँ होंगी।" मैंने कहा।

"सहर्ष आप ऐसी आशाएँ कर सकते हैं" साधुने हँसते हुए कहा, "अगली बार आप मुझे आज शाम को मिलेंगे या कल सबेरे ही ? इस समय तो काफ़ी देर हो गई है।

"मैं शाम को भी आ सकता हूँ, आना चाहूँगा। इस समय आपका भोजन— ?"

"अभी आपके घर नहीं" साधु ने बीच में ही कहा, "मेरे भोजन का यहाँ पूरा प्रबन्ध है; और किसी दिन सुविधा से मैं आपके साथ भोजन करूँगा। मुझे आशा है कि आप अब कुछ दिन मुझे इस स्थान पर ठहरने की आज्ञा दे देंगे।" अंतिम बात कहते-कहते वह फिर हँस पड़ा।

"अब आपको यहाँ से जाने के लिए ही मेरी आज्ञा लेनी आवश्यक होगी।" मैंने उठते हुए नमस्कारपूर्वक कहा और चल दिया।

"नये नगर का निर्माण !" मैं रास्ते में सोचता चला, क्या यह अफ़ीमचियों के मन-मोदक से भिन्न कोई बात हो सकती है। और यह साधु, इसमें सज्जनता और सहृदयता तो भरपूर जान पड़ती है, थोथा दम्भ भी कोई नहीं दीख पड़ता। वाक्पटुता और बुद्धि की कुशाग्रता भी उसमें यथेष्ट दीख पड़ती है। हो सकता है, कुछ सिद्धि-शक्ति भी उसने प्राप्त की हो। उसके विचार स्वतंत्र और मौलिक जान पड़ते हैं। नये नगर के निर्माण से उसका वास्तविक अभिप्राय क्या हो सकता है ? उसकी वह योजना क्या हो सकती है ? मेरे प्रति तो उसने गहरी पुरानी-सी आत्मीयता प्रकट की है। वह कौन, क्या हो सकता है ? निस्संदेह वह एक रहस्यपूर्ण व्यक्ति है और उसमें मेरी रुचि जाग उठी है। इन्हीं विचारों

में निमग्न मैं अपने निवास स्थान पर आ पहुँचा और पत्नी ने उस दिन की आई हुई चिट्ठियाँ मेरे हाथ में रख दीं।

[४]

शाम को छतरी पर पहुँच कर मैंने देखा, साधु के सामने एक बड़ा नक्शा फैला हुआ है और वह उसके निरीक्षण में तन्मय है। मेरी आहट पाते ही उसने मुझे पास ही बैठ जाने का संकेत किया और कुछ क्षण बाद निवृत्त होकर मुझसे कहा :

"यह हमारे नये नगर का प्लान-मैप है। आज अभी ही यह मेरे पास पहुँचा है। हम आज ही उस स्थान को देखने चलेंगे। आपको कोई असुविधा तो नहीं है ?"

मैंने नक्शा अपनी ओर घुमा लिया। देखा, सचमुच वह नदी के तट पर बसे एक नई बनावट के नगर का मैप-पेपर पर बना हुआ नक्शा था। मेरा कुतूहल जाग उठा। तब क्या सचमुच इस साधु के पास एक नया नगर बसाने के साधन हैं और सचमुच इसकी कोई वैसी योजना है ? यह नक्शा तो अवश्य किसी उच्च कोटि के इंजीनियर का बनाया जान पड़ता है, नक्शा देखते हुए मैं सोचने लगा।

"दिल्ली की गाड़ी आठ बजे जायगी। अभी सवा-पाँच का समय होगा। आप एक घंटे के भीतर भी तैयार होकर आ जायँ तो हमें आसानी से वह गाड़ी मिल सकती है।"

साधु का यह आदेश मन ही मन मुझे बुरा-सा लगा। वह मुझसे ऐसे अनुसरण और आदेश-पालन की आशा क्यों करता है ? मैं उसे अभी जानता नहीं हूँ, उसे अपना गुरु नहीं मान चुका हूँ, उसकी योजनाओं और साधनों का कोई

परिचय मुझे उससे अभी तक नहीं मिला है। मैंने उसे अपने सहयोग या समर्थन का कोई वचन अभी नहीं दिया है। ऐसी दशा में उसका मुझसे इस तरह की बात कहना कहाँ तक उचित है? लेकिन उसके व्यक्तित्व और उसकी केवल नाम ली हुई योजना ने मेरी उत्सुकता को तो जगाया ही है। सम्भव है वह मेरी ऐन रुचि की बात निकले। मैंने उसके प्रस्ताव को स्वीकार करना ही ठीक समझा। लेकिन आठ बजे दिल्ली के लिए कौन सी गाड़ी जाती है? मैंने कहा :

"आठ बजे तो दिल्ली के लिए शायद कोई गाड़ी नहीं जाती।"

"बम्बई-दिल्ली पसेंजर जो साढ़े चार बजे राजा मण्डी स्टेशन पर आता है, आज साढ़े तीन घंटे लेट है। वही हमें मिल जायगा।"

"आपको ऐसी सूचना मिल गई है तो ठीक है" मैंने कहा, "मैं अभी पौन घंटे के भीतर तैयार होकर आ जाता हूँ। ताँगे के लिए हमें सिकन्दरा तक शायद पैदल ही चलना होगा।"

"जैसा होगा कर लेंगे। आप जल्द ही तैयार होकर यहीं आ जाइये।" उसने कहा। मैं चल दिया और ऊपर की दो सीढ़ियाँ उतरते ही मुझे ध्यान आया। उलट कर मैंने पूछा :

"इस सफ़र के लिए मुझे कितने रुपये साथ लेने होंगे? कहाँ तक चलना होगा?"

"रुपये" साधु ने मुस्कराते हुए कहा, "बिना टिकट सफ़र करने के बारे में आपका क्या विचार है?"

"उस काम के बारे में मेरा अच्छा विचार नहीं है। बीस बरस पहले बचपन में केवल एक बार मैंने बिना टिकट सफ़र किया था और एक मुसाफ़िर के हाथों अपने हाथ की अँगूठी मुझे कुछ दाम पर बेच कर चौगुना किराया टी. टी. आई. को देना पड़ा था। इसके अतिरिक्त मैं वैसे भी इस काम को अपने देश और सरकार के प्रति विश्वासघात और कठोरता मानता हूँ।" मैंने उत्तर दिया।

"आपका ऐसा विचार है तो हम टिकट लेकर ही चलेंगे। लेकिन इसके लिए आप अपने पास से एक पैसा भी न ले चलें।"

"आपकी जैसी इच्छा," मैंने कहा और चल दिया। वास्तव में उस समय मेरे लिए इस यात्रा पर एक रुपया भी ख़र्च करना कठिन था।

एक घंटे के भीतर ही मैं तैयार होकर साधु के पास पहुँच गया। राजगुफा से चलकर सड़क पर पहुँचते ही हमें एक खाली ताँगा सिकन्दरा की ओर लौटता हुआ मिल गया। उसने हमें राजामंडी स्टेशन पहुँचा दिया। किराया साधु ने अदा कर दिया।

गाड़ी आने में अभी आध घंटे की देर थी। हम दोनों प्लेटफ़ार्म पर टहलने लगे। टिकट ख़रीदने का प्रश्न मेरे मन में उठ आया था और मैं कुछ कहने की ही सोच रहा था कि उसी समय सामने से एक युवती ने समीप आकर मुझे हाथ जोड़ कर अभिवादन किया और सेकंड क्लास के दो टिकट साधु के हाथ में रखते हुए एक अपने पास रख लिया।

"इनका नाम रत्ना कुमारी है। इनके पति दिल्ली के एक

अच्छे इंजीनियर हैं।" साधु ने मुझे युवती का परिचय देते हुए, और फिर मुझे लक्ष्य कर युवती को सम्बोधित करते हुए कहा, "और इन्हें तो आप जानती ही हैं।"

'जानती ही हैं!' मैंने चकित दृष्टि से उस युवती की ओर देखा। गौर वर्ण, कुछ ठिगना, दोहरा-सा सुगठित शरीर, आधुनिक सुरुचिपूर्ण वेश-भूषा, साधारणतया सुन्दर रूप और आयु अधिक-से-अधिक तीस के भीतर। साधु के संकेत पर युवती ने अपने पीछे आये हुए कुली को आदेश दिया और उसने मेरा बैग, कम्बल और साधु का थैला जो हमने पास ही एक बेंच के सहारे रख दिये थे, उठा लिये। युवती पुल के नीचे पत्थर की बैंच पर आकर बैठ गई। वहाँ उसका बक्स, बिस्तर आदि सामान पहले से ही रक्खा हुआ था।

हम फिर टहलने लगे। साधु मौन था। मैं युवती की बात सोचने लगा। वह कौन है और इस साधुसे उसका कैसा परिचय है। वह मुझे जानती है। कितना जानती है? शायद इस साधु ने उसे मेरा नाम बताया होगा। मैंने साधु से युवती का कुछ और परिचय पूछने का उपक्रम किया, पर साधु के मौन मुख पर चिन्तन की गहरी छाया देखकर मेरा साहस न हुआ। मैं अपने विचारों में ही तन्मय हो गया। यह साधु, यह युवती, इन्जीनिर, नया नगर, दिल्ली। फिर एकबार मुझे खीझ हुई कि मैं क्यों इस साधु के पीछे बँधुआ-सा लग रहा हूँ। अपनी पूरी बात मेरे सामने रक्खे बिना यह क्यों मुझ पर इतना अधिकार जमा रहा है? इसने मुझे इस युवती का और भी परिचय क्यों नहीं दिया? मेरी विचारधारा इन्हीं विषयों पर होकर बहने लगी।

गाड़ी आई और हम तीनों सेकंड क्लास के एक डिब्बे में आराम से बैठ गये। इधर-उधर की कुछ अनावश्यक-सी बातों के बीच युवती ने अपना बड़ा टिफ़िन कैरियर खोला और बक्स से तीन बड़े प्लेट निकाल कर उन पर भोजन परोस दिया—पूड़ियाँ और आलू का साग। भोजन के उपरान्त साध ने मुझसे कहा :

"मैं पिछले साठ घंटों से सो नहीं पाया हूँ। आज्ञा दें तो कुछ देर नींद लेलूँ। चार घंटे का सफ़र इस गाड़ी में करना है।"

मेरी स्वीकृति पाकर वह ऊपर की बर्थ पर जा लेटा। मैं और वह युवती ही अब उस बर्थ पर रह गये। उस छोटे से डब्बे में सामने की बर्थ पर एक सज्जन अध-सोये-से लेटे थे और उनके पैरों की ओर एक बृद्ध महिला बैठी हुई थी। बग़ल में केवल एक बर्थ और थी और उस पर चार कुछ देहाती ढंग के यात्री बैठे बातचीत कर रहे थे। उन्हें थोड़ी ही दूर जाना था।

युवती बर्थ के एक कोने पर सटी हुइ बैठी थी और दूसरे कोने पर मैं था। बीच में एक छोटा अटैची केस रक्खा था। हम दोनों ही मौन थे। मैं उसकी ओर कभी-कभी देख लेता था और मैंने देखा यही वह भी कर रही थी। कभी-कभी हमारी निगाहें एक दूसरे की पकड़ में भी आ जाती थीं। मैं उससे बात करना चाहता था, पर स्वयं न बोलने वाली युवतियों से परिचय बढ़ाने का मेरा अभ्यास बिलकुल नहीं था। वह मुझे विशेष लजीली और भावुक भी जान पड़ती थी। प्लेटफ़ार्म पर प्रथम अभिवादन के समय से उसकी चुप्पी और

दूर-दूरा, साधु के मुख से उसका इतना नगण्य-सा स्वल्प-परिचय और इस समय भी उसका ऐसा संकोच—ये कुछ ऐसी बातें थी कि मेरा उससे एक शब्द भी बोलने का साहस नहीं पड़ता था। मैं उससे कहूँ-पूछूँ भी तो क्या? उसका कुछ और परिचय? उसके पति किस विभाग के इंजीनियर हैं? साधु का परिचय? वह मेरे बारे में क्या जानती है? हम लोग कहाँ चल रहे हैं? उसे इस नये नगर की योजना के बारे में कितनी जानकारी है? दिल्ली गाड़ी कै बजे पहुँचेगी? लेकिन ये सब प्रश्न नाज़ुक हो सकते हैं, जब कि साधु की और उसकी ओर से भी ऐसे गूढ़ मौन का पालन हो रहा है।

आखिर हमारी उस रेल-यात्रा के चार घंटे इस मौन में ही बीते। मुझे अपनी इस वाग्भीरुता पर खीझ भी आई और हँसी भी। अन्त में जब गाडी एक स्टेशन पर पहुँचने के लिए धीमी हुई, तब ऊपर की बर्थ पर साधु ने करवट बदली और गाड़ी थमने के पहले ही नीचे उतर आया।

"हम यहीं उतरेंगे" साधु ने कहा और अपना झोला उठा लिया। मैं भी अपना बेग सम्हाल कर खड़ा हो गया। कोई छोटा-सा स्टेशन था, जिसका नाम भी मैं नहीं पढ़ सका। कुली यहाँ कोई नहीं होगा, सामान हमें ही मिल कर उतारना होगा, मैंने सोचा। युवती के बकस को बर्थ के नीचे से खिसकाने के लिए ज्योंही मैंने हाथ बढ़ाया, वह बोल उठी :

"मैं तो दिल्ली ही उतरूँगी। आप और वेंकट दादा ही यहाँ उतरेंगे।"

साधु के पीछे-पीछे मैं गाड़ी से नीचे उतरा। युवती ने

फिर एक बार मुझे हाथ जोड़ कर अभिवादन किया। गाड़ी चलदी। हम प्लेटफ़ार्म से बाहर आये।

"यह कौन-सा स्टेशन है?" आखिर मैंने साहस करके साधु से पूछा हीं। दिल्ली यहाँ से दो-तीन स्टेशन ही दूर रह गई होगी, इतना अनुमान मुझे था।

"कह नहीं सकता।" चाँदनी के धीमे प्रकाश में मैंने देखा, साधु की स्वाभाविक मुस्कान कहते-कहते उसके होटों पर खिल आई थी, "यह तो आप देख ही रहे हैं कि आपकी आँखों पर पट्टी और ज़बान पर ताला लगा कर आपको यहाँ तक लाया गया है। इसका कारण आप समय पर स्वयं ही देख लेंगे और तभी मुझे इस असम्मत बल-प्रयोग के लिए क्षमा भी कर सकेंगे।

मैं चुप हो गया। बैलों से जुती एक मोटर टायर के पहियों की गाड़ी सड़क के मोड़ पर तैयार खड़ी थी। गाड़ी के साथ एक गाड़ीवान के अतिरिक्त और कोई न था। साधु के पीछे मैं भी उस पर सवार हुआ और गाड़ी चलदी।

बीच में एक-दो गावों को पार करती हुई वह बैलगाड़ी दौड़ चाल से आगे बढ़ी जा रही थी। मैं अपनी अनुमानों और कुतूहलों से पूर्ण विचारधारा में गोते लगा रहा था। एक बार मैं सोच गया, हो सकता है यह साधु मुझे किसी कापालिक साधना के अभिप्राय से किसी स्मशान भूमि में, भूतों-बैतालों की किसी बस्ती में ले जा रहा हो। ऐसा होगा तब तो मेरे लिए एक नये विचित्र—शायद अभूतपूर्व साहस या मेरे अध्ययन की विशेष प्रिय वस्तु मृत्यु के—अनुभव की बात होगी, मेरा कुतूहल किसी भी भय और आशंका से प्रबल

हो उठा था। ऊषा की आभा आकाश पर झलक आई थी और उसी समय हमारी गाड़ी नदी-तट के ऊँचे-नीचे टीलों के बीच अपने कच्चे दगड़े पर दौड़ती हुई नदी के घाट पर आ रुकी। यह यमुना का ही कोई तट था, इस अनुमान में मुझे कोई संदेह नहीं था।

घाट के पास कुछ दूरी पर एक नाव लगी हुई थी। गाड़ी से उतर कर हम एक पगडंडी पर चलते हुए एक ऊँचे चौरस टीले पर आ पहुँचे। टीले पर एक पुरानी टूटी-सी मढ़िया बनी हुई थी और उसके पास ही एक पुरानी दीवार के धरती से सटे हुए आले पर किसी देवता की मूर्ति बनी हुई थी। रक्ताभ सूर्य का गोलक उस समय पृथ्वी से ऊपर निकल आया था और हम सब कुछ अच्छी तरह देख सकते थे। वह टीला आसपास की भूमि में सम्भवतः सबसे अधिक ऊँचा था और वहाँ से दूर तक का दृश्य स्पष्ट दिखाई देता था। आस-पास के नालों-टीलों और उन पर कहीं-कहीं उगे छोटे वृक्षों का यह दृश्य मुझे यथेष्ट रमणीक जान पड़ा।

"यही वह स्थल है" साधु ने टीले की धरती की ओर संकेत करते हुए कहा, "जिसके आस-पास हम अपना नया नगर बसाना चाहते हैं। नगर नदी के इसी पार बसेगा और उसकी उत्तरी सीमा की रेखा में यह स्थान उसका मध्य-स्थल होगा। नगर का वाच टावर इसी टीले पर बनेगा। इस स्थान पर कभी किसी अच्छे साधक ने अपनी साधना की है और इसी लिए इसका चुम्बकीय प्रभाव अब तक विशेष सबल है। यह मूर्ति वामदेव की है। वामदेव शंकर महादेव का ही एक नाम है। इस देश में कुछ निर्जन और दुर्गम

स्थान अब भी ऐसे हैं जो भविष्य के लिए किन्हीं विशेष अभिप्रायों से मंत्र-कीलित किये गये थे और आगे की सभ्यताओं के निर्माण में वे बहुत बड़े काम आयेंगे। यह स्थान उन्हीं में से एक है।"

"ये गहरे रहस्य की बातें हैं" मैंने मन-ही-मन कुछ क्षुब्ध होकर कहा। वास्तव में मंत्रों और मूर्तियों के बल पर बनने वाली सभ्यताओं में मैं कोई श्रद्धा रखने के लिये तैयार नहीं था और इनके पचड़ों से दूर ही रहना चाहता था।

"आज यहाँ तक आपको लाने का मेरा अभिप्राय केवल यही था कि मैं यह जगह आपको दिखा दूँ। इतना मैं अभी कर सकता था और इसी लिए यह आवश्यक था। इस सारे कार्यक्रम के सम्बन्ध में आप जब अधिक-से-अधिक जितनी बात जान सकेंगे, अवश्य जानते जायेंगे। आप पर अभी से मात्रा से अधिक और अनुचित बोझ न डालने के अभिप्राय से ही बहुत-सी बातों का आपके सामने न खुलना आवश्यक है।"

"मुझे उसकी अनुचित उतावली भी न होनी चाहिए।" मैंने साधु का समर्थन किया।

कुछ देर वहाँ रुक कर हम शौच-स्नानादि से निवृत्त हुए और गाड़ीवान के साथ आये हुये पकवान का नाश्ता किया। नाव द्वारा गाड़ी समेत नदी पार करके सम्भवतः पिछली से कुछ कम दूरी की यात्रा ने हमें दोपहर तक दिल्ली के समीप शाहदरा कस्बे में पहुँचा दिया। वहाँ से ताँगे पर बैठ कर हम सीधे दिल्ली जंक्शन स्टेशन पर आये। स्टेशन के होटल में ही भोजन कर हमने विश्रामालय में विश्राम किया और तीन बजे की गाड़ी से आगरे के लिये रवाना हो गये।

राजामंडी स्टेशन से ताँगे पर कैलास पहुँचते-पहुँचते साधु ने पूछा :

"आपने रत्ना को देखा—उससे कुछ बात-चीत हुई ?"

"बातचीत तो मैंने कुछ नहीं की।" मैंने बताया

"बेचारी लड़की ! शी इज़ सेक्सुअली स्टार्व्ड।"* साधु ने कहा और मेरी ओर से दृष्टि हटा कर, विचार-मग्न-सा सामने की ओर देखने लगा।

ताँगा इस समय राजगुफ़ा को जाने वाली गली के सामने आ गया था। हम दोनों ने वहीं से तांगे को विदा कर अपने-अपने डेरों की राह ली।

[५]

उस रात भोजन करके मैं जल्द ही बिस्तर पर पड़ गया। लेकिन पिछली रात का जगा होने पर भी मुझे देर तक नींद न आई। इस साधु ने कुछ ऐसी ही पहेलियाँ मेरे सामने बिछा दी थीं। यह रत्ना कुमारी। इंजीनियर की पत्नी। वह काम-क्षुधा से पीड़ित है ! साधु ने मुझसे ऐसी बात क्यों कही ? इस यात्रा में उसके इतने दूर के साथ का क्या अभिप्राय हो सकता है ? और उस समय क्या वह सचमुच सोने के लिए ही ऊपर के बर्थ पर गया था ? क्या वह सचमुच सोया था ? आखिर वह मुझसे चाहता क्या है ? वह साधु है या असाधु ? उसकी योजना क्या है ? यह युवती उसकी कोई एजेण्ट हो सकती है। लेकिन वह मुझे तो बहुत सरल और पवित्र जान पड़ती है। निस्संदेह वह भावुक और सहृदय है। मैं उसकी ओर से किसी अशोभन अभिप्राय की कल्पना नहीं कर सकता। इस साधु

---

* अर्थात् वह काम-क्षुधा या काम अतृप्ति से पीड़ित है।

ने उसे मेरा न जाने क्या परिचय दिया होगा! लेकिन इस युवती से भी बड़ी बात तो उस साधु की वह नये नगर के निर्माण की बात है। वह सारी भूमि क्या उसने ख़रीद ली होगी? उसके साधन और पहुँच तो बहुत जान पड़ते हैं। संभव है उसमें कुछ यौगिक शक्तियाँ भी हों। इन्हीं विचारों में डूबते-उतराते मुझे कब नींद आ गई, मैं नहीं कह सकता।

सबेरे हाथ के जिस हलके स्पर्श से मेरी आँख खुली, मैंने देखा वह साधु के हाथ का ही स्पर्श था। वह मेरे पलँग पर बैठा हुआ था।

"आप!" मैं कुछ हड़बड़ा कर पलँग पर बैठ गया, "अच्छा, आप ही आ गये!"

"हाँ, मुझे आज दोपहर को कुछ दिनों के लिए बाहर जाना है और मैं जानता था कि आज आप बहुत देर में सोकर उठ पायेंगे। मुझे भिक्षा भी आज आपके घर की लेनी थी।"

"यह मेरा सौभाग्य है" मैंने कमरे के खुले हुए जँगले वाले द्वार से बाहर की ओर झाँकते हुए कहा। सूरज काफ़ी ऊपर चढ़ आया था और खुले द्वार से कमरे में पूरी धूप आ रही थी।

"आप शौचादि से निवृत्त होने के लिए कितना समय लेंगे? तब तक मैं उस जगह पर बैठ कर कुछ काम करूँगा, जहाँ बैठ कर आप अपना दफ़्तर का काम करते हैं।" उसने चलने के लिए उठते हुए कहा।

"यही, आध घंटा" मैंने कहा और साधु को छतों के

ऊपर-ऊपर जमना किनारे की अपनी पढ़ने-बैठने वाली तिदरी तक पहुँचा आया।

अपने कमरे की ओर लौटते हुए मैंने देखा, पत्नी सामने के आँगन में बैठी बरतन धो रही थी और मेरा डेढ़ साल का बच्चा अपने तौर पर उसके काम में हाथ बटा रहा था।

"यही है तुम्हारे साधूजी" पत्नी ने हँसते हुए कहा, "अच्छे साधू हैं! धड़-धड़ाते हुए जीने पर चढ़ आये—रावीजी, रावीजी! मैं यहाँ बरतन माँज रही थी। जल्दी-जल्दी हाथ धो कर मैंने जीने पर जाकर देखा तो आप खड़े हैं और आगे एक लड़का एक डोलची लिये खड़ा है। मैं समझ गई कि यह वही साधूजी हैं। मैंने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया तो झट मेरे सिर पर हाथ रख दिया और बोले: 'तुम मेरी छोटी बहिन हो। मुझे वेंकट दादा कहना। मैं उपदेश देने वाला और भीख माँगने वाला साधू नहीं हूँ।' अशोक मेरे पीछे आ गया था। इसे देखते ही उन्होंने प्रकाश, 'आओ, आओ बेटे!' हमेशा तो यह शैतान नये आदमियों के पास जाते शरमाता-सकोचता है, पर उनके पास उनकी गोद में ऐसे चला गया जैसे जन्म की जान-पहचान हो। जब उन्होंने खुद उतारा तभी आप उनकी गोद से उतरे। मैंने कहा, वह अभी सो रहे हैं, मैं जगाये देती हूँ। कहने लगे, 'नहीं, मुझे बतादो कहाँ सो रहे हैं, मैं खुद जगा लूँगा और तुम अपना काम करो।' मैंने कमरे के किवाड़ खोल दिये और आकर अपने काम में लग गई। ऐसे भी साधू होते हैं!"

"मैंने भी साधु तो ऐसे नही सुने" मैंने हँसते हुये कहा, "इन्हें जान पड़ता है, बच्चों और औरतों को बस में करने

की विद्या आती है और इनसे बहुत सावधान रहने की ज़रूरत है !"

"हुश ! ऐसी गन्दी बातें जान पड़ता है कहानियाँ लिखते-लिखते ही तुम्हारे दिमाग़ में आने लगी हैं।" पत्नी ने अपने पूर्ववत् स्वर में ही उत्तर दिया और मैं निवृत्त होने के लिये जंगल की ओर चला गया।

स्नानादि से निबट कर जब मैं साधु के पास पहुँचा तो उसे तिदरी से मिली हुई खुली छत पर टहलते पाया।

"तीन दिन से आपका लिखने का काम मेरी वजह से बन्द है" साधु ने कहना प्रारम्भ किया, "आपका वह समय मैं ले रहा हूँ और उसका मूल्य अस्सी रुपया प्रति घंटा के हिसाब से क्या आठ रुपया या आठ पैसे के हिसाब से भी आपको नही दे सकूँगा।"

"वह कोई बात नही" मैंने हँसते हुए उत्तर दिया, "मैं आपको अपनी खुशी से वह समय भेंट करता हूँ।"

मैंने अपनी एक कहानी में ऐसे ही एक अभ्यागत की चर्चा करते हुए लिखा था कि मेरे साहित्य-सृजन के समय में आ टपकने पर मैंने उनसे आठ रुपया प्रति घंटा के हिसाब से अपने समय का मूल्य तलब किया था और उसने आठ के बदले अस्सी के हिसाब से वह मूल्य मेरे पास जमा कर दिया था। स्पष्टतया साधु का यह कथन उसी कल्पना की ओर संकेत करते हुये उसका एक विनोद था।

"तीन दिन का समय आप मुझे खुशी से भेंट कर सकते हैं, पर तीन महीने का नहीं। मुझे आपके तीन महीने के समय की आवश्यकता है।"

"तब तो मुझे उसका मोल भी करना पड़ेगा।" मैंने कहा।

"और वह मुझे देना ही होगा।" साधु बोला, "मैं समझता हूँ, उसके लिये फ़िलहाल पचास रुपया मासिक आपको मिलना ठीक होगा।"

"पचास रुपय मासिक!" मुझे अब लगा कि वह सचमुच गंभीर होकर बात कर रहा है और मुझसे तीन महीने तक कोई काम चाहता है। "पचास रुपया मासिक में मैं अपना सारा समय कैसे दे सकता हूँ। मैं तीन घंटा प्रति दिन काम करके डेढ़ सौ रुपया महीना कमा लेता हूँ और इससे कम में मेरे घर का खर्च नही चलता।" मैंने कहा।

"इस जंगल में, और आपके स्वतंत्र जीवन में भी डेढ़ सौ रुपया मासिक! क्या आप डेढ़ सौ रुपया मासिक का अपना खर्च मुझे विवरण के साथ बता सकते हैं?"

मैंने काग़ज़ पर डेढ़ सौ रुपया महीने का अपना बजट लिख दिया।

पेंसिल और काग़ज़ अपने हाथ में लेकर उसने मेरी सूची में निशान लगाते हुये कहा:

"पन्द्रह रुपया मासिक कर्ज़ में, पन्द्रह रुपया व्यवहार और अतिथि सत्कार में, तीस रुपया घी-दूध में, दस रुपया मकान-किराये में—ये सत्तर रुपये तो बिलकुल अनावश्यक खर्च के हैं।" और दूसरी मदों में से काट-छाँट कर उसने चालीस रुपये और घटा दिये। मेरा वह बजट अब कुल चालीस रुपये का रह गया।

साधु के इस संशोधन पर मुझे हँसी आई। "आप समझते हैं कि मुझे, मेरी पत्नी और बच्चे को घी-दूध बिलकुल

नही लेना चाहिये, व्यवहार और आतिथ्य-सत्कार में एक पैसा भी नही खर्च करना चाहिये, किराये पर मकान भी नहीं रखना चाहिये। आपकी तरह दो तंग कपड़े शरीर पर लपेट कर काम चलाना चाहिए और सबसे बड़ी बात यह कि जिनका मुझ पर क़र्ज़ है उनका एक पैसा भी नही चुकाना चाहिये। मेरे ऊपर लगभग एक हज़ार का क़र्ज़ है।" मैंने कहा।

"क़र्ज़ का पैसा!" साधु ने कुछ अचरज के स्वर में कहा, "क़र्ज़ का पैसा आपको क्यों चुकाना चाहिये? जिनका आप पर क़र्ज़ है क्या वे उसे आपसे वापस पाये बिना भूखों मर जायेंगे? क़र्ज़ देने वाले तो काफी रुपये-पैसे वाले लोग होते हैं। और अगर वे भूखों मर भी जायेंगे तो क्या आपने उनकी ज़िन्दगी का ठेका ले रक्खा है?"

"यह एक नई फ़िलासफ़ी और नैतिकता की बात जान पड़ती है। मुझे अपने लेनदारों का पैसा भी नहीं चुकाना चाहिये!" मैंने कहा। साधु की इस बात में मेरी दिलचस्पी हो आई थी।

"हो सकता है यह नई फ़िलासफ़ी और नैतिकता की ही बात हो, लेकिन नई होने से आपके लिये एकदम अविचारणीय और त्याज्य तो नहीं हो जाती! यह क़र्ज़ चुकाने की नैतिकता वर्तमान समाज के मार्ग का एक बहुत बड़ा रोड़ा और अभिशाप है।"

"मैं आपका यह दृष्टिकोण समझना चाहता हूँ," मैंने अब सहज जिज्ञासा भाव से कहा।

"इस क़र्ज़ की व्यवस्था ने सभ्य समाज का सबसे अधिक रक्त चूसा है। बालक जब सयाना होकर लौकिक जीवन में

प्रवेश करता है तो अपने आपको क़र्ज़ से लदा हुआ पाता है। मा-बाप का वह क़र्ज़ उतारने के लिये उसे किसी विशेष ढंग का परिश्रम करके एक विशेष मोटाई की थैली कमानी पड़ती है। समाज का क़र्ज़ चुकाने के लिये उसे समाज से मिली हुई पत्नी को एक निश्चित आर्थिक स्तर से रखना पड़ता है। अपने सहज, और सहज के बाद कठिन परिश्रमों से जब वह इन क़र्ज़ों को नहीं चुका पाता तो इन्हें चुकाने के लिये और क़र्ज लेता है और इन क़र्ज़ों को चुकाने के लिये फिर नये क़र्ज लेता है। इस प्रकार उसका जीवन नये-नये कर्ज़ों और कठिनतर परिश्रमों और उनकी चिन्ताओं में घुलता हुआ बीत चलता है। इसका सबसे बड़ा अभिशाप यह होता है कि वह अपनी रुचि और सुख का काम जीवन में नहीं कर पाता।"

"आपकी बात में विचार की सामग्री है" मैंने कहा, "तो फिर इस क़र्ज के चक्र से बाहर निकलने का आपकी राय में रास्ता क्या है?"

"क़र्ज चुकाने से इनकार कर दीजिये, उसकी चिन्ता छोड़ दीजिये।"

"ऐसा निश्चय यदि समाज के लोग कर लें तो इससे समाज की शांति और व्यवस्था को हानि अधिक होगी या लाभ? उन इनकार करने वालों का मानसिक स्तर नीचे गिरेगा या ऊपर उठेगा?"

"हाः हः हः हः" साधु की हँसी खुल पड़ी, "आज के सभ्य मनुष्य की विचार-प्रणाली यह है! जो बात आप अपने करने के लिये सोचते हैं उसे पहले सारे समाज के लिये एक क़ानून बना देना चाहते हैं और तब बाद में उसमें अपना

हाथ डालना चाहते हैं। लेकिन सभी व्यक्तियों और सभी अवसरों के लिये व्यवहार और नैतिकता के एकसे नियम नहीं बनाये जा सकते। सारे समाज की व्यवस्था की चिन्ता में आप अपनी व्यवस्था को खो देते हैं। मैं जो बात आपसे कह रहा हूँ वह सारे समाज से तो कहने नहीं जा रहा हूँ!"

"मैं अपना क़र्ज चुकाने से इनकार कर दूँ, उसकी चिन्ता ही छोड़ दूँ, यह किस हित के लिये? क्या इसमें कोई भी बुराई नहीं है?"

"संसार में कोई काम ऐसा नहीं जिसमें मनुष्य के लिये बुराई और भलाई दोनों ही किसी-न-किसी अनुपात में मौजूद न हों। अपने क़र्ज़ से इस प्रकार मुक्त होकर आप एक बड़ी भलाई का काम करेंगे जिसमें बुराई का भी कुछ अंश अवश्य होगा। हित इससे बहुत बड़ा यह होगा कि आपकी सृजनात्मक शक्तियाँ जो अभी पचहत्तर प्रतिशत बँधी पड़ी हैं, आपकी आन्तरिक रुचि और कल्याण के कार्यों के लिये स्तंभ हो जायँगी; और आपका कल्याण और सारे समाज का कल्याण अलग-अलग नहीं हैं। आप समाज के प्रति अपना यह पूरा कर्तव्य निभाने में तत्पर हो जायेंगे जिसकी अभी आपने अवहेलना कर रक्खी है। समाज के प्रति अपने कर्तव्य की अवहेलना—चाहे वह अज्ञान-वश हो चाहे विवशता के कारण—कुछ पैसे वालों के पैसे न लौटाने की अपेक्षा हज़ारगुना बड़ा सामाजिक अपराध है।"

कुछ क्षण तक हम दोनों ही चुप रहे। उसके बाद उसने ही कहना जारी किया:

"पूछिये, पूछिये, आप पूछेंगे कि तब फिर आपका अपने

और समाज के प्रति यह बड़ा कर्तव्य क्या है। साहूकारों और शायद कुछ मित्रों का भी पैसा न लौटाने के क्या-क्या नतीजे हो सकते हैं। ये ही प्रश्न उठते हैं न?"

"अवश्य उठते हैं" मैंने समर्थन किया।

"नतीजे क्या होंगे। वे लोग आप को बुरा कहेंगे। आपका बहिष्कार कर देंगे और आगे के लिए आपका विश्वास उन्हें न रह जायगा। वे आप को और कर्ज न देंगे। आपकी बद-नामी फैल जायगी। उनमें से कोई आप पर शायद कानूनी दावा भी कर देंगे। फल-स्वरूप आपका कुछ सामान नीलाम हो जायगा या कुछ दिनों की जेल हो जायगी। शासन और समाज जी वर्तमान व्यवस्था में ऐसा हो जाय तो कोई बड़ी बात नहीं। लेकिन ऐसा कुछ भी होने से आप अगले साल हज़ार की जगह सवा हज़ार के क़र्जदार नहीं होंगे, बल्कि क़र्ज से पूरी स्वतंत्रता के साथ आप कुछ दूसरी स्वतंत्रताओं का भी स्वाद चख पायेंगे।"

"यह बहुत सुन्दर बात है" मैंने ऊपर से हँसते हुए कहा, "जिस दिन मैं आप से गुरु-दीक्षा लूँगा, उस दिन अपने लेनदारों को उस आशय का एक-एक पत्र लिख दूँगा।"

"और उस पत्र में उन्हें धन्यवाद देते हुए यह भी लिख दीजिएगा कि 'उनके ऋण से अपने आपको मुक्त मान कर आज मुझे बड़ी स्फूर्ति मिल रही है और मैं आपके उस उपकार के बदले—क़र्ज को आप उपकार के रूप में ले लेंगे न?—आपकी कुछ विशेष सेवा कर सकने की आशा रखता हूँ'।" साधु ने भी विनोदपूर्ण सरलता के साथ योग दिया।

"और उसके बाद समाज के प्रति मेरा वह बड़ा कर्तव्य क्या होगा?" मैने पूछा।

"वह कर्तव्य? यही काम तो मै आपको देना चाहता हूँ।"

"मतलब यह कि आप की आज्ञा का पालन। वही मेरा समाज के प्रति सबसे बड़ा कर्तव्य होगा।" मैने स्पष्ट व्यंग के स्वर में कहा।

इसी समय पत्नी ने आकर कहा, "खाना तैयार है। वेंकट दादा को जाने की जल्दी होगी।"

मुझे मन में हँसी आई, कितनी आसानीसे उसने इस साधु को अपना दादा बना लिया था। हम दोनों कमरे में पहुँचे। खाने के लिए आसन बिछे हुए थे। हाथ धोकर हम उन पर आसीन हो गये।

"आपकी पत्नी को मैंने आज अपनी बहिन बना लिया है।" साधु ने कहा। और फिर पत्नी को लक्ष्य कर कहा, "इसकी मुझे कुछ भेंट भी इसे देनी चाहिए। बोलो लीला, तुम मुझसे आज क्या भेंट चाहती हो।"

एक मिनट तक वह चुप रही। मैने समझा, वह चुप ही रहेगी या फिर अपने और बच्चे के लिए साधु का आशीर्वाद माँगेगी; पर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जब वह कह उठी:

"आप दे सकते हैं तो मुझे थोड़ा-सा वह रंग दीजिए जिस में रँगने से कपड़ा कभी मैला नहीं होता और उसमें कोई बदबू और चिकनाहट असर नहीं करती।"

अब मुझे ध्यान आया कि साधु के पीले वस्त्र की वह बात मैंने लीला से कही होगी और यह उसकी विशेष रुचि की बात

रही होगी यद्यपि उसके इतने महत्व का कोई अंकन मेरे मन में नहीं था।

साधु के चेहरे पर क्षण भर के लिए चिन्ता की छाया दिखाई दी और दूसरे ही क्षण उसने स्वस्थ हो कर कहा :

"अच्छी बात है, तुम जो चाहती हो वही मैं तुम्हें दूँगा।"

इतने समय तक थालियाँ परोसी हुई हमारे सामने आ गई थीं। हम भोजन करने लगे।

कमरे के कोने में द्वार के पास साधु की लाई हुई वह टोकरी रक्खी थी और बालक अशोक उसके पास पहुँच कर उसे खोलने का प्रयत्न कर रहा था।

"नहीं अशोक, उसे नहीं छूते, वह मामा का है, मामा मारेंगे।" लीला ने बालक को बरजते हुए आवाज़ दी।

लीला के भाई ही नहीं, उसके बच्चे के मामा भी यह हो गये। मुझे पत्नी के इस सम्बन्ध-विस्तार पर एक बार फिर मन में हँसी आ गई।

"मारेंगे? मैं तो कभी नहीं मारूँगा। तुम मेरी तरफ़ से बच्चे का ख़याल क्यों ख़राब करना चाहती हो? तुम मुझे उसकी नज़रों में गिराती क्यों हो?" साधु ने कुछ उतावली के स्वर में लीला से कहा।

"मैं तो यों ही कहती हूँ। यह बहुत शैतानी करता है। यह अभी बातों को समझता थोड़े है। जब समझता ही नहीं तो आपकी तरफ़ से ख़याल क्यों ख़राब होगा" लीला ने कुछ सहम कर सफ़ाई-सी दी।

"बच्चे बातों का मतलब समझें या न समझें, उनका प्रभाव उन पर पूरा पड़ता है। उनसे कड़ी या अनुचित बात कभी नहीं

करनी चाहिए। क्या यह मार को जानता है ? तुम इसे कभी पीटती भी हो ?"

"कभी नहीं" मैंने अब लीला की सहायतार्थ कहा, "इन्होंने अभी तक तो इसे पीटा नहीं, पीटने की धमकी इसे अवश्य अक्सर दे देती हैं, यद्यपि ऐसी धमकियों की वह परवाह नहीं करता।"

"आपको बच्चे के पालन और शिक्षण की विशेष चिन्ता बराबर करनी चाहिए और इस सम्बन्ध में बच्चे की मा को भी बराबर बताते रहना चाहिए।" साधु ने मुझसे कहा।

अशोक टोकरी का ढक्कन खोलने में सफल हो गया था। उसके अगले प्रयास से टोकरी तिरछी लुढ़क गई और उसमें से कुछ चावल निकल कर धरती पर छितरा गये।

मैने आवाज दी, "आओ अशोक, यहाँ आओ। दाल खायें।"

वह मेरी ओर बढा, पर मेरे पास साधु को देख कर अपनी मा की पीट पर जा चिपका।

"जाओ बेटे, दाल देंगे। वो मामा हैं।" लीला ने कहा।

"मम्मा ? मम्मा ऐ?" अशोक ने प्रश्नवाचक स्वर में सिर हिला-हिला कर कहा।

"हाँ, मामा हैं, जाओ।"

अशोक आकर मेरी थाली के सामने बैठ गया और फिर साधु के निमंत्रण पर निस्संकोच उसकी गोद में जा बैठा। सिर घुमा कर साधु की आँखों में एक गहरी दृष्टि डाल कर उसने फिर दुहराया, "मम्मा ऐं ?"

"हाँ बाबा, मम्मा ऐ" साधु ने उसका समाधान किया और चम्मच में थोड़ी खीर लेकर उसके मुँह में देदी।

लीला की दृष्टि फैले हुए चावलों पर लग रही थी। उसे लक्ष्यकर साधु ने कहा, ये चावल तुम्हारे लिए ही हैं। यह देहरादून का सबसे बढ़िया बासमती चावल है।"

"मैंने पहले नहीं देखा, नहीं तो खीर आज इसी चावल की बनाती।"

"खीर आज बनाई सो बनाई" मैंने लीला से कहा, "लेकिन अब खीर-वीर कभी कुछ नहीं बनेगी। तुम्हारे वेंकट दादा का कहना है कि हम लोगों को घी-दूध बिलकुल बन्द कर देना चाहिए।"

"मैंने यह कब कहा?" साधु ने प्रतिवाद किया, "मेरा कहना तो यह कि घी-दूध पर आप जो तीस रुपया महीना खर्च करते हैं वह व्यर्थ है। उसमें आप कठिनता से प्रतिदिन एक सेर दूध और महीने में तीन सेर घी ले पाते होंगे।"

"इतना ही।" मैंने समर्थन किया।

"लेकिन आपको इस प्रकार के जीवन में कम-से-कम तीन-सेर दूध प्रतिदिन और महीने में पाँच सेर घी मिलना चाहिए। इसके लिए आपको छह सेर दूध देने वाली एक गाय रखनी चाहिए। यहाँ गाँव में गाय का रखना सस्ता पड़ेगा। दस-रुपया महीना खर्च करके आप उसे रख सकते हैं। आपका यह बजट मेरे हिसाब से चालीस ही रुपये का बैठा था। दस इसके लिए जोड़कर पचास रुपया महीना मैंने रक्खा था।"

"यह सुझाव तो बड़े काम का है, हमें पहले यह सोचना चाहिए था।" मैंने स्वीकार किया।

"और अतिथि-सत्कार में आप अतिथियों को बढ़िया खीर खिलाइये और व्यवहार में भी उन्हें रुपयों या वस्तुओं की भेंट न देकर अपने अधिक ध्यान और सहृदय सहयोग की ही भेंट दीजिए। इससे उनके और आपके सम्बन्ध और भी अच्छे होंगे।"

"यह बहुत अच्छी बात है। हम गृहस्थ लोग किसी के घर जायं तो ध्यान और सहयोग की भेंट लेकर जायं और आप जैसे साधु टोकरियों में तोहफ़े लेकर जायं।" लीला ने आक्षेप किया और यह मुझे बहुत पसंद आया। पचास रुपये मासिक बजट की भनक पाकर वह चिढ़ उठी थी।

"एक नहीं, दस टोकरियों में तोहफ़े लेकर तुम जाओ, अगर वे तुम्हें आसानी से मिल जायं। ये चावल देहरादून में एक मित्र ने मेरे साथ रख दिये थे, इसी लिए तुम्हारे यहाँ छोड़े जा रहा हूँ। मुझे इनकी क्या ज़रूरत हो सकती है।"

हम भोजन कर चुके थे। हाथ-मुँह धोकर हम उठे। सामने ताक़ पर कैंची पड़ी हुई थी। साधु ने उसे उठा लिया और अपने ओढने के वस्त्र में से आधा टुकड़ा काट कर पलँग पर रखते हुए लीला को लक्ष्य कर कहा :

"यह रँग अभी यहाँ नहीं मिल सकता। पर उसी रँग का रँगा कपड़ा तुम्हें देता हूँ। इसका अशोक के लिए एक कुरता बनाना। लेकिन इस कपड़े को पहन कर अगर वह साधू हो जाय, और बालक ध्रुव की तरह तपस्या करने के लिए तुम्हें छोड़ कर चला जाय तो मैं इसका ज़िम्मेदार नहीं हूँ।"

"तपस्या करने जायगा तब मैं देख लूँगी," लीला ने कुछ और कहने के विचार से कहा, पर साधु तब तक द्वार के बाहर

पहुँच गया था। मैं उसके साथ चल दिया। ज़ीने से उतर कर मंदिर का चौक पार कर लेने पर साधु ने कहा :

"आपने मेरा मतलब समझ लिया। मैं चाहता हूँ कि आप फ़र्ज़ के लिए, पैसे के लिए, या किसी के दबाव-लिहाज़ के कारण कोई भी काम न करें।"

"उस सब के बदले मेरे करने के लिए आप कोई विशेष काम बताना चाहते हैं?" मैंने भीतर से झुँझला कर पूछा। मुझे साधु के इस आग्रह पर खीझ हो आई थी और मै उसके बताये काम को अपने कंधों पर उठाने के लिए बिलकुल तैयार न था।

"निस्संदेह!" साधु ने गर्दन घुमा कर मेरी आँखों में एक चुभती हुई दृष्टि डाल कर कहा। उसके होटों पर मुस्कान फूट निकली थी।

"तो कहिए, आख़िर वह कौन-सा काम है?"

"अपने ऊपर कोई भी काम न रह जाने की दशा में आप जो काम करना पसंद करते हों, वही काम आप करें।"

मेरी खीझ पर घड़ों पानी पड़ गया। साधु के इस कथन में मुझे एक गहरा सार्थक संकेत दिखाई पडा। मैंने कहा :

"आपकी यह सलाह विचारणीय है। मै सोचूँगा।"

राजगुफा की गली का मोड़ आ गया था। साधु ने रुक कर कहा :

"अब आप लौट जाइये। मैं भी तैयारी करके जाऊँगा। बाहर का कुछ काम करके मैं आठ-दस दिन में फिर यहाँ आऊँगा।"

विदाई का नमस्कार कर मैं अपने डेरे को लौट आया।

[६]

अगले दिन मुझे शहर (आगरा) जाना था। शहर के एक प्रकाशक के लिये मैंने महागुरु बुद्ध पर एक नाटक लिखने का सौदा तय कर लिया था और उनसे कुछ रुपये भी पेशगी ले लिये थे। उसी नाटक के लिये मुझे बुद्ध की कुछ जीवनियाँ बाज़ार से खरीदनी थीं और काग़ज़-क़लम आदि कुछ अन्य सामान भी। निश्चयानुसार मै शहर पहुँचा। शाम हो चली थी और बाज़ारों की चहल-पहल बढ़ चली थी। किनारी बाज़ार में मैंने देखा, एक रेस्टोरॉ के भीतर लगभग सभी कुर्सियाँ और बेंचें भरी हुई थीं, और द्वार के सामने ही एक बेंच पर एक बाबू साहब अपनी श्रीमतीजी के साथ बैठे हुए विविध व्यंजनों का स्वाद ले रहे थे। सामने सड़क पर दस-बारह साल का एक भिखारी बालक खड़ा हुआ इसी दम्पति को लक्ष्य कर कह रहा था:

"ओ बाबूजी, ओ बीबीजी, इतना मत खाओ। तुम्हारा तो पेट भरा है। तुम घर जाकर खीर-पूरी खाओगे। मैं भूखा हूँ। भूखे भिखारी को कुछ दे दो। ओ बाबूजी, ओ बीबीजी!"

भिखारी की इस असाधारण याचना-शैली ने मुझे आकृष्ट किया। मैं रुक गया। दुकान के भीतर-बाहर के सभी लोगों का ध्यान उस भिखारी ने अपनी ओर खींच लिया था।

"भीख माँगता है कि हुकूमत करता है बे! तेरे बाप का कर्ज़ा खाया है जो इस तरह तुझे कोई भीख देगा?" पास की बेंच पर बैठे एक भारी-भरकम सेठजी ने एक समूचा रसगुल्ला गले के नीचे उतारते हुए भिखारी से कहा।

"मेरे बाप का कर्ज़ा न खाया होता तो लालाजी तुम्हारी यह तोंद इतनी कहाँ से फूल जाती !" भिखारी ने अपने पेट के सामने फूली तोंद पर हाथ फिराने का अभिनय करते हुए कहा।

सब लोग हँस पड़े। दूकानदार ने अपनी गद्दी पर से ही तमाचा तानते हुये कहा :

"भागता है बे यहाँ से कि दूँ एक झाँपड़ !"

"झाँपड़ ?" भिखारी तुरंत बोला, "झाँपड़ नहीं लालाजी एक पापड़ ही दे दो। झाँपड़ से तो मेरा भी बुरा होगा और तुम्हारा भी बुरा होगा। एक पापड़ लालाजी, एक पापड़। तुम्हारे बच्चों को दुआ दूँगा।"

"अरे यह तो कविता करता है, क्या खूब—झाँपड़-पापड़ ! एक दुबले-पतले युवक ने उत्सुक होकर कहा।

"ए लालाजी, ए तोंद वाले लालाजी" भिखारी ने युवक की बात अनसुनी करके कहा, "बहुत धरमात्मा आदमी हैं, बड़े भगत हैं, लेकिन कसम खाकर कहता हूँ ये बहुत बुरे आदमी हैं, बहुत बुरे।"

सारी पंगत में फिर एक क़हक़हा फूट पड़ा।

"और गुरु, ये चौबेजी कैसे आदमी ?" एक सज्जन ने अपने पास के साथी पर हाथ रख कर पूछा।

"इनकी बात छोड़ो," भिखारी ने उपेक्षा के स्वर में कहा, "दुकान का लाला कुछ भला आदमी है, लेकिन वह भोंदू है। ये बाबूजी और बीबीजी बहुत भले आदमी हैं। कैसी सुन्दर जोड़ी है ! बलिहार जाऊँ। तुम्हारा पेट भरा है और ये सब भूखे हैं। तुम अब न खाओ। मुझे कुछ दो। मैं भूखा हूँ। मैं

और किसीसे नहीं माँगता, तुम्हीं से माँगता हूँ। ओ बाबूजी, ओ बीबीजी !"

बग़ल की बन्द दूकान के पटरे पर एक किताब बेचने वाले ने अपनी आल्हा और तोता-मैना के क़िस्से सरीखी पुस्तकें फैला रक्खी थीं। उन्हें ही उलटने-पलटने के बहाने मैं वहाँ रुक कर यह दृश्य देख रहा था। मैंने अब ध्यानपूर्वक देखा, वह युवती सचमुच विशेष रूपवती थी और वह बाबूजी भी कम सुन्दर नहीं थे। दम्पति देखने में मुझे बहुत शिष्ट जान पड़ा।

"तू भूखा है तो भीख क्यों माँगता है ?" युवती का विशेष मधुर कण्ठ-स्वर सुन पड़ा, "मेहनत-मज़दूरी क्यों नहीं करता ? तू तो बहुत चतुर लड़का है। भीख माँगना तो बुरी बात है।"

"मैं संतमेत की भीख नहीं माँगता बीबी जी," भिखारी ने उत्तर दिया, "गाना गाता हूँ, बातें करके लोगों का मन बहलाता हूँ, सच्चो बात कहता हूँ, तब कोई एक रोटी या दो पैसे देता है। यह भी तो मेहनत-मजूरी है।"

"तुझे गाना आता है ?" बाबू साहब का अब मुख खुला," अच्छा, एक गाना सुना।

"गाना सुनलो बाबूजी। लेकिन एक बात है। गाना मुझे बहुत अच्छा नहीं आता। फिर भी तुम सुनो।" भिखारी ने कहा और गाना प्रारम्भ किया।

> "करो री जतन सखी साईं के मिलन की।
> गुड़िया गुड़वा सूप – सपिलियाँ,
> तज देव बुध लड़कइयाँ खेलन की— करो री जतन...
> ऊँचा महल अजब रँग बँगला,
> साईं की सेज जहाँ लागी फुलन की– करो री जतन...

भिखारी कुछ रुका, बोला :

"और देखो बाबू भूलता हूँ। वह क्या है, याद नहीं आता—

नानन, नानन, नानन, नाना

सुरत सम्हार पड़ो पइयाँ सजन की— करो री जतन...

कहत कबीर सुनो भई साधो,

कुंजी बताय देऊँ तारा खुलन की—

करो री जतन सखी साईं के मिलन की।"

गीत समाप्त हुआ। लोगों ने खामोश रह कर उसे पूरा सुना। बालक का राग और स्वर बहुत अच्छा तो नहीं, फिर भी अच्छा था।

"सैयाँ मिलन की— सेजरिया फुलन की— पिया मिलन को जाना— आजा मेरे बालमा तेरा इन्तजार है!" तोंद वाले लाला जी ने बैठे हुए ही अपने पूरे शरीर के साथ हाथ मटका-मटका कर विदूषक के स्वर में कहा, "साले सनीमा के गीत गाते हैं, जरा जरा से छोकरे! इन्होंने देस और धरम का और सत्यानास किया है।"

"सिनेमा का गीत नहीं लालाजी, यह तो कबीर का पद है" किसी एक ने कह दिया। "अरे एक ही बात है, सनीमा का गीत हुआ या कबीर हुआ। अर र र र र र र सुनो कबीर! सहर के सोहदे सनीमा के गीत गाते हैं। गाँव के लुच्चे कबीर गाते हैं। साले तुलसीदास के, सूरदास के भजन नहीं गाते, कबीर गाते हैं!"

लालाजी जब बोल रहे थे, मैंने उत्सुक दृष्टि से देखा, उस युवती की कैसी अरुचि-उपहास-सूचक मुख-मुद्रा-मयी दृष्टि, तथा बाबूजी की विनोदपूर्ण दृष्टि उन लालाजी पर; तथा भिखारी

बालक की प्रसन्न अनुराग-भरी-सी आँखें उस युवती पर लग रही थीं।

"मेरा एक भाई है" लालाजी की बात पर कुछ ध्यान न देकर भिखारी ने उसी दम्पति को लक्ष्य कर कहा, "वह बहुत ही अच्छा गाता है! गाना सुनना हो तो मैं उसे लाऊँ। अपना घर मुझे बता दो तो वहीं मैं उसे ले आऊँगा।"

"धुलियागंज में अग्रवाल कालेज तूने देखा है?" युवती ने पूछा।

"हाँ हाँ, खूब देखा है। उसी में—?"

"उसके सामने जो पानवाले की दूकान है, उस पनवाड़ी से कहना कि बंक के जो नये बाबू आये हैं उनका घर मुझे बतादो। वह तुझे हमारे घर पहुँचा देगा। और उस लड़के को ज़रूर साथ लाना। समझा!"

"समझ गया बीबीजी, जरूर लो।"

"अच्छा अब बता, तू भूखा है तो क्या खायगा।" युवती ने पूछा।

"जय हो बीबीजी की और बाबूजी की! आज तो बड़े माल मिलेंगे।" बालक कहते-कहते नाच उठा।

चम चम, रसगुल्ला और बाद में वह नई चीज़ खीर मलाई मुँह लगने पर उस भिखारी ने उसकी कितनी प्लेटें अपने दोने में उँडलवा-उँडलवा कर साफ़ कीं, यह सभी दर्शकों के लिए देखने का एक मनोरंजक दृश्य रहा। युवती ने जी खोल कर उसकी दावत की। खा चुकने पर उसने चलते-चलते आशीर्वाद दिया:

"बीबीजी, तुम्हारी जय हो। तुम्हारे सपूत जनमें।"

एक दबी-सी हँसी उस मंडली में गूँज गई। अनेक आँखें युवती की ओर उठ गईं। वह सकुचाई हुई दीख पड़ी।

"और इस लाला की तोंद फूटे! बीबीजी, एक दोना खीर मलाई इसे भी खिलवा देना नहीं तो इसकी नजर का मारा मेरा खाया-पिया हजम नहीं होगा।"

सब लोग अबकी बार ठठाकर हँस पड़े। लालाजी का मुँह कुछ छोटा पड़ गया।

"मैं कल सवेरे ही उस गाने वाले लड़के को लेकर तुम्हारे घर आऊँगा, भला!" भिखारी ने युवती से कहा और 'नानन नानन नानन नाना' गुनगुनाता हुआ चल दिया।

मैं उसके पीछे चला। इस विचित्र बालक ने मुझे जैसे बाँध लिया था।

कुछ आगे चल कर मैंने देखा, एक अन्य भिखारी बालक—इसकी आयु पहले बालक से कुछ कम ही थी—एक दूकान पर भीख माँग रहा था—

"सेठजी, एक पैसा!"

"चल बे, आगे जा!" दूकानदार ने झिड़क कर कहा।

बालक उदास होकर चल दिया। पहला भिखारी कुछ रुक कर इस दूसरे को देखने लगा था। इसके आगे बढ़ने पर उसने भी पग बढ़ाये और उसका हाथ पकड़ कर कहा:

"भीख माँगता है बे, उल्लू कहीं का!"

"तू भी तो भीख माँगता है। मैं रोज़ देखता हूँ।"

"तेरे माई-बाप हैं?"

"बाप मर गया। मा है। एक छोटी बहिन है।"

"कहाँ हैं वह?"

"कहीं भीख माँगती होंगी दोनों।"

"चल मेरे साथ धरमसाले में। रोज़ खाने को मिलेगा।"

"धरमसाले में? वहाँ कौन देगा?"

"अबे चल तो मेरे साथ!" बड़े बालक ने उसका हाथ खींचते हुए कहा, "ले यह खाता चल।" और अपने लम्बे फटे कोट की जेब से निकाल कर कच्ची मूँगफली के लाल-लाल दाने एक मुट्ठी भर उसके हाथों में थमा दिये।

छोटा बालक खाने लगा। दोनों चल रहे थे। मेरा कुतूहल बाँध तोड़ कर बढ़ रहा था।

"तेरी बोली मीठी है। तू भजन गा लेता है?" कुछ देर बाद बड़े ने पूछा।

"बाप ने एक भजन सिखाया था। फिर वह मर गया।"

बड़े ने आगे कोई बात नहीं कही। दोनों चुपचाप चलते गये।

पतली-सी गली के नुक्कड़ पर पहुँच कर वे दोनों उसके भीतर मुड़े। मेरे सामने अब समस्या उठी। मैं अब कैसे, किस बहाने इन बालकों के पीछे जाऊँ। वह गली मेरे लिए अपरिचित ही थी। इसी सोच में मैं कुछ क्षण के लिये गली के सामने पहुँच कर रुक गया। देखा, बीस क़दम की दूरी तक चल कर वह बालक स्वयं रुक कर इधर को ही देख रहा था।

"भाई साहब!" मैंने सुना, पहला बालक मुझे ही पुकारता हुआ मेरी ओर लौट रहा था। मैं खड़ा रह गया। पास आकर उसने मेरा हाथ पकड़ लिया।

"थोड़ी दूर और आइये। उस खम्भे के सामने ही मकान है। हरीश भाई को आपसे मिलना है।"

"कौन हरीश भाई?" मेरे मुँह से निकल गया और कहते ही मैंने अनुभव किया कि मैं कितना उखड़ गया हूँ और बेढंगी-सी बात कर रहा हूँ।"

"वह कल आपके घर आपसे मिलने जायेंगे। वेंकट दादा कल रात यहीं थे और आज दोपहर की गाड़ी से गये हैं।"

'वेंकट दादा!' दो रहस्यों के संगम में मैं डूब उठा। यह आश्चर्यजनक बालक पहले ही मेरे लिये एक आकर्षक पहेली बन रहा था और अब वेंकट दादा के नाम ने उसे और भी रहस्यपूर्ण बना दिया। वेंकट दादा का विस्तार और गहराई कितनी और कैसी है, मैं अब सोचने लगा।

मैंने देखा, दोनों बालकों के साथ चलकर मैं बिजली के खम्भे के सामनेवाले द्वार पर रुका हूँ। बड़े बालक ने भिड़े हुए कपाट खोले। एक लम्बे-चौड़े आँगन को पार कर हम तीनों एक बरामदे में होते हुए ज़ीने पर चढ़े। बाहर से न कुछ-सा जान पड़ने वाला वह मकान बहुत बड़ा और हर तरह से समृद्ध था। दुमंज़ले की एक बड़ी छत को पार कर हम लोग एक सजे हुए कमरे के द्वार पर पहुँचे। कमरे से बाहर निकलते हुए एक प्रसन्नमुख युवक ने हमारा स्वागत किया।

"यह रावीजी हैं" बालक ने उसे मेरा परिचय दिया।

"अरे वाह!" युवक ने दोनों बाहों में भर कर मुझसे भेंटते हुए कहा, "आप तो बहुत ही मिले। मेरा नाम हरीश है और मैं कल आपसे मिलने आपके घर आ रहा था।"

"यह सुन्दर चमत्कार है" मैंने अब स्वस्थ भाव से कहा, "परिचय से पहले एक स्नेही मित्र से मिलने का गहरा सुख मुझे आज पहली बार ही मिल रहा है।"

हम दोनों कमरे के भीतर एक सोफ़ा पर बैठ गये थे और सामने के दूसरे सोफ़ा पर वह बालक अपने नये साथी को साथ लिये बैठ गया था।

"और यह लड़का? युवक ने बालक से प्रश्न किया।

भीख माँगता है। इसकी मा और छोटी बहिन भी भीख माँगती हैं। बाप मरगया है। अच्छा लड़का है। कई दिन से इसे देख रहा हूँ। आज पकड़ लाया हूँ।

"अच्छा किया। शंकर को साथ ले लो और इसे इसकी माके पास पहुँचा आओ। इसकी मा-बहिन के लिए कल शाम तक के खाने को ले लेना। अभी आने दें तो अभी, नहीं तो कल सुबह इसे ले आना, अब तो रात हो रही है।" युवक ने आदेश दिया।

दोनो बालक चले गये।

"पहली बात तो यह बताइये" युवक ने मानो अब और कामों से निवृत्त हो कर कहा, "आपको कैलास लौटने की जल्दी तो नहीं है।"

"जल्दी? जल्दी तो मुझे होनी चाहिए। सूर्यास्त के बाद उधर जाने वाले इक्के नहीं मिलेंगे।" मैंने कहा। सूर्यास्त का समय हो ही आया था।

"और आप को आज रात यहीं रुक जाने में कुछ असु-विधा होगी?"

"असुविधा तो होगी। यदि मैं पत्नी से कह आता और आवश्यक प्रबन्ध कर आता तो रुक सकता था।"

"तो फिर ऐसा कीजिए। मेरे कुछ मेहमान इस समय सिकन्दरा देखने जा रहे थे। अगर वे अभी नहीं गये तो आप

उन्हीं के साथ कार में चले जाइयेगा। मैं अभी देखता हूँ।

मेरी सहमति पाकर वह सामने के बड़े कमरे में चला गया और तीन-चार मिनट में लौट कर बोला :

"वे लोग जा ही रहे थे। मैंने रोक लिया है। आप चल सकते हैं।"

मैं उठ खड़ा हुआ। ज़ीने से उतर कर हम बाहर निकले और उस गली को पार करने लगे।

"आप से विशेष बातचीत की भूख को मुझे बीस-बाईस घंटे और साधना पड़ेगा। कल तीसरे पहर चार बजे तक मैं आपके पास पहुँच जाऊँगा।

"मेरी भूख आपकी भूख से अधिक असाध्य होगी" मैंने कहा, "स्वामीजी, आप और सबसे अधिक यह लड़का मेरे लिए रहस्य की मूर्तियाँ हो रहे हैं।"

सड़क पर, गली के नुक्कड़ पर कार खड़ी थी। दोनो बालक और उनके साथ एक अन्य व्यक्ति– वह शंकर होगा— उसी समय किसी अन्य मार्ग से उसी जगह आपहुँचे थे। बालक मेरे हाथ की पहुँच के भीतर आगया था। मैंने उसकी पीठ थप-थपाते हुए कहा :

"तुम भीख बहुत अच्छी माँगते हो। कम-से-कम अपना नाम तो बतादो।"

"सड़कों पर लोग मुझे रज्जा कह कर पुकारते हैं, पर आप राजा कहेंगे। मैं राजा हूँ।" बालक ने चपलता के साथ कहा।

"तुम राजा हो। मैं अभी तक तुम्हें नहीं जानता था, लेकिन तुम मुझे कबसे जानते हो?" कार में बैठते-बैठते मैंने

अपनी कम-से-कम एक उत्सुकता का निवारण कर लेना चाहा।

"चार बरस से" बालक ने मेरी जिज्ञासाओं को जटिलतर और जटिलतम बनाते हुए कहा, "आप मुझे नहीं जानते, लेकिन बीबीजी जानती हैं! घर पहुँच कर उन्हें मेरा नमस्कार कह दीजिएगा।"

कार चलदी। युवक ने गली की ओर मुख मोड़ा और ये तीनों कार के पीछे-पीछे चले।

मेहमानों को सिकन्दरा के फाटक पर उतार कर कार मुझे कैलास तक पहुँचा गई। ड्राइवर ने बताया कि चाँदनी रात में दो-तीन घंटे वे लोग सिकन्दरा में ही विहार करेंगे।

[७]

आश्रम में पहुँच कर मैंने पत्नी को सविस्तार सारी कथा सुनाई। अपनी स्मृति पर सारा बल लगा कर उसने सोच देखा, पर उस नाम या तरह के किसी भिखारी या बालक से परिचित होने की उसे याद न आई।

"जब से मुझे होश है, बचपन से लेकर अब तक मैं ऐसे किसी लड़के को नहीं जानती।" उसने अपना निर्णय दिया।

उस रात हम बहुत देर में सो सके। सोते समय एक बार मुझे याद आई कि जो चीज़ें खरीदने मैं शहर गया था उनका मुझे ध्यान ही नहीं रहा था और मैं उन्हें नहीं लाया था।

दूसरे दिन तीन बजे के लगभग एक आदमी ने मंदिर के आँगन में आकर मुझे आवाज़ दी। उसके संकेत पर मैं नीचे उतरा।

"हरीश बापू ने गाय भेजी है। उसे कहाँ बाँध दूँ?" आदमी ने कहा।

मैंने स्थान बता दिया और बाहर से एक स्वस्थ मंझोले क़द की गाय और बछड़ा लाकर उसने वहाँ बाँध दिया। गाय के साथ एक आदमी और था। ये दोनों आदमी जमना किनारे चले गये। मैं अपने कमरे में आ गया।

यह गाय मेरे लिए ही आई है। मुझे साधु की दो दिन पहले की बात का ध्यान आ गया था। हरीश बाबू भी आ रहे हैं, आदमी ने मुझे बताया था। यह सब क्या हो रहा है, मैं सोचने लगा। यह गाय मेरे गले क्यों बाँधी जा रही है? क्या इसी लिए नहीं कि इनके ऋण या एहसान में दबकर मैं इनके मतलब का कोई काम करूँ? लेकिन मैं वैसा क्यों करूँगा? मैं इस गाय के दाम कहाँ से चुका सकता हूँ? इनका कोई अच्छा संघटन जान पड़ता है। इनकी संस्था गहरी जमी हुई और समृद्ध जान पड़ती है। पर उसका उद्देश्य क्या हो सकता है? कम्यूनिस्टों, पूँजीवादियों या फ़ासिस्टों की यह कोई गुप्तचारी संस्था हो सकती है या किसी नये गुरुडम या नये आर्थिक व्यवसाय की गुटबन्दी हो सकती है। या यह तान्त्रिकों-यान्त्रिकों का कोई नया स्कूल है। नये नगर की स्थापना। वेंकटाचलम। हरीश बाबू। राजा भिखारी। मेरी विचारधारा रुकी। अपने ऊपर मुझे क्षोभ हुआ। मैं इसे बुरा ही क्यों समझे जा रहा हूँ? सँकरे संदेह और अविश्वास की ही दृष्टि से मैं इसे क्यों देख रहा हूँ? यह कोई पवित्र, समर्थ और ऊँचे आदर्शों वाली चीज़ भी तो हो सकती है। अपरिचित वस्तुओं को मुझे साधु और सहृदय भाव से देखना चाहिए। मेरी विचारधारा अब इस दूसरी दिशा में बहने लगी।

कुछ देर बाद फाटक के बाहर तांगे की आहट मैंने सुनी।

ऊपर की छत से मैंने देखा, कल का वही युवक और वह भिखारी बालक तांगे से उतर कर इधर की ओर बढ़े। इस समय बालक के शरीर पर लम्बा, खुले कालर का फटा हुआ सूती कोट नहीं था। ज़ीने के नीचे उतर कर मैं स्वागतपूर्वक उन्हें ऊपर ले आया। वह बालक ही आगे था। लीला को देखते ही उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

"अरे तुम! लीला ने मानो चौंक कर कहा, तुम्ही तो उस दिन वेकंट दादा के साथ टोकरी लेकर आये थे।"

"बिलकुल आया था" बालक ने हाज़िरजवाबी से कहा, "और आज उस टोकरी से भी बड़ी चीज़ ले कर आया हूँ। उस दिन चावल से भरी टोकरी लाया था, आज दूध से भरी गाय लाया हूँ।"

लीला को मैंने हरीश बाबू का नाम बताया। यथोचित अभिवादन के बाद हम सुविधापूर्वक कमरे में बैठ गये।

"आप से कुछ देर पहले दो आदमियों के साथ गाय आगई है, और मैंने उसे बँधवा दिया है।" मैंने बात प्रारम्भ की।

"वह आपके लिए हमारी स्नेह-भेंट है। आपके काम की चीज़ है।"

स्नेह-भेंट में आप बहुत बड़ी चीज़ लाये हैं। खैर, उसकी बात तो फिर होती रहेगी। आप लोगों ने मेरे सामने पहेलियों का जाल बिछा दिया है। मैं उन्हें बूझने के लिए उत्सुक हूँ।" मैंने कहा।

"हम-आप मिल रहे हैं तो उन पहेलियों को बूझें-बुझायेंगे ही। मैं अपनी ओर से कहना प्रारम्भ करूं या पहले आप कुछ प्रश्न करेंगे?

"आप ही कहिए। यह तो आप समझते ही हैं कि मैं आपका, स्वामीजी का और इस राजा का परिचय तथा आप सब के पारस्परिक सम्बन्धों को जानने के लिए कितना उत्सुक है!"

"वही सब मैं आपको बताऊँगा। मैंने आपका वह 'पूर्व-धारणा और अन्ध धारणा' शीर्षक लेख पढ़ा था, और मुझे विश्वास है कि आप ठीक उसी के अनुसार हमारे परिचय को बिना किसी पूर्वधारणा के ग्रहण कर सकेंगे।"

"आपने यह कह कर मुझे अच्छी चेतावनी देदी है। लेखक अपने लेख में कितनी अच्छी और सुलझी हुई बातें कह जाता है। उन्हें अपने दैनिक व्यवहार में पूरा नहीं उतारपाता, लेकिन मैं अब आपकी बातें निष्पक्ष मन से ही सुनने का प्रयत्न कर सकूँगा।"

"मैं और यह राजा आपको चार फ़रवरी सन् सैंतालीस से जानते हैं। वह आपके यहाँ आने का तीसरा ही दिन था। श्यामकुटी की छत पर से वेंकटाचलम ने राजगुफा की ओर उँगली उठाकर मुझसे और राजा से कहा था: 'वह छतरी के मंडप में बैठा हुआ जो आदमी कुछ लिखता-सा दीख रहा है वह रावी नाम का एक युवक है। वह परसों ही इस कैलास में आया है और अब यहीं रहेगा। यहाँ रह कर वह हिन्दी का एक अच्छा लेखक बन सकेगा। उसने पहले भी कुछ लिखा है और इस कला के बीज उसमें अच्छे हैं। इस दिशा में उसका विकास ठीक चला तो तीन-चार वर्ष में ही वह हमारे लिए एक विशेष उपयोगी मित्र सिद्ध होगा।"

कथा के इस प्रारंभिक प्रकरण ने मुझे विशेष रूप से

आकृष्ट कर लिया। जिज्ञासा के साथ आत्म-गौरव की भावना से मैं भर उठा। पर इस सबको भीतर ही दबा कर मैंने पूछा :

"यह राजा, आज से पौने चार बरस पहले क्या यह बिलकुल बच्चा ही न रहा होगा ? मैं इसे आपके समकक्ष साथी के रूप में देख रहा हूँ। यह कबसे आपके लिए ऐसा ही चला आ रहा है ?"

"देखने में यह अब भी दस वर्ष से अधिक नहीं जान पड़ता, लेकिन है यह इस समय सत्रह साल का। नौ वर्ष पहले वेंकट ने इसे कानपुर की गलियों में भीख माँगते पाया था। तब यह आठ वर्ष का था और देखने में चार-पाँच साल का लगता था। इसके मा-बाप—उनका पेशा भी भीख माँगने का ही था—दोनों ही उसी साल मर चुके थे। वेंकट ने इसे साथ ले लिया। इसके भीतर ढकी हुई विशेष पैनी बुद्धि को उन्होंने देख लिया था। वह इसे बम्बई ले गये। वहाँ तीन बरस रख-कर इसे आवश्यक शिक्षा दी गई। तब से यह इलहाबाद, बनारस, आगरा, कानपुर, अहमदाबाद और दिल्ली में साल-साल भर रहा है और अब फिर आगरे आया है। हमारे मिशन में इसका सहयोग एक तरह से सबसे बड़ा है।"

युवक क्षण भर को रुका। मैंने बग़ल की चारपाई की ओर, जिस पर राजा आकर बैठा था, दृष्टि घुमाई, पर वह न जाने कब वहाँ से उठ गया था। कमरे के बाहर छत पर निगाह पड़ते ही मैंने देखा, वह नन्हें अशोक से कुछ दूरी पर बैठा उससे मित्रता करने का उपक्रम कर रहा था।

"मैं विश्वास कर सकता हूँ। उसका व्यक्तित्व असाधारण

है। आपके मिशन का भी परिचय मुझे आज मिलेगा।" मैंने कहा।

"मैं सभी कहूँगा। इस राजा का मुख्य कार्य-क्षेत्र भीख माँगने वाले लड़कों में है। विभिन्न नगरों में अबतक सौ से ऊपर भीख माँगने वाले बच्चे इसने हमें चुनकर दिये हैं। स्वर और मुखाकृति से बच्चों की परख करने की गहरी दृष्टि इसे प्राप्त है। उन बच्चों को हमने उनकी योग्यतानुसार अच्छे, सचेतकारी गीत गाने की, अभिनय और चेष्टानाट्य की, अच्छी प्रभावशाली बात करने की शिक्षाएँ दी हैं। वे विभिन्न नगरों में अच्छा काम कर रहे हैं।"

"क्या काम?" मैंने बीच में प्रश्न कर दिया, "क्या आपने उन्हें भिक्षावृत्ति से निकालकर अच्छे गायक, अभिनेता या वक्ता बना दिया है?"

"नहीं। वे लगभग सभी अब भी भीख ही माँगते हैं, पर उन्हें अपने खाने की चिन्ता नहीं है। जिस दिन उन्हें खाने भर को भीख न मिले उस दिन उनके भोजन का प्रबन्ध हमारे मिशन की ओर से रहता है। वे जनता में चेतावनी और जागृति का संदेश पहुँचाते हैं और इस काम के लिए उन्हें कवियों के चुने हुए गीत और कुछ विशेषकर इसी अभिप्राय से लिखे गये गीत कंठस्थ कराये गये हैं। भिखारियों का संघटन करके—बल्कि कुछ अच्छे संस्कार और स्वभाव वाले भिखारियों को चुनकर उनका संघटन करके—उनके द्वारा समाज में कुछ जागृति उत्पन्न करने के प्रयोग को हमने यथेष्ट सफल पाया है। हमारी धारणा है कि भारतीय समाज के इस वर्ग के चुने हुए

विभाग द्वारा समाज का बहुत बड़ा मानसिक संस्कार किया जा सकता है।"

"आपकी यह व्यवस्था बहुत खूब है। शिक्षा और समृद्धि की दिशाओं में बढ़ते हुए देश अपने यहाँ से भिखमँगी को मिटाने का प्रयत्न कर रहे हैं और आप उस पर उपयोगिता की कलई चढ़ाकर उसे स्थायी बना देना चाहते हैं।" मैंने ऊपर से आरोप लेकिन भीतर से जिज्ञासा का भाव लिए हुए कहा।

"भिखमँगी?" युवक की आँखों में एक सतेज मुस्कान दीख पड़ी, "भिखमँगी संसार से मिट नहीं सकती और मानव-समाज को आगे बढ़ना है तो मिटनी भी नहीं चाहिये। संस्कृति का विकास और संरक्षण यही वर्ग करता है जिसे जीवन की आवश्यक मोटी वस्तुओं का उत्पादन स्वयं नहीं करना पड़ता।"

"तब क्या देश और समाज की किसी ऐसी दशा को जिसमें किसी व्यक्ति के लिए काम की कमी न हो और रोटी-कपड़े की व्यवस्था शासन या समाज की ओर से हर आदमी के लिए निश्शुल्क हो—ऐसी दशा में तो उस देश में कोई भिखारी न रहेगा—ऐसी दशा को क्या आप समाज की प्रगति में बाधक कहेंगे?" मैंने कहा।

"वह दशा काफ़ी अच्छी होगी और हम उसका स्वागत करेंगे। लेकिन उस दशा में भी भिखमँगों का—आप अनुमति दें तो उसे मैं भिक्षुकों, परिव्राजकों या फ़कीरों का नाम दे दूँ—यह भिक्षुकों का वर्ग रहा आयेगा। उस समय उन्हें रोटी, कपड़ा और उसी तरह की दूसरी वस्तुएँ माँगने की नहीं तो कुछ अन्य साधन, सहयोग, सम्मान या सुविधाएँ माँगने और

पाने की आवश्यकता तो रहेगी ही। अलबत्ता यह केवल अपनी दुर्बलता और भूख के कारण दूसरों पर अप्रिय बोझ बनने-वाला भिखारी वर्ग अपने आप धीरे-धीरे समाप्त हो जायगा।"

मुझे लगा, चलते हुए प्रसंग को विवाद का रूप देकर मैंने अच्छा नहीं किया।

"आपका यह दृष्टिकोण और प्रयोग मुझे सर्वथा नवीन और बहुत सार्थक जान पड़ता है।" मैंने कहा।

"इनमें से कुछ भिखारी जिनमें उस तरह की योग्यता होती है, कुछ विशिष्ट जान पड़ने वाले लोगों के व्यक्तिगत सम्पर्क में भी आते हैं और उनमें कुछ उच्छाइयों को यानी उनकी व्यक्तिगत मिठास और सहृदयता को—जगाने में सफल होते हैं। ऐसे सजग और सहृदय व्यक्तियों के परिचय हमें इन भिखारियों द्वारा प्राप्त होते हैं और हम उनके सम्पर्क में आने का प्रयत्न करते हैं।"

"यह सुन्दर और महान् है। क्या इस सम्पर्क-स्थापना का आपका कोई विशेष अभिप्राय भी होता है?" मैंने पूछा।

"मनुष्यों के बीच परिचय, सद्भावना और मैत्री की स्थापना का विशेष अभिप्राय क्या हो सकता है? निस्संदेह उससे सेवा, सहयोग और एक-दूसरे को अधिक-से-अधिक समझ का अवसर प्राप्त हो सकता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य एक दूसरे को अधिकाधिक समझता जाता है, वह मिलकर बड़े-बड़े काम भी करता है—ऐसे काम जो उसकी परिस्थिति और चेतना के अगले निर्माण में अनिवार्य ही माने जाते हैं।"

"तब मैं समझता हूँ, आपका यह मिशन अधिक-से-अधिक मनुष्यों के बीच परिचय, सद्भावना और मैत्री का विस्तार

करने का है, और उसके लिए आपकी एक निश्चित योजना और कार्य-क्रम भी है, और इस सब के लिए आपकी एक व्यापक और सुगठित संस्था भी है।"

"आपका अनुमान बहुत कुछ ठीक है। कुछ काम ऐसे होते हैं, जो दूसरों के साथ मिलकर ही किये जा सकते हैं और उनके लिए संघटन और संस्था बनाना आवश्यक हो जाता है। लेकिन कोई संघटन या संस्था कितनी व्यापक, चारों ओर से कितनी खुली हुई, बँधे हुए नियमों और निश्चित कार्य-प्रणालियों से किस हद तक स्वतंत्र हो सकती है, इसका सामान्यतया लोगों को अभी अनुमान नहीं है। हमारी संस्था अगर आप उसे संस्था का नाम देना ही चाहें—एक ऐसी ही स्वतंत्र संस्था है। उसके कोई निश्चित उद्देश्य, कोई पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम नहीं हैं; उसका कोई नाम भी नहीं है।"

"उसका कोई उद्देश्य नहीं, कार्य-क्रम नहीं, यहाँ तक कि नाम भी नहीं; फिर भी आपका संघटन इतना व्यवस्थित जान पड़ता है। लेकिन अगर यह सब कुछ नहीं है तो फिर भिखारियों के शिक्षण और उनके द्वारा समाज की सेवा तथा यह नये नगर के निर्माण की बात का अवकाश कहाँ रह जाता है?" मैंने पूछा।

"मैंने यह नहीं कहा कि **उसका** कोई उद्देश्य नहीं और कार्यक्रम नहीं; मैंने कहा कि **उसके** कोई उद्देश्य नहीं **पूर्वनिर्धारित** कार्यक्रम नहीं। उसका एक मोटा उद्देश्य तो है ही; और वह है मनुष्य के हित के लिए जहाँ भी कोई अच्छी बात होती देखे, या होने की सम्भावना देखे, वहाँ यथाशक्ति अपना सहयोग दे। इस सिलसिले में जो भी काम सामने आते

जायँ, उन्हें हम हाथ में ले सकते हैं। हम जैसे-जैसे अधिकाधिक लोगों के सम्पर्क में आते-जाते हैं, उन लोगों की विविध रुचियों और क्षमताओं के अनुसार हमारे कामों की भी संख्या बढ़ती जाती है।"

"आपकी इस संस्था में मेरी रुचि भरपूर हो गई है। इसके जन्मदाता स्वामीजी ही हैं?" मैंने पूछा।

"स्वामीजी!" युवक के चेहरे पर एक उपहास की-सी मुस्कान झलक उठी, "वेंकटाचलम् कोई स्वामीजी नहीं है। मेरी आपकी तरह वह भी शिक्षित समाज का एक सदस्य और अपने क्षेत्र का कार्यकर्ता है। हमारे इस संघटन का सूत्रपात वेंकटाचलम् ने नहीं, उसके एक बड़े भाई ने किया है, अलबत्ता इसके संघटन का बहुत अधिक काम वेंकटाचलम् ने ही किया है।"

"लेकिन मैं समझता हूँ कि वेंकटाचलम् में कुछ यौगिक शक्तियाँ हैं और उन्हीं की सहायता से वह अपना काम इतनी तत्परता और सरलता से कर पाते हैं।"

"यौगिक शक्तियाँ! नहीं तो—लेकिन हाँ, कह सकते हैं उनमें कुछ यौगिक शक्तियाँ हैं। वह दूसरों के मस्तिष्क में उठते हुए विचारों को पढ़ सकते हैं और कभी-कभी दूर या पास के समय या स्थान में होने वाली घटनाओं को भी कुछ देख सकते हैं।"

"इतनी बड़ी बात!" मैंने प्रभावित होकर कहा, "और इन्हें आप यौगिक शक्तियाँ नहीं कहना चाहते? मुझमें और शायद आपमें भी तो ऐसी शक्तियाँ नहीं हैं।"

"लेकिन वेंकटाचलम् में आपकी जैसी कल्पना करने और

कहानियाँ रचने की शक्ति और मेरी जैसी व्यवसाय-कौशल की शक्ति नहीं है !"

इसी समय लीला ने पास आकर कहा :

"मठा तो अब है नहीं, आप लोग चाय पियेंगे ?"

"मैं चाय पीता हूँ। आप पिलायें तो कृपा होगी। लेकिन उस राजा को आप एक-दो रोटी या और कोई चीज़ खिला सकें तो अच्छा हो। वह दिन भर भूखा रहता है।" युवक ने लीला से कहा।

"वह रोटी ही खा रहा है" लीला लौटती हुई कहती गई, और हमने देखा कमरे के दूसरे सिरे पर राजा चटाई पर बैठा मठे के प्याले में रोटियाँ मीड़-मीड़ कर डाल रहा था और अशोक उसके पास बैठा पूरे सब्र के साथ उसमें अपना हिस्सा लगाने की प्रतीक्षा कर रहा था।

मैंने सोचा यह हरीश बाबू वेंकटाचलम की यौगिक शक्तियों की बात को टालना ही चाहते हैं। मेरा भी उसकी चर्चा में उतरने का कोई आग्रह नहीं था, इसलिए मैंने आगे उस बात को नहीं उठाया।

"इतनी सब बातें हुइ, पर आपने अभी तक अपना पूरा परिचय नहीं दिया।" मैंने कहा।

"हरीशचन्द्र मेरा नाम है। किराने की आढ़त का हम लोगों का पुश्तैनी व्यवसाय है। यहीं के रहने वाले हैं और यहीं हमारे पाँच-छह मकान हैं। दो छोटे भाई मेरे और हैं जो इन्हीं कामों को सम्हालते हैं। पिताजी का देहान्त पिछले वर्ष ही हुआ है। आज से छह वर्ष पहले वेंकटाचलम् से मेरा सम्पर्क हुआ था। तब से करने के लिए कुछ अच्छे-भले काम मेरे हाथ

लगते रहते हैं। एक तरह से मैं इस राजा की ही खोज हूँ और वेंकट से मुझे मिलाने का श्रेय इसे ही है।"

"राजा की ऐसी खोजों की कहानी बड़ी महत्त्वपूर्ण जान पड़ती है। मैं उन सब को सम्भवतः जान सकूँगा। कल शाम भी इसने एक बाबूजी और उनकी श्रीमतीजी को खोज निकाला है।"

ऐसा ही जान पड़ता है। आप हमारी अबतक की सारी प्रगति को जानेंगे। आपको यह सब जताने में हमारा भी बड़ा लाभ है।"

"आप क्या समझते हैं, मैं आपके लिए किस तरह विशेष उपयोगी हो सकता हूँ?" मैंने पूछा।

"यह सब आगे चलकर और विशेषकर आपके ही देखने की बात है।" उसने कहा और हम दोनों कुछ क्षण के लिए चुप हो गये।

उसके बाद गाय, मठा, दूध और मेरे इस स्थान के पास-पड़ोसियों आदि की बातें चल पड़ीं। लीला ने चावल के तले हुए सेव और चाय परोस दी। वैसी ही इधर-उधर की बातों के बीच हमने चाय पी और कुछ देर बाद हमारे ये दोनों अतिथि अपने ताँगे पर सवार हो कर बिदा हो गये।

उन्हें भेजकर जब मैं लौटा तो लीला ने प्रसन्न स्वर में कहाः

"अब तो गाय आ गई। वेंकट दादा ने भेजी है न? इसके दाम तो नहीं देने होंगे?"

"रुपयों में दाम तो नहीं देने होंगे, लेकिन इसका दाम यही देना होगा कि अब हमें बहुत तंगी से, सिर्फ़ पचास रुपये

महीने में गुज़र करना पड़ेगा।" मैंने उसे कुछ खिझाने के भी विचार से कहा।

"ऐसी बात?" वह कह गई, और मैंने देखा, उसके चेहरे पर उल्लास में विषाद का मिश्रण दर्शनीय था।

[८]

बुद्ध पर नाटक लिखने की मेरी सारी प्रतिभा खो गई। बुद्ध को मैं मानव-जाति का, और इस नाते अपना भी, सबसे बड़ा उपकारकर्ता मानता हूँ, पर उन पर नाटक लिखकर ही मैं उनके प्रति अपना कौन-सा आभार प्रदर्शन या अपना और अपने समाज का हित कर लूँगा? बुद्ध पर जीवनियाँ और नाटक बहुत से लिखे हुए पहले से ही मौजूद हैं। बुद्ध पर नाटक लिखकर, मैंने देखा, मैं अपने भीतर की कोई बड़ी वस्तु साहित्य को नहीं दूँगा। मुझे खोजने पर पता लगा कि यह नाटक मैं केवल आर्थिक आवश्यकताओं के कारण ही लिखने जा रहा था और उसकी रचना में मेरी कोई हार्दिक रुचि नहीं थी। दूसरी ओर पिछले पाँच-सात दिनों से जो घटनाएँ मेरे सामने घट रही थीं वे मेरे हृदय में भर-भर कर उबल रही थीं। वेंकटाचलम् और उसके संघटन की कथा मेरे लिए सबसे अधिक रोचक और आकर्षक वस्तुएँ हो रही थीं। इन सबके प्रति मेरी जिज्ञासा, श्रद्धा और एक अपूर्ण-दृष्ट आत्मीयता भी जाग उठी थी। अपने विचारों और भावनाओं को लेखनी की राह समाज के साहित्य में उतारने की मुझे आदत हो गई थी और इसमें बहुत सुख भी मिलता था। रोटी का साधन भी मेरा यही बन गया था। फिर मैं इस प्रत्यक्ष कथा को ही क्यों न लिखूँ, डायरी के रूप में या हो सके तो एक उपन्यास के रूप

में ? यह रहस्यपूर्ण कथा किसी भी उपन्यास से कम रोचक न बैठेगी। और यदि यह वेंकट साधु और उसका संघटन उतनी ऊँची चीज़ें न निकलीं जितनी मैं अभी आशा कर रहा हूँ तो ? यदि यह कोई प्रपंच अथवा संकीर्ण साम्प्रदायिक या राजनैतिक षड़यंत्र निकला तो ? तो भी क्या, अध्ययन और रोचकता की दृष्टि से तो इसका अपना महत्व होगा ही। लेकिन मैं इनके बारे में ऐसे कठोर संदेह क्यों करने लगता हूँ ? मगर संदेह करने में बुराई क्या है, यह तो विवेक का बहुत बड़ा अंग-रक्षक है। मुझे संदेह अवश्य करना चाहिए; हाँ संदेह में बह नहीं जाना चाहिए। यह हरीश और राजा। वेंकटाचलम् की बात छोड़ भी दें तो इन दोनों के भीतर कौन-सी ऐसी बात है जिस पर किसी बुराई या छिछले स्वार्थ का संदेह किया जा सके ? ये उस साधु के अंध भक्त भी नहीं जान पड़ते, और इनका बताया हुआ मिशन तो बहुत सादा और उदार है। अपनी इस तर्क-वितर्क भरी विचारधारा में मैंने इन सबके प्रति अपनी अनिवार्य जिज्ञासा, श्रद्धा और आत्मीयता को डूब-डूबकर उभरते ही देखा।

अपने प्रकाशक को मैंने अगले दिन पत्र लिखा कि मैं बुद्ध पर नाटक अभी आरंभ नहीं कर सकूँगा। उन्हें जल्दी हो तो किसी अन्य लेखक से यह काम ले सकते हैं। उस दशा में मैं उनसे पाई हुई अग्रिम रक़म वापस करने का प्रयत्न करूँगा। लेकिन यह मेरे लिए कठिन और असाध्य भी हो सकता है। बहुत ही अच्छा हो यदि वे उस रक़म को मुजरा करते हुए अपनी सर्वोत्तम पसंद की मेरी किसी भी रचना का सौदा कभी भी करलें। वैसे. मुझे आशा है कि दो-तीन महीने बाद मैं बद्ध

पर ही नाटक लिखकर उन्हें दे सकूँगा। इस आशय का, लेकिन मैत्री और कृतज्ञता के स्वर में लिखा हुआ पत्र मैंने डाक में भेज दिया। और वेंकटाचलम् से प्रथम भेंट के समय से अब तक की सारी घटनाएँ डायरी के रूप में विस्तारपूर्वक लिखने के लिए बैठ गया। तीन दिन में मैंने यह लेखा पूरा कर लिया। अब वेंकटाचलम् के लौटने की प्रतीक्षा मेरे मन में आतुरता का रूप ले उठी। उसकी अनुमति न हुई और मेरे इस लेखन से उसके मिशन को कोई हानि पहुँचने की बात हुई, तब मेरा यह सब लिखा व्यर्थ हो जायगा और मैं आगे इस प्रसंग पर अपनी लेखनी नहीं उठाऊँगा। इस निश्चय के लिए मैं उत्सुक था; और इस मिशन की ओर नये नगर के निर्माण की मेरे सामने आने वाली अगली प्रगतियों की जिज्ञासा मेरे हृदय का और भी बड़ा कोना घेरे हुई थी।

दो दिन और बीतने पर तीसरे दिन अचानक राजा की सूरत दिखाई दी। ज़ीने पर चढ़ते ही उसने सूचना दी कि वेंकट दादा लौट आये हैं और राजगुफा में हैं। एक घंटा बाद से लेकर शाम तक मैं अपनी सुविधानुसार उनसे मिल सकता हूँ। घंटा पूरा होते होते मैं राजगुफा में जा पहुँचा।

"आइये श्रीयुत नये उपन्यासकार महोदय!" वेंकटाचलम् ने—अब मुझे इसी नाम से उसे पुकारने की इच्छा होती है—मुझे देखते ही खड़े होकर और स्वागत के लिए हाथ बढ़ाते हुए कहा, "निस्सन्देह मुझ में कुछ यौगिक शक्तियाँ हैं और यदि आप उन्हें पाना नापसंद न करेंगे तो वे आपको भी मिल जायंगी।"

"मैंने उपन्यास—ठीक अर्थों में उपन्यास तो नहीं, बल्कि

डायरी के रूप में आपकी सारी कथा—लिखना भी प्रारम्भ कर दिया है और आपकी यौगिक शक्तियों की भी हरीश बाबू के साथ और फिर अपनी डायरी में चर्चा की है। आपके ये दोनों परोक्ष दर्शन लगभग सत्य हैं" मैंने कहा।

"लगभग नहीं, आप उन्हें पूर्णतया सत्य ही कह सकेंगे, यद्यपि इनमें से पहली बात का ही सम्बन्ध मेरे परोक्ष दर्शन से है और दूसरी बात का साधारण प्रत्यक्ष दर्शन से। लेकिन अपनी यौगिक शक्तियों पर बातचीत की अपेक्षा मैं इस समय आपकी उस डायरी को सुनने के लिए अधिक उत्सुक हूँ। यदि आपकी उत्सुकता मेरी इस उत्सुकता के बहुत विपरीत न जाती हो तो आप पहले उसे ही सुनाने की कृपा करें। आपके हाथ में यह वही चीज़ है?"

डायरी मैं साथ लेता गया था। निस्संदेह उसे सुनाकर उस पर वेंकटाचलम् की अनुमति पा लेना ही मेरी भी प्रथम उत्सुकता थी। मैंने यह बात उसे बताई और सुविधापूर्वक बैठकर वह सारा लेख उसे पढ़-सुनाया।

"डायरी आपने ठीक और बहुत सुन्दर लिखी है" वेंकटाचलम् ने अब सहज गंभीर भाव से कहा, "और इसमें आपका अपना जो रुख़ है उस पर मुझे पूरा संतोष है। आपकी यह चीज़ हमारे बड़े उपयोग की होगी।"

. वेंकटाचलम् की इस टिप्पणी से मुझे अभीष्ट आश्वासन मिल गया। मैंने देखा मेरा यह परिश्रम भी सफल हुआ और आगे की आशा का मार्ग भी साफ़ हुआ।

"मेरी इस डायरी का क्या आप कोई विशेष उपयोग देख रहे हैं? मेरे इस रुख पर आपको पूरा संतोष है तो इसके

सम्बन्ध में मेरे किस रुख से आपको असंतोष हो सकता था?" मैंने पूछा।

"अगर आप भक्त, श्रद्धालु और धर्म-भीरु तथा साधु-भीरु प्रकृति के होते और वही रुख आप इस सारे वर्णन में लेते तो आपकी चीज़ कमज़ोर और हमारे लिए भी अनुपयोगी हो जाती। हम आपको स्पष्टवादी आलोचक और साथ ही विवेक-शील जिज्ञासु के रूप में पाना चाहते थे और वैसा ही पाकर हमें पूरा सन्तोष है। कुछ असाधारण जान पड़ने वाली घटनाओं या चमत्कारों से चौंधिया जाने वाले या उसके दृष्टिकोण से अनुचित या अधार्मिक जान पड़ने वाली बातों से उखड़ जाने वाले आदमी से हमारा यह काम नहीं बनता। आपकी इस डायरी का हमारे लिए—और इस जगह आप भी हममें सम्मिलित हैं—क्या उपयोग है यह आप स्वयं ही आगे देखेंगे।" वेंकटाचलम् ने कहा।

"तब आप मुझ से इस तरह की डायरी लिखने की पहले से ही आशा किये हुए थे!"

"निस्संदेह। यही वह सबसे बड़ा काम था जो आप हमारे लिए कर सकते थे।" कुछ क्षणों तक हम दोनों चुप रहे। फिर उसने कहना प्रारम्भ किया :

"जो काम मनुष्य करता है और उनके जो फल वह उत्पन्न करता है उन सब के बहुत थोड़े अंश को ही वह अपनी आँखों और मस्तिष्क से देख पाता है। कौन कह सकता है कि एक रावी या वेंकटाचलम् या सोहन या सरजू का किसी से कहा हुआ एक-एक साधारण-सा शब्द, या किया हुआ एक छोटा-सा काम वास्तव में कितना बड़ा शब्द या काम है और

उसके फल निकट या दूर के भविष्य में कितने महान् नहीं हो सकते। मेरे प्यारे मित्र—"और वेंकट के हाथ के स्पर्श से विशेष सावधान होकर मैंने पहली बार देखा, उसके स्वर के साथ उसकी मुख-मुद्रा विशेष गंभीर हो उठी थी और एक सरलता में निखरे हुए साधु का स्नेह उसकी आखों में उमड़ आया था। वह कह रहा था, "आपकी रुचि जिस नई, केवल साहित्यिक जान पड़ने वाली रचना के लिए जाग उठी है और आपके सहयोग को गिनकर मैंने जिस नये काम में हाथ डाला है उसके आदि, मध्य और अन्त को हम लोग नहीं नाप सकते। आप उसके एक बहुत छोटे अंकुर की ही कल्पना कर सकते हैं और मैं अपने प्रकाश के अनुसार उसे आपकी अपेक्षा कुछ और बढ़े हुए रूप में देख पाता हूँ। आपने एक बहुत बड़े काम को हाथ में उठा लिया है। आप मेरे एक विशेष सहकारी, मित्र और भाई हैं और इन्हीं खुले शब्दों में मैं आज आपका अभिवादन करता हूँ।"

वेंकट के इन शब्दों ने मुझे कुछ देर के लिए नहला दिया। उसके उस स्पर्श में भी शायद कोई चुम्बकीय शक्ति थी। मैंने उन क्षणों में अनुभव किया, मानो वह मेरा परम-स्नेही और समकक्ष मित्र ही है और मेरे उसके बीच किसी प्रकार की कोई दूरी नहीं है।

बहुत देर तक शायद दस मिनट तक हम दोनों चुप रहे। धीरे-धीरे मुझे लगा कि मैं वेंकट के धरातल से नीचे खिसक रहा हूँ और वह मुझसे बहुत ऊँचा है। वह भूत और भविष्य का, प्रत्यक्ष और परोक्ष का द्रष्टा है। वह कर्मयोगी है। उसने बहुत बड़े काम किये हैं और कर रहा है। अन्तर्जगत् से उसका

तार जुड़ा है और मुझे भी साथ लेकर वह एक और बहुत बड़ा काम, एक नये नगर की स्थापना, एक आदर्श, अधिक विकसित, सुखी और समृद्ध नगर की स्थापना करने जा रहा है। उसके पास साधनों की कमी नहीं है। इसी समय वेंकट के स्वर ने मेरी विचारधारा भंग की :

"आपके साथ जिस बड़े काम को मैंने हाथ में उठाया है वह इतना व्यापक और उसकी सीमायें इतनी अदृष्ट हैं कि हम उन पर अभी कोई विशेष बात नहीं कर सकते। हम एक बहुत बड़े भवन की एक दीवार में केवल एक ईंट ही रख सकते हैं और इस नाते कह सकते हैं कि हम एक बड़े भवन का निर्माण कर रहे हैं। वह एक ईंट भी अपने आप में, अपने पैमाने पर एक पूरा भवन है। हमारे काम और रुचि का पूरा अंश तो वह पूरा काम ही है जो हम कर पायेंगे, लेकिन इस समय आपकी इस डायरी पर ही हमें कुछ सोचना है।"

"अवश्य" मैंने सावधान होकर कहा।

"मैं देख रहा हूँ कि आपकी यह रचना पूरी होकर आपकी एक उच्च कोटि की साहित्यिक कृति ही नहीं, हमारे कार्य को आगे बढ़ाने में भी सहायक होगी, और वह केवल प्रचार या विज्ञापन के रूप में ही नहीं, बल्कि हमारे लिये आवश्यक अगले साधनों के जुटाने में भी हमारा बड़ा हाथ बटायेगी।"

"ऐसा हो सका तो मैं भी एक तरह से विशेष भाग्यवान् हूँगा।" मैंने कहा।

"इस रचना के सम्बन्ध में मेरा एक सुझाव है। आप

इसे डायरी के बदले एक उपन्यास का रूप दे दें तो मैं समझता हूँ अधिक अच्छा रहेगा।"

"मैं स्वयं भी ऐसा सोच रहा था और आपकी सलाह है तो ऐसा ही करूँगा। लेकिन इसमें कुछ बड़ी कठिनाइयाँ पड़ेंगी।"

"वे क्या?"

"मुझे सबके कल्पित नाम रखने पड़ेंगे। विशेष कर अपना ही कोई दूसरा नाम रख कर अपने आपको 'अन्य पुरुष' में रखना मुझे एक बड़े व्यक्तिगत घाटे की-सी बात लगेगी।"

"आप अपना या किसी का नाम क्यों बदलेंगे? इसकी क्या आवश्यकता है?"

"इसकी कोई आवश्यकता नहीं है?" मैंने अचरज के साथ कहा, "तो बड़ी अच्छी बात है, मैं सबके नाम ज्यों-के-त्यों रहने दूँगा। लेकिन अपनी जगह तो मुझे किसी कल्पित नाम के व्यक्ति को रखना ही पड़ेगा।"

"वही तो मैं जानना चाहता हूँ। आप अपना नाम क्यों बदलना चाहते हैं?"

"मुझे उपन्यास की शैली पर यह चीज़ लिखनी है। तो स्वयं उसका लेखक होते हुये मैं उसका एक पात्र नहीं हो सकता।"

"क्या यह उपन्यास के लिये कोई अनिवार्य नियम है?"

"मैंने कोई ऐसा उपन्यास नहीं देखा, जिसमें लेखक स्वयं भी एक पात्र हो। कहानियाँ तो लोगों ने वैसी लिखी हैं।"

"आपने नहीं देखा तो इसका यह अर्थ तो नहीं कि वह उपन्यास के लिये कोई वर्जित बात है या उस तरह का कोई उपन्यास किसी ने लिखा ही नहीं है।"

"तो मुझे तो ऐसा करने का लालच है ही। लेकिन इससे मेरी दूसरी कठिनाई बढ़ जाती है। वास्तविक संवादों और घटनाओं के अनुसार हो सकता है मैं कोई बहुत महत्त्वपूर्ण और आदरणीय आदमी निकलूँ। योगिराज वेंकटाचलम् का परम मित्र और दाहना हाथ, एक नये समाज और नगर का निर्माता, योगिराज और आगे न जाने किन-किन द्वारा प्रतिष्ठा-वचनों से सम्मानित और शायद आगे चल कर स्वयं भी कुछ योग-सिद्धियों से विभूषित। उस दशा में मुझे या तो अपने आपको बहुत दबा-घटा कर चित्रित करना पड़ेगा, जो-कि मेरे लिये बहुत अप्रिय कार्य होगा, या फिर अपने साहित्यिक आलोचकों और मित्रों की दृष्टि में, ऐसा उपन्यास लिखने के लिए अत्यन्त दम्भी, शायद मूर्ख भी दीखने का अपमान सहना पड़ेगा। यह भी सम्भव है, कुछ लोग मेरी इस रचना की बातों को देख या सच मान कर मुझे संत-महात्मा बना लें और मेरी पूजा करने लगें।"

"इस दूसरे प्रकार के मूर्ख" वेंकट ने कहा, "अब शिक्षित और विचारशील समाज में आपको बहुत कम मिलेंगे। श्रद्धा, पूजा और तीसरी चीज़ कृतज्ञता—इन तीन नामों की वस्तुओं ने मनुष्य का पिछले दो हज़ार वर्षों में जितना अहित किया है उतना किसी चौथी चीज़ ने नहीं किया। नई चेतना के प्रवाहों ने आज के सोचने वाले मनुष्यों के हृदयों में प्रकट नहीं तो अप्रकट रूप से इन चीज़ों की निस्सारता अंकित करनी प्रारम्भ कर दी है। जो लोग हमारे सम्पर्क में आयेंगे वे इतने अंधे नहीं होंगे और जो होंगे उनसे हमारा सम्पर्क आगे नहीं चल सकेगा। मेरे और आपके सम्पर्क में ही क्या यह बात स्पष्ट नहीं है?"

"है, मैं मानता हूँ।"

अब रही आलोचकों और मित्रों द्वारा अपमान की बात। सो अपमान और मान मित्रों और आलोचकों की दृष्टि में नहीं, आपके अपने भीतर की चीज़ें हैं। वे आपके बारे में वैसा कुछ सोचें या कहें तो आपकी उसमें वास्तविक हानि क्या है? एक बड़े लाभ को पाने के लिए आपको कुछ छोटी हानियाँ उठाने के लिए तैयार ही होना पड़ेगा। आप लिखिये खूब खुलकर साफ़-साफ़ लिखिये और उपन्यास के लिए आवश्यक हो तो वास्तविक बातों में इच्छानुसार कुछ कल्पनाएँ भी टाँक कर उन्हें एक अच्छे उपन्यास के लिए उपयुक्त बनाइये।" वेंकटाचलम् ने अन्तिम बात बड़ी अलमस्ती के स्वर में कही। अपनी उस सौम्य गम्भीर मुद्रा से वह धीरे-धीरे यहाँ तक उतर आया था।

"मैं ऐसा ही करूंगा" मैंने निश्चय के स्वर में कहा, "और प्रधान नायक वेंकटाचलम् द्वारा अभिनीत चरित्र को लेखबद्ध करके एक मौलिक उपन्यासकार का समूचा श्रेय भी निस्संकोच और सहर्ष स्वयं स्वीकार करूँगा।"

"तब फिर आप यह सारी चीज़ उपन्यास के रूप में फिर से लिखेंगे। उसका रचयिता न सही, प्रधान पात्र होने का गौरव ही मेरे लिये अधिक बड़ा रहेगा।" वेंकटाचलम् ने कहा।

वेंकटाचलम् से विदा लेकर मैं अपने डेरे की ओर लौटा। इस डायरी या उपन्यास को प्रारम्भ करके मैंने ऐसा कौन-सा बड़ा काम किया है? वेंकटाचलम् को मेरी इस रचना से ऐसी क्या बड़ी-बड़ी आशायें हैं? और क्या इसी काम के लिये

उसके हृदय में मेरा इतना सम्मान है ? इस उपन्यास की ओर मेरे भी अगले व्यक्तिगत विकास की क्या-क्या सम्भावनायें हो सकती हैं ? इसी समय अचानक मुझे ध्यान आया कि मैंने वेंकटाचलम् को उस गाय के लिये धन्यवाद देने की बात सोची थी; सोचा था कि यों कहूँगा कि गाय से मेरा तो बड़ा काम बन गया है पर मेरी पत्नी को नई-नई आशंकाओं ने घेर लिया है। मैं यह सब कहना भूल गया था। लेकिन वेंकटा-चलम् के अनुसार कृतज्ञ होना तो बहुत बुरी बात है—श्रद्धा, पूजा, कृतज्ञता, इन्ही ने मनुष्य का सबसे बड़ा अहित किया है। इसका अर्थ क्या हो सकता है ? मैं सोचता हुआ अपने कमरे में पहुँच गया।

[६]

अगले दिन सुबह मैं वेंकटाचलम् के पास जाने की तैयारी में ही था कि एक बड़ी स्टेशन वैगन कार कैलासपुरी के द्वार में आकर रुकी और मैंने अपनी ऊपर की छत से देखा, उसमें से उतर कर राजा के नेतृत्व में श्रीमानों और श्रीमतियों का एक दल इसी ओर चला आ रहा था।

"आपको लेने के लिए कुछ लोग आये हैं" राजा ने ऊपर आकर कहा, वे नीचे आँगन में खड़े हैं। ऊपर बुला लूँ ?"

उन्हें लेने के लिए मैं राजा के साथ ज़ीने के नीचे उतरा और देखा, उन सबके आगे हरीश बाबू थे। ऊपर आकर हरीश ने सबका परिचय दिया :

"डाक्टर रमाशंकर, मिसरी बाज़ार में इनका दवाख़ाना है; लाला राधाकान्त जौहरी, जौहरी बाज़ार में इनकी दूकान है; क़ुमारी प्रभा, इन्हीं की बहिन, बी० ए० में पढ़ती हैं; मिस्टर-

रूपचन्द भाटिया, खालसा बैंक के मैनेजर; और उनकी श्रीमती-शुभकमल भाटिया; मिस्टर दिनेशचन्द्र इनकमटैक्स के सलाहाकार; और उनको श्रीमती रत्नकुमारी विदुषी; और यह हैं इन आश्रमवासी लेखक श्री रावो की पत्नी श्रीमती लीलावती अपने सुपुत्र के साथ।" अन्तिम परिचय हरीश ने मेरे बराबर खड़ी हुई लीला को लक्ष्य कर अभ्यागतजनों के लिए दिया।

मैंने पहचाना, मिस्टर रूपचन्द भाटिया और उनकी श्रीमती शुभकमल भाटिया वही दम्पति था जिसे मैं उस दिन किनारी बाज़ार के होटल में राजा के यजमानों के रूप में देख चुका था।

"हम लोग इस समय आपके आश्रम की यात्रा करने या आपका कोई आतिथ्य स्वीकार करने नहीं आये हैं, बल्कि आज के अपने विशेष प्रोग्राम में आपको शामिल करने के लिए ही आये हैं। आप लोग जल्द-से-जल्द चलने के लिए तैयार हो जाय।" राधाकान्त जौहरी ने बात खोली।

"आखिर इतनी जल्दी, कहाँ चलना है, क्या प्रोग्राम है?" मैंने पूछा।

"आज चार बजे से रात के दस बजे तक ताजमहल में हम लोगों की विशेष पिकनिक है। एक विशेष संगीत का प्रोग्राम है। लेकिन आप के अभी चलने में ही सुभीता रहेगा। आप लोग दो पहर राधा बाबू के घर बितायेंगे।" हरीश ने कहा।

"तो ऐसी जल्दी क्या है" लीला ने कुछ असुविधा जताते हुए कहा, "खाना पीना करके हम लोग तीसरे पहर तक शहर आजायँगे।"

"उसमें आपको सवारी की असुविधा रहेगी। हम यही सोच कर आये हैं कि आपको अभी कार में ले चलेंगे। आप जल्दी ही कीजिए।" जौहरी ने प्रतिवाद किया।

"तो आप लोग कुछ चाय-वाय तो पियेंगे" लीला ने अनुरोध-सा किया।

"आज आपके यहाँ कुछ भी नहीं" अब प्रभा बोली; आप के यहाँ तो हम लोग अब हमेशा ही आयेंगे। आज दोपहर आप हमारे घर खाना खायेंगी।"

आखिर हमें उसी समय तैयार होना पड़ा। लीला का इतना आग्रह उन लोगों ने मान लिया कि हम लोग आज जौहरीजी के घर न जाकर अपने ही शहर वाले मकान में रुक जायँगे और तीन बजे उनकी कार दुबारा आकर हमें वहाँ से ले जायगी। शहर में हमारे पास किराये की एक कोठरी है, जिस में हम कभी-कभी शहर की आवश्यकता होने पर ठहर जाते हैं। इसमें हमारा गृहस्थी का कुछ सामान बन्द रहता है। इस घर में लीला को कुछ काम भी था इसी लिए उसने इस अवसर से यह लाभ उठाना पसंद किया था।

राह में सिकन्दरा के डाकखाने में मुझे मेरी उस दिन की डाक भी मिल गई। उस में एक चिट्ठी मेरे शहर के प्रकाशक की थी और दूसरी दिल्ली से रत्ना कुमारी की। प्रकाशक भी मेरे मित्र ही थे। उन्होंने लिखा था:

प्रिय रावीजी,

पत्र मिला। उत्तर में कुछ विलम्ब हुआ सो क्षमा करें। आप सुविधापूर्वक जब चाहें उस नाटक को प्रारम्भ करें, मुझे अभी जल्दी नहीं है। आप उसे न लिखना चाहें तो मैं आप

की कोई दूसरी रचना भी आवश्यकतानुसार ले लूँगा। उन रुपयों की कोई ऐसी बात नहीं।

आपका
राजेन्द्र

रक्षा कुमारी का पत्र था:

रावीजी, सादर अभिवादन।

वेंकट दादा आपके पास पहुँच गये होंगे। उनके समाचार की हम लोग दो दिन से प्रतीक्षा कर रहे हैं। १२ तारीख को हम लोग वहाँ पहुँच जाना चाहते हैं। आशा है आप आवश्यक आदेश मुझे भेज सकेंगे।

उस दिन मैं आपसे कुछ बात नहीं कर सकी। उसका कारण भी था, फिर भी मैं उसके लिये लज्जित हूँ। मुझे आपसे बहुत कुछ लेना है। मेरी बहिन को मेरा सप्रेम मिलन कह दीजिये और छोटे-से अशोक को मेरी ओर से प्यार कर लीजिये।

विनीता
रक्षा

कार हमें आलमगंज में हमारे घर पर छोड़ती गई। राजा भी मेरे साथ रुक गया।

घर पहुँच कर लीला ने संक्षिप्त-सा सफ़री भोजन पकाया और बारह बजे तक हम तीनों खा-पी कर निवृत्त हो गये। शहर आया ही था तो मैंने शहर का कुछ काम निपटा देना ठीक समझा। राजा को भी उधर ही कहीं कुछ काम था। वह भी मेरे साथ चल दिया।

हम पैदल ही थे। राजामंडी बाज़ार के आख़री सिरे पर, जहाँ जूतों की मरम्मत करने वाले मोची बैठते हैं, मैंने एक जगह भीड़ देखी। भीड़ के भीतर से किसी पुरुष की आवाज़ आ रही थी:

"बाबू लोगो, मैं ब्राह्मण हूँ। मैं ब्राह्मण हूँ। यह जनेऊ देखो, यह एक हाथ की चुटिया देखो। मैं ब्राह्मण हूँ।"

राजा को मैंने इस भीड़ में घुसने का प्रयत्न करते देखा। कुछ उसका साथ लिये रहने के विचार से और कुछ उस तमाशे को देखने के विचार से मैं भी उसके पीछे हो लिया। घेरे के भीतर मैंने झाँक कर देखा, जूतों की मरम्मत का सामान धरती पर फैला हुआ था और कुछ नये जोड़े एक कतार में सजा कर रक्खे हुये थे। जूतों की पंक्ति के पीछे लकड़ी की एक संदूकची पर पत्थर की एक मानव-मूर्ति रक्खी हुई थी। हाथ में जूते का एक जोड़ा लिये हुए वह हृष्ट-पुष्ट श्याम वर्ण अधेड़ आयु का आदमी उस घेरे के भीतर चक्कर लगाता हुआ कह रहा था :

"मैं ब्राह्मण हूँ। लेकिन संत रैदास का भक्त हूँ। इसी लिए जूतों की मरम्मत करता हूँ और नये जोड़े भी बनाता हूँ। मैं चमार नहीं हूँ, ब्राह्मण हूँ। संत रैदास सबसे बड़े संत थे। मेरे गुरु का जो काम था वही करने में मैं भी अपना मान समझता हूँ। इसी लिए जूते बनाता हूँ। यह जोड़ी देखिये। असली पक्का माल। एक गत्ते की मिलावट साबित करने वाले को सौ रुपया इनाम। इसके धरम के दाम सात रुपये। जिसे देखना हो हाथ में लेकर देखो, पाँव में डाल कर देखो। पसंद आये तो पहले संत रैदास की जय बोलो, फिर सात रुपये इस गद्दी पर रक्खो और जोड़ी ले जाओ। और जिसके भाग जगे हों और आँखें खुली हों वह भीड़ से निकल कर यहाँ आये। संत रैदास की यह मूर्ति है। इसके पैरों की धूल अपने माथे पर लगायें, इस तरह" हाथ से मूर्ति के पैर पोंछ कर अपने

माथे पर लगाते हुए, और सिर्फ़ चार रुपये गद्दी पर रक्खे और जोड़ी ले जाय। संत रैदास के पुजारी को यह जोड़ी सिर्फ़ चार रुपये में—चार रुपये में। मैं ब्राह्मण हूँ। ब्राह्मण से ऊँची कोई जात नहीं। रैदास चमार थे, लेकिन संत थे। संत से ऊँचा कोई आदमी नहीं। मैं पागल नहीं हूँ। मुझे पागल मत समझो। दुहाई संत रैदास की, मैं जूतियाँ भी बनाता हूँ और संतों का संदेसा भी संसार को देता हूँ। बोलो, भाई बोलो। कौन लेता है। सात की जोड़ी सात में। सात की जोड़ी चार में। बारह में से पाँच बची हैं। बोले कोई संत का प्यारा......"

मेरे आगे का एक आदमी अपने बग़ल के साथी से धीमे स्वर में बोला:

"जोड़ी तो बढ़िया है। सात में बहुत अच्छी है। मेरा जूता फट रहा है। आज-कल में नया लेना ही है। जेब में पाँच का नोट है। ले आऊँ जाकर चार में?"

"पागल हुए हो" साथी ने फुसफुसाकर कहा, "तीन रुपये के पीछे चमार के पैर छुओगे। ठाकुर होकर अपना धरम खोओगे और देखने वाले अलग हँसेंगे।"

"देखने वालों की ही ज़रा हिचक है, नहीं तो पत्थर की मूरत के पैर छूने में क्या हर्ज था। वह पत्थर तो चमार नहीं है।" पहले व्यक्ति ने कहा और चुप हो रहा।

"लो सात रुपये" एक सफ़ेदपोश लालाजी ने अपने पैर में जूते को फ़िट नाप का पाकर कहा।

"सेठजी, थोड़ा कष्ट कीजिए। एक बार संत रैदास चमार की जय बोलिये और रुपया गद्दी पर आकर रखिये। मैं हाथ से नहीं छुऊँगा।"

"यह भी कोई बात है! पूरे दाम देते हैं और चीज़ लेते हैं। किसी की जै-बै क्यों बोलें?

"इसी बात पर तो सेठजी यह जोड़ी सात की मिलेगी। बाज़ार में कोई ऐसा माल दस का भी नहीं देगा।"

"सात के सवा सात लो, साढ़े सात लो। तुम्हारे गुरु से हमारा क्या मतलब?"

"तो रहने दीजिये लालाजी" उसने उनके हाथ से जोड़ी लेते हुए अपनी पुकारें प्रारम्भ कर दीं।

"पाँच जोड़ी हैं, मैं पाँचों लेता हूँ—चार-चार रुपये में और सतगुरु के पैर छूता हूँ। बोलो दोगे?" एक आदमी ने भीड़ में से बाहर निकलते हुए कहा।

"पाँच जोड़ी—पाँच पहनोगे एक साथ? रहने दो गुरु, मैं पाँव में पहनने को जोड़ी बेचता हूँ, सौदागरी करने को नहीं। देखो भाई लोगो, हाथ में लेकर देखो, पाँव में पहन कर देखो।" वह फिर कहने लगा।

"अरे भाई संत रैदास बहुत बड़े संत थे, लेकिन यह सात रुपये का जूता चार रुपये में देने से तुम्हारा या संत का क्या लाभ होगा? चार रुपये में देकर क्या तुम घाटे में नहीं रहोगे?" एक अधेड़-से सज्जन बोल उठे।

"लाभ और घाटे की बात तो मैं जानूँ या मेरा संत रैदास जाने। गाहक तो अपने लाभ की बात सोचे।"

हम लेंगे तो हमारा तो लाभ है ही, कम-से-कम तीन रुपये का तो है ही। तीन रुपये क्या तीन आने के लिये भी हम तुम्हारे इन संत के पैर छू सकते हैं। लेकिन सच बताओ, यह जूता तुम्हें कितने में पड़ा है।" उन्हीं ने पूछा।

"पूरे पाँच रुपये का माल बाबू साहब, और दो रुपये मजूरी के। लेकिन संत रैदास की जो भक्ती करे उसे मजूरी भेंट और एक रुपया घर से भेंट। संत के भक्त का मैं दास हूँ।"

"तो लो भाई, हम तुम्हारी आधी ही मजूरी भेंट लेते हैं और तुम्हारे संत के पैर भी छूते हैं" कहते हुये वह सज्जन भीड़ से निकल कर संदूकची के पास पहुँचे और उस पर छह रुपये रख कर मूर्ति के पैर छू लिये।

"संत की जय, भक्त की जय!" दूकानदार ने नारा लगाया, "लो सरकार, यह मेरी दूकान का परचा है। आप फिर भी इसी दूकान पर आयेंगे, ज्ञानी पुरुष हैं" और उस ग्राहक के हाथ की जोड़ी में उसने एक लिखा हुआ परचा ठूँस दिया।

इतना तमाशा देख कर मैं आगे चला। भीड़ों को इकट्ठा कर अपना सौदा बेचनेवालों में इतना दमदार मैंने दूसरा कोई नहीं देखा था। इस आदमी की अदम्य संत-भक्ति पागलपन की सीमा पर अवश्य पहुँची हुई है, मैंने निश्चय किया, और वह ग्राहक, मैंने हिसाब लगाया, तेतीस प्रतिशत बुद्धिमान और सरसठ प्रतिशत सहृदय हैं।

"तुमसे भी ऊँचे टक्कर का यह आदमी जान पड़ता है" मैं राजा से कहने लगा और एकदम ध्यान आते ही मैं उसी साँस में उससे पूछ बैठा, "अरे हाँ, यह बैंक वाले बाबू और बीबीजी को तुमने कैसे पटाया? वह किस्सा तो मैं बहुत सुनना चाहता हूँ।"

"राजा ने सविस्तार वह कथा सुनाई। किस प्रकार वह अगली सुबह अपने एक साथी को लेकर उनके घर गया।

साथी के गायन से वे कितने अधिक प्रभावित हुये, उन्होंने उन लोगों के सम्बन्ध में और कैसे-कैसे बातें पूछीं और अन्त में हरीश बाबू से मिलने के लिये उत्सुक हुये और अब हमारी स्थानीय मित्र-मंडली के एक बहुत उत्साही सदस्य हैं। इसी बीच राजा ने बताया कि आज शाम ताजमहल में उसी गायक साथी का संगीत हम लोग सुनेंगे और उसका आयोजन भाटिया दम्पति ने ही किया है। जौहरीजी, जिनकी कार में हम लोग आये थे, इन्हीं भाटिया साहब के मित्र हैं।

मुझे प्यास लग आई थी और मैं एक प्याऊ पर पानी पीने लगा था। प्याऊ एक बूरे के दूकानदार की थी और वह मेरा कुछ परिचित भी था।

"तो बाबूजी यह मेरी तरफ़ से सही। इतने से बूरे में हमारा कुछ घट नहीं जायगा। आप जैसे सज्जन की कुछ सेवा कर के हमारा हित ही होगा।" मेरे कान में भनक पड़ी। देखा, दुकानदार एक दुबले-पतले नवयुवक के सामने दो-ढाई सेर बूरे का थैला रखे हुए कह रहा था।

"अच्छा भाई, नहीं मानते तो आपकी मर्ज़ी। जब मुझसे हो सकेगा तब देख लूँगा" युवक ने कृतज्ञता से डबडबाई आँखों से उसे देखते हुए कहा और थैला उठा लिया।

"और बाबूजी, बच्चे को खब दूध पिलाइये। मैं बग़ल-वाले हलवाई से कह दूँगा। उससे जितनी ज़रूरत हो दूध लेते रहिये। हिसाब जब आपके पास पैसे होंगे तब देखा जायगा।"

युवक सम्भवतः कृतज्ञता के आवेश में कुछ बोल नहीं पाया। बूरे का थैला लेकर वह चल दिया। दूकानदार की अब मुझ पर दृष्टि पड़ी। बोला:

"अरे बाबू जी, आप थे, मैंने देखा नहीं। माफ़ कीजिएगा। पानी यहाँ पीते। आपके लिए गिलास मौजूद है तो चुल्लू से पानी क्यों पिया? आइये, बैठिये।"

"लालाजी, आप इतने भले आदमी हैं, मैं पहले नहीं जानता था। इस लड़के के साथ आप जो कर रहे थे वह एक बड़े सलूक का काम है। यह है कौन?" मैंने कहा।

"सलूक क्या बाबूजी, हम हैं ही किस लायक।" लालाजी ने भीतर से उल्लसित होकर कहा, "यह लड़का बेचारा इटावा से आया है। बी. ए. पास है। नौकरी की तलाश है। इसी मुहल्ले में अपने एक रिश्तेदार के घर एक कोठरी मिल गई है, उसी में ठहरा है। महीना भर हो गया। नौकरी अभी लगी नहीं। बीबी है, एक छोटा बच्चा है। छठे-सातें आठ-आठ आने का बूरा मेरे यहाँ से ले जाता था। मेरा काम तो थोक-का है, पर मैं ऐसे भी दे देता हूँ। आज चार आने का ही लेने आया। मैंने कहा, बाबूजी, तुम बार-बार तकलीफ़ करते हो, रुपये दो रुपये का इकट्ठा क्यों नहीं ले जाते? तब उसके आँसू भर आये और उसने सब हाल बताया। चार दिन से बच्चा बीमार है। दवाई तो वैद्यजी के यहाँ से मुफ़्त जा रही है, गेहूँ रिश्तेदार के पैसों से घर भर के खाने के साथ आजाते हैं, पर दूध के लिए पैसे नहीं; बूरे के लिए कहाँ से आयें। मैंने सोचा, ऐसे समय में ऐसे आदमी की कुछ सेवा न करूँगा तो यह इतनी बड़ी खंडसार काहे के लिए है। सौ रुपया महीना धर्मादे में कट जाता है। दस-बीस रुपया किसी गरीब भाई की सेवा में मेरे हाथ से चला जायगा तो उससे दिल को ज़्यादा तसल्ली होगी।"

लालाजी क्षण भर को रुके। मैंने देखा, उस छोटे से दान पर उनकी आँखों में सहृदयता का कितना बड़ा सुख उभर आया था। वह फिर कहने लगे :

"बनारस से धर्म-सेवा-दल के एक साधू आये हुए हैं। रावीजी, आप तो लेखक हैं, उनसे ज़रूर मिलिये। घमंड का नाम नहीं। सेवा किसी से कुछ नहीं लेते और ऐसी बातें कहते हैं कि बस दिल की गाँठ खोल देते हैं। गोकुलपुरे में चित्रगुप्त-जी के मंदिर में ठहरे हैं।"

"मैं ज़रूर उनके दर्शन करूँगा" मैंने चलने के लिए उठते हुए कहा, "जान पड़ता है उन्हीं ने आपके दिल की कुछ गाँठें खोल दी हैं।"

"उन्हीं ने, बाबूजी उन्हीं ने। नित्त-नित्त ब्योहार की ऐसी बातें बताई हैं, लेकिन मेरे भीतर इतना ज्ञान कहाँ—"

उन्हें नमस्कार कर हम दोनों आगे बढ़ गये थे।

पास ही एक प्रेस के मालिक से मुझे कुछ बात करनी थी। उनसे निबट कर मैं आगे बढ़ा। किनारी बाज़ार से मुझे घर के लिए कुछ आवश्यक सौदा लेना था। राजा को भी यहीं कहीं किसी से कुछ काम था। फ़ौवारे और किनारी बाज़ार के बीच में पहुँचते ही उसने मेरा हाथ मेरे मार्ग से भिन्न दिशा में खींचते हुए कहा :

"सामने ज़रा-सा आगे मुझे एक जगह एक बात कहनी है। आपके सिर्फ़ पाँच मिनट लगेंगे।"

मैं उसके साथ हो लिया। यह सेवका बाज़ार था, जहाँ ऊपर के कमरों में वेश्याओं के डेरे हैं। राजा ऊपर को ही ताकता हुआ चल रहा था। इस तरह उसके साथ चलना मुझे

बड़ा भद्दा-सा लगा, पर अब तो मैं उसके साथ था ही अधिकांश छज्जों पर इस समय भी वेश्याएँ बैठी सड़क का दृश्य देख रही थीं। एक छज्जे के नीचे रुक कर राजा ने, एक तरुणी पर दृष्टि पड़ते ही उसे आवाज़ दी, "बीबी!"

"अरे राजा तू? मैं आई।" कहती हुई वह तरुणी शीघ्रता से उठी और ज़ीने के नीचे सड़क पर आ गई।

लगभग बीस वर्ष की, गौर वर्ण इकहरे पुष्ट बदन की वह तरुणी सचमुच विशेष रूपवती थी। उसने बड़े अल्हड़ भाव से ध्यानपूर्वक मुझे देखा, और तब राजा से बोली :

"बोल, तू इस वक्त कैसे आया।"

"आज शाम को छह बजे से ताजमहल में रंजन का गाना है। तुम्हारी मर्ज़ी हो तो आ जाना।" राजा ने कहा।

"रंजन कौन? मास्टर रंजन?"

"हाँ हाँ, मास्टर रंजन ही। लेकिन किसी को मालूम न होने पाये कि मैंने इसका न्योता तुम्हें दिया है। समझी?"

"रंजन मास्टर का गाना" तरुणी बच्चियों की तरह उछल पड़ी, "अरे मैं ज़रूर आऊँगी राजा, तू जुग जुग जिये। तेरे मुँह में घी-गुड़। मास्टर के सामने बैठ कर आज उसका गाना सुनूँगी।"

"घी-गुड़ से काम नहीं चलेगा, रसगुल्ले चाहिए, रसगुल्ले। और बैठने का काम नहीं, दूर से खड़े होकर सुनना। जमना किनारे की किसी मीनार के पास चबूतरे पर ही यह महफ़िल जुड़ेगी।"

"और ये?" तरुणी ने अपनी खुशी के आवेग से कुछ मुक्त होने पर मेरी ओर संकेत करके राजा से पूछा।

"ये—ये रावीजी हैं, हिन्दी के एक बड़े लेखक। आश्रम में रहते हैं और बिलकुल साधू ही हैं।" राजा ने मेरा परिचय दिया।

"लेखकों से मुझे बड़ा डर लगता है, और साधू तो आप बिलकुल नहीं जान पड़ते।" तरुणी ने चंचल दृष्टि से मेरी ओर देखकर हँसते हुए कहा।

मुझे यह अच्छा नहीं लगा, और सड़क पर इस तरह अड़ कर खड़े होना मुझे पहले से ही बुरा लग रहा था। युवती की बात का कोई उत्तर देने की मेरी इच्छा नहीं हुई; मैं केवल ऊपर से ज़रा हँस दिया। मैंने सोचा, नवयुवा वेश्याएँ अपरिचित आदमियों से इसी तरह बात करती होंगी।

"क्षमा कीजिएगा रावीजी," तरुणी ने अपनी मुख-मुद्रा, स्वर और भाषा सभी कुछ एकदम बदलते हुए कहा, "मैं मूर्खतावश कभी-कभी ऐसी ही धृष्ठता कर जाती हूँ। लेखकों पर ही देश और समाज का जीवन और जागरण निर्भर है। आपके दर्शन मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात है। कभी आपके आश्रम में ही आकर आपके दर्शन करूँगी।"

इस युवती की वाचालता के आगे मैं अब न जाने क्यों छोटा पड़ गया।

"हाँ, आइयेगा।" मैंने अव्यवस्थित-सा उत्तर दिया और उसके बँधे हुए हाथों के प्रणाम का उत्तर देकर चल दिया। राजा मुझसे आगे ही मुड़ पड़ा था।

बाज़ार से सौदा लेकर मैं राजा के साथ इक्के पर बैठ कर घर वापस आया। तीन बज गये थे। हमें लेने के लिए कार पाँच मिनट पहले ही आ गई थी। तैयार होकर हम सब

चल दिये। डाक्टर रमाशंकर, हरीशबाबू और भाटिया-दंपति को उनके घरों से लेती हुई कार सवाचार बजे ताजमहल में जा पहुँची। उसी समय दूसरी कार पर जौहरी परिवार के पाँच-छह सदस्य आ पहुँचे। मिस्टर दिनेशचंद्र और उस मंडली के कुछ और भी मित्र ताँगों पर थोड़ी देर में आ गये। मिस्टर जौहरी के साथ कार में आये हुए एक दुबले-पतले बीस-बाईस वर्ष के नवयुवक का हमें परिचय दिया गया: इनका नाम मिस्टर रंजन है, यह बहुत अच्छा गाते हैं। हरीशबाबू के पहले से परिचित होने के कारण आज हमें भी इनके गीत सुनने का सौभाग्य प्राप्त होगा। आज की महफ़िल के दूल्हे यही हैं।"

उस दिन की पिकनिक खूब रही। ताज की सैर, मुर्रियों की चढ़ाई, भाटिया-दम्पति द्वारा सारी पार्टी का चाय-पान और फिर साढ़े छह बजे से रंजन का संगीत। ऐसा संगीत मैंने कभी नहीं सुना था। स्वरों का उतार-चढ़ाव, कोमलता और माधुर्य की समय-समय पर पराकाष्ठा, एक ही कंठ से अनेक कंठ-स्वरों का वैचित्र्यपूर्ण आलाप, उस संगीत की मादक रस-मयता और इस सब के साथ गायक की अलौकिक जैसी भाव-चेष्टा। संगीत की परख मुझे बिलकुल नहीं है और मैं नहीं जानता कि किन शब्दों में उसकी प्रशंसा की जा सकती है; पर मैं एक-दो बार देख पाया था कि मेरी ही तरह सभी श्रोताजन उस संगीत की धारा में बह निकले थे। हमारी छोटी-सी मंडली के गिर्द सुनने वालों की एक खासी भीड़ जुड़ गई थी— वहाँ बीस से दो सौ तो हम लोग हो ही गये थे।

इस विशेष मनोरंजक प्रोग्राम के बाद वही गाड़ी हमें हमारे शहर वाले घर पर पहुँचा गई। संगीत-सभा से उठते

ही मैंने देखा था, मेरे पीछे कुछ ही फ़ासले पर वह वेश्या-गृह की युवती भी बैठी हुई थी।

यह महान् गायक रंजन—मास्टर रंजन, शायद वह एक प्रसिद्धि-प्राप्त गायक है—यदि रूप का कुछ सुन्दर भी होता तो श्रवण-रस के साथ-साथ आँखों का भी रस देकर पुरुष-रूप की प्यासी आधी दुनिया को मोह सकता। निस्संदेह वह कुरूप था, यद्यपि उसका वह शरीर उसके गीत-काल में कहीं छिप-सा जाता था।

बिस्तर पर लेटने-लेटते मुझे याद आई, रत्ना बारह तारीख़ को यहाँ आ रही है, उसे मुझसे बहुत कुछ मिलना है। भला उसे मुझसे क्या मिलने की आशा हो सकती है।

आज का दिन, सुबह से रात तक मेरा सुखों और सुखद आश्चर्यों में बीता। कोई-कोई दिन ऐसा ही होता है कि एक के बाद एक सुख-पर-सुख ही मिलते जाते हैं। प्रकाशक का पत्र—रत्ना का पत्र···। मैं इन्हीं विचारों के बीच सो गया।

[१०]

अगले दिन तीसरे पहर हम लोग अपने आश्रम में पहुँचे। पत्नी और बच्चे को कमरे में पहुँचा कर मैं उसी समय गुफा में पहुँचा। देखा, हरीश बाबू और राजा के साथ वेंकटाचलम् की कुछ मंत्रणा चल रही थी।

"१५, १६ और १७ तारीख़ को हमारे कुछ बाहर के मित्रों और साथियों ने आगरे में शिविर-सम्मेलन मनाने का निश्चय किया है। शहर के बदले क्या इस कैलास में ही कहीं पचास व्यक्तियों के ठहरने का प्रबन्ध हो सकता है?" वेंकटा-चलम् ने मुझसे कहा।

"पचास नहीं, सौ का प्रबन्ध यहाँ हो सकता है।" मैंने कहा, "आज दस तारीख़ है। यदि कुछ दिन और पहले मुझे इसकी सूचना मिल जाती तो किसी भी प्रकार की सुविधा यहाँ जुटाई जा सकती थी।"

"इसका अन्तिम निर्णय हम लोग कल ही कर पाये हैं" हरीश बाबू ने कहा, "आवश्यक वस्तुओं का सब प्रबन्ध तो मैं दो दिन में करा लूँगा, बस जगह का ही प्रश्न था।"

मैंने बताया कि जगह का यहाँ कोई प्रश्न नहीं हैं। श्याम-कुटी, प्राग आश्रम और मंदिर के पास वाली धर्मशालाओं में जगह ही जगह है। मैंने किसी विश्वास के साथ ही कहा कि यदि यह सम्मेलन कैलास से भिन्न किसी अन्य स्थान पर किया गया तो इसे आगरे में बुलाने की आधी सार्थकता ही जाती रहेगी। इस नये 'सम्प्रदाय' के नये प्रकार के सम्मेलन की सभी नवीनताओं को मैं पूरा-पूरा देखने के लिए उत्सुक था।

मेरा यह अनुरोध उन्हें सम्भवतः पहले से ही स्वीकार था। लगभग एक दर्जन चिट्ठियों और तारों के मज़मून उसी समय तैयार किये गये। रत्ना कुमारी के नाम भी एक तार था। हरीश ने बताया, उनके नाम भी उसकी एक चिट्ठी उन्हें कल मिली थी। यह तार उसी का उत्तर था। अपने इस दफ़्तर को समेट कर हरीशबाबू शहर जाने के लिए उठ खड़े हुए। राजा उनके साथ गया। उस समय कोई विशेष बात न होने के कारण मैं भी वेंकटाचलम् से छुट्टी पाकर अपने डेरे को लौट आया। वेंकटाचलम् को उसी शाम तीन दिन के लिए बाहर जाना था। मेरे ज़िम्मे केवल इतना ही काम रक्खा गया कि अलग-अलग आने वाले कुछ अतिथियों को सुविधापूर्वक ठहरने के लिए जगहें दिला दूँ।

तीसरी शाम, बारह तारीख़ को रत्ना कुमारी और उनके पति चौधरी धनराजसिंह आ गये। इन्हें मैंने अपने पास के ही कमरे में ठहरा दिया। चौधरीजी चालीस के लगभग एक स्वस्थ, बलिष्ठ और बहुत मिलनसार सिक्ख सरदार से जान पड़ते थे, यद्यपि वह सिक्ख न होकर एक पक्के वैष्णव थे—वैष्णवों के कुछ ऊपरी आचारिक बन्धनों से स्वतन्त्र होते हुए। उनके हँसमुख स्वभाव का पहली भेंट में मुझ पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा।

"रत्ना ने मुझसे आपकी इतनी तारीफ़ की है कि हम पहली मुलाकात पर ही आपकी दावत का इन्तिज़ाम करके दिल्ली से चले हैं" कुछ प्रारम्भिक बातचीत के बाद चौधरीजी ने हमारी रसोई में सुलगते हुए चूल्हे को देख पाकर मुझसे, और फिर लीला को लक्ष्य कर उससे कहा, "बहिनजी, उस चूल्हे को आज आराम करने दीजिए। आपका इस वक्त का खाना पंजाबी स्पेशल हमारे साथ तैयार होकर आया है।"

"वाह, यह उल्टी बात कैसे हो सकती है?" लीला ने कढ़ाई में कटा हुआ साग छौंकते हुए वहीं से उत्तर दिया, "आप हमारे यहाँ आये हैं तो हम आपकी दावत करेंगे न कि आप हमारी।"

लेकिन थोड़े-से वाद-प्रतिवाद के बाद लीला को चौधरी दम्पति का आग्रह मानना पड़ा। उनके साथ खाना सचमुच काफ़ी अधिक बन कर आगया था।

उन्हीं के कमरे में हमने उस शाम भोजन किया। चौधरी दम्पति, उनका छह वर्षका एक पुत्र, एक नौकर और हम तीन—सात व्यक्तियों के लिए भी वह भोजन अधिक था।

बड़े साइज़ के टिफ़िन कैरीयर के दो डब्बों में भरी हुई मक्के की घी में डूबी मोटी-मोटी रोटियाँ, एक डब्बे में सरसों का साग और एक में रबड़ी। यह पंजाबी स्पेशल हमें सचमुच विशेष रुचिकर प्रतीत हुआ। हमारे घर का साग इस भोजन का चौथा अंग बन गया था।

"रत्ना का कहना है कि आपका रुझान मज़हब और रूहानियत की तरफ़ बहुत ज़्यादा है और आप इस मज़मून के माहिर राइटर हैं। उसने आपकी एक किताब पढ़ी है और किसी रिसाले में एक कहानी भी। वह आपकी सभी चीजें पढ़ना चाहती है।" चौधरीजी ने प्रसंग छेड़ा।

"मज़हब और रूहानियत" मैंने कुछ चकित-से स्वर में पूछा, "उन्होंने मेरी ऐसी कौन-सी किताब पढ़ी है, जिसमें मज़हब और रूहानियत की बात हो? इन चीज़ों से तो मेरा कोई ताल्लुक़ नहीं है।"

"आप ऐसी बात कैसे कहते हैं? आपकी एक पुस्तक 'पूजा' मैंने पढ़ी है। वह भक्ति से भरी हुई पुस्तक है। 'नवयुग' में आपकी कहानी 'बुद्ध की घाटी' भी मैंने देखी है। उससे बड़ी प्रेरणा मिलती है और धर्म सम्बन्धी जिज्ञासाएँ एकदम बढ़ जाती हैं।" रत्ना बोल उठी।

"ठीक है" मैंने दूर की बातों की याद-सी करते हुए कहा, "पूजा" मेरी सबसे पहली पुस्तक है। वह भक्ति रस की ही पुस्तक है। मैंने उसे तब लिखा था जब मैं बच्चा ही था। कच्ची भावुकता और श्रद्धा ही उन दिनों मेरी बुद्धि और विचारशीलता की जगहें लिये हुए थी। लेकिन तब से अब तक मैं बहुत समझदार हो गया हूँ और भक्ति-भावुकता को पीछे

छोड़ आया हूँ। 'बुद्ध की घाटी' ज़रूर मेरी इधरकी ही कहानी है। उस में बुद्ध-धर्म के एक विश्वास के साथ-साथ मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों का भी मैने चित्रण किया है। उस ढंग की एक दो कहानियाँ ही मैंने और लिखी होंगी। मज़हब और रूहानियत पर नहीं, मैं तो सामाजिक परिवर्तन, लौकिक जीवन और प्रेम पर ही कहानियाँ और लेख आदि लिखता हूँ और ये ही मेरे चिन्तन और अध्ययन के विषय हैं।"

रत्ना के चेहरे पर मेरी इस बात से निराशा और उदासी की छाया उतर आई। मैने स्पष्ट देखा, मेरे नाम के साथ श्रद्धा का जो पुट-पट उसने अपने माथे पर अभी तक ओढ़ रक्खा था, वह हठात् नीचे खिसका जा रहा था और कठिन परिश्रम के साथ उसे साधे रहने का प्रयत्न कर रही थी। 'यह लेखक धर्म और आध्यात्मिक विषयों का लेखक और समर्थक नहीं, सामाजिक परिवर्तनों और वैसे ही प्रेम का लेखक और चिन्तक है, और श्रद्धा-भक्ति और धर्म-आचार की रचनाएँ उसकी पिछड़ी हुई रचनाएँ हैं,' मानों वह कह रही थी, 'तब फिर इस व्यक्ति के भीतर मेरे लिए पूज्य और आशाजनक वस्तु क्या है?'।

"आप भी हँसी करते हैं" वह कहने लगी, "धर्म और अध्यात्म ही आपके चिन्तन और लेखन के विषय हैं। जो कुछ मैंने पढ़ा है उससे मैं ऐसाही जानती हूँ और वेंकट दादा ने भी आपके बारे में यही बात कही है। आप मुझे इस तरह बहका नहीं सकते।"

और मुझे लगा कि इस सरल हृदया युवती को मुझे अपने प्रति उसकी सम्मानमयी अन्ध धारणा से एकदम 'बहकाना'

भी नहीं चाहिए। वैसा करके उसे उस समय पीड़ा पहुँचाने का साहस मैंने नहीं किया।

"मज़हब या धर्म में तो मेरी कोई विशेष रुचि नहीं; हाँ, रूहानियत या आध्यात्मिकता के सम्बन्ध में अवश्य मैंने कुछ सोचा है" मैंने रक्षा की बात रखने के विचार से कहा।

"यह क्या बात हुई? धर्म और आध्यात्मिकता क्या दो वस्तुएं हैं?" उसके प्रश्न जाग उठे थे।

"आम तौर पर अदृश्य के प्रति भाँति-भाँति के विश्वासों, कामनाओं और तत्सम्बन्धी साधनाओं को ही धर्म कहते हैं। लोक-प्रचलित अर्थ में धर्म का सम्बन्ध विश्वास से है; और आध्यात्मिकता का अनुभव और दूसरों के प्रति अपनेपन की भावना से। मैं ऐसा ही कुछ समझता हूँ।" मैंने कहा।

"लेकिन अदृश्य के प्रति विश्वासों, कामनाओं के बिना और मलों-विकारों से हृदय को माँज-धो कर पवित्र करदेने-वाली साधनाओं के बिना जो अनुभव और दूसरों के प्रति अपनेपन की भावनाएँ भी होंगी, वे मनुष्य को गिरानेवाली ही अधिक हो सकती हैं। आज के दिनोदिन पतन की ओर जाते हुए समाज में लोगों को अनुभवों और अपनेपन की भावनाओं की कमी नहीं है, फिर भी आप देखते हैं, संयम और साधना के अभाव में ही—" कहते कहते वह चुप हो गई।

"पहले मेरी भी ऐसी ही धारणा थी, पर अब मुझे उसमें बहुत संदेह हो गया है। मैं समझता हूँ कि विश्वासों और उनसे सम्बन्ध रखने वाली कामनाओं के फेर में पड़ कर और संयमों-साधनाओं के दबाव में आकर हम ठीक अनुभव नहीं प्राप्त कर सकते और न दूसरों के प्रति अपनेपन का ही निर्वाह कर सकते हैं।" मैं कह गया।

"इसका अर्थ यह हुआ कि आपके विचार में श्रद्धा-भक्ति संयम-सदाचार का भी समाज और व्यक्ति के जीवन में कोई आवश्यक स्थान नहीं है।" रत्ना के स्वर और दृष्टि में क्षोभ और मेरे प्रति घृणा का पुट स्पष्टतया उभर आया था।

मुझे लगा, ऐसी बातें कह कर मैंने बहुत बुरा किया। रत्ना की दृष्टि में इस तरह गिरने के लिए मै बिलकुल तैयार नहीं था।

मुझे चुप पाकर वह फिर कहने लगी :

"तभी आप सामाजिक परिवर्तनों की बात कहते हैं। मैं अब समझी, आप कैसे परिवर्तन चाहते हैं। हम तो बिना ऐसे अनुभवों और आध्यात्मिकता के ही अच्छे हैं।" रत्ना ने अन्तिम बात दूसरी ओर दृष्टि फेर कर कही। उसके स्वर में अब मेरे लिए स्पष्ट तिरस्कार था।

"रत्ना साहित्त रतन पास है और मुझे हिन्दी भाषा का ज्ञान थोड़ा ही है" चौधरीजी अब बोल उठे, "लेकिन आप की बातचीत से मैं यही समझा हूँ कि आपकी राय में मानुष जीवन के लिए पूजा-पाठ की और अच्छे कैरेक्टर की भी ज़रूरत नहीं है।"

"आपने ठीक समझा। मैं यही कह रहा था।" मैंने अपना मोर्चा सम्हालने के लिए मुस्कराते हुए कहा।

"तो फिर भाई साहब, अगर ज़िन्दगी में कैरेक्टर नहीं, भगवान की कुछ भजन-बन्दगी नहीं तो आदमी और जानवर में फ़र्क ही क्या रहा ? भजन-बन्दगी तो ख़ैर हमसे क्या बन पड़ती है, लेकिन जिसे कैरेक्टर कहते हैं वह हमने पुश्तैनी तौर पर अपने बाप दादों से कुछ न कुछ ज़रूर पाया है। हमारे

खानदान में मास-मदिरा और नशीली चीज़ों का कभी इस्तेमाल नहीं हुआ। हमारी बिरादरी में शादी-खुशी के मौकों पर तवायफ़ों के नाच-मुजरे का चलन था, लेकिन हमारे कुनबे का एक भी मेम्बर आजतक ऐसी महफ़िलों में शामिल नहीं हुआ। मेरे पिताजी एक सौ दो साल की उमर पाकर मरे। वह रोज़ाना नेम से आठ घंटे पूजा-पाठ करते थे। मेरे एक चचा ने चढ़ती जवानी की उम्र में ही इसी कैरेक्टर की आन पर अपनी जान कुर्बान करदी। जब वह कालेज में पढ़ते थे तो यहीं पर किसी लड़की से इनकी मोहब्बत हो गई। उन्होंने उस से शादी करने का इरादा ज़ाहिर किया। हमारे दादा साहब ने उन्हें हुक्म दिया कि उस लड़की का खयाल छोड़ दो और अगर ऐसा न कर सको तो उपास करके अपनी ज़िन्दगी पूरी करदो। उनका कैरेक्टर देखिये, बारह दिन तक बिना कुछ खाये-पिये वह भगवान के मन्दिर में पड़े रहे और तेरहवें दिन जमनाजी में कूद कर उन्होंने अपनी जान कुर्बान करदी।"

"यह वाक़या दिल्ली का ही है?" मैंने इस कठिन प्रकरण को समाप्त करने के विचार से बीच में रोक लगाई। चौधरी-जी के इस रूप से मेरा माथा ठनक गया था।

"दिल्ली की ही बात है, सन् १९१६ की। सारा शहर जानता है। मैं उस वक्त पाँच-छह साल का था।"

"मैं उनकी दिलेरी की तारीफ़ करता हूँ; लेकिन चौधरी साहब, आप जानते हैं, मैं एक राइटर हूँ। मैं तो आपके इस कैरेक्टर और पूजा-पाठ की तह में जाना चाहता हूँ। आखिर इन सब बातों का मतलब क्या है? आप क्यों इनके

पीछे जान देते हैं ? जवाब दीजिए, मैं कहता हूँ ये सब फ़िज़ूल की बातें हैं।" कहते कहते मैंने पास रखे हुए टिफ़िन कैरीयर के सबसे उपर के ढक्कनदान के खाली डब्बे पर एक ज़ोर का घूँसा भी जड़ दिया।

"देखा जी," चौधरी साहब अब जैसे एकदम चिन्तामुक्त होकर हँसते हुए अपनी पत्नी को लक्ष्य कर कह उठे, "ये राइटर हैं और बालकी भी खाल निकाले बग़ैर नहीं रह सकते। इनका भेद पाना और इनकी किसी बात का यक़ीन करना बहुत मुश्किल काम है। दरअसल यह हम लोगों की गहराई तक जाँच-पड़ताल करना चाहते हैं।

"रत्ना को मेरी बात के इस अर्थ-दान से जैसे कुछ सहारा मिला। उसे कुछ सान्त्वना-सी मिली दीख पड़ी। बोली :

"इतना तो मैं भी समझती हूँ। ऐसी नादान तो नहीं हूँ।"

मुझे जैसे पानी में तैरते-तैरते पाँव रखने को थोड़ी-सी भूमि मिल गई। मैंने यहीं से बात पलटी :

"इन बातों को देखने के लिए अभी हमारे पास कई दिन हैं। आप यह बताइये कि वेंकटाचलम् से आप लोगों का कबसे और कैसा परिचय है। उनके बारे में आपका क्या ख़याल है?" मैंने चौधरी साहब से पूछा।

"हम उन्हें तीन साल से जानते हैं। हमारे एक दोस्त के घर वह दिल्ली में ठहरे हुए थे तभी उन्होंने हमें इनके दरशन कराये थे। यह बहुत ऊँचे महात्मा हैं और योग की बहुत सी सिद्धियाँ इन्हें हासिल हैं। हिमालय के कुछ बहुत ऊँचे सिद्ध महात्माओं से इनका गहरा ताल्लुक़ है। उन सिद्धों के दर्शन और सतसंग का मौक़ा उन्होंने अपने कुछ भक्तों को भी

दिया है। यह बहुत बड़े भक्त हैं और मैं समझता हूँ कि इनके चेलों की तादाद भी हज़ारों की होगी।" चौधरीजी ने कहा।

वेंकटाचलम् के बारे में कुछ और जानने का यह मेरे लिए अच्छा अवसर था, यद्यपि चौधरीजी की ऐसी धारणा को मैं वेंकट के चित्र में कहीं ठीक तरह चिपका नहीं पाता था। मैंने कहा :

"मैंने तो उन्हें अब तक ऐसा नहीं समझा था। उनका नया नगर बसाने का कुछ प्लान है, आप जानते हैं?"

"यह भी आपकी राइटरों वाली बात है" चौधरीजी ने सम्भवतः मेरे पहले वाक्य का उत्तर देते हुए कहा, "उस नगर का प्लान उनके आइडिया और इंस्ट्रक्शन्स के मुताबिक मैंने ही बना कर उन्हें दिया है।"

"आप का क्या ख़याल है, वह नगर सचमुच कभी बन जायगा? उसके लिए ज़रूरी ज़रिये उनके पास है?"

"महात्माओं के लिए कौन-सा चमत्कार मुश्किल है। वह करोड़ों रुपये छिन भर में जुटा सकते हैं!"

"ऐसा कोई चमत्कार उनका आपने कभी देखा है?"

"यह तो मैंने देखा है कि उनकी सभी ख्वाहिशें और ज़रूरतें वक्त पर पूरी हो जाती हैं। मुझे यकीन है कि जब उन्हें रुपये की ज़रूरत होगी, वह ज़रूर उन्हें मिलेगा।"

"इस नये नगर के बारे में आपका क्या ख़याल है, वह कैसा नगर होगा? किस तरह के लोग इसमें बसेंगे? क्या आप भी उसमें बसना पसंद करेंगे?" मैंने कुछ देर चुप रहने के बाद पूछा।

"मैंने इसके बारे में कोई ज़्यादा विचार नहीं किया। मैं

जानता हूँ कि स्वामी वेंकटाचलम् एक ऊँचे संत हैं और उनकी बसाई हुई बस्ती में रहना कौन पसंद न करेगा! वह बस्ती दुनियवी आलाइशों और हविशों से पाक अमन-चैन की बस्ती होगी। मैं ज़रूर उसमें एक घर बनवाना पसंद करूँगा। रत्ना का स्वामीजी में बहुत अक़ीदा है और इसने उनके बहुत से चमत्कार देखे हैं। इसकी दिली ख्वाहिश उन्हीं के कदमों में रहने की है।"

वेंकटाचलम् का वह स्वामी-रूप मुझे कुछ अजीब-सा लगा। वह ऐसे शिष्यों और भक्तों को भी सहन कर सकते हैं। यह बात मुझे अरुचिकर-सी जान पड़ी। और क्या ऐसे ही धर्म-भीरु, हठधर्मी और विचारहीन लोगों को लेकर वह नया नगर बनायेंगे? मुझे इन चौधरीजी पर तरस आया, झुँझलाहट भी हुई। मूर्खतापूर्ण अन्धविश्वासों के कारण, झूठे और थोथे चारित्रिक अहंकार के कारण, सहज मानव-प्रेम से ठोकर लेकर आत्महत्या करने को यह महाशय धर्म और ऊँचा चरित्रवाद समझते हैं! इन पर और इनके कुनबे पर मुझे घृणा हो आई। रत्ना जैसी नारीत्वमयी स्त्री के लिए यह पति कितना अयोग्य है, मैं एकबार सोच गया। और यह रत्ना! धर्म और चरित्र का भूत इसके सिर पर सवार है। यह धर्म और चरित्र को क्या समझ सकती है। रत्ना सुन्दर है लेकिन बहुत नहीं। फिर भी वह उस लड़की प्रभा जौहरी से सुन्दर है, वकील की पत्नी राजकुमारी से भी सुन्दर है। लेकिन शुभकमल? उसका, उसका कोई मुकाबला नहीं है। शुभकमल जैसी सुन्दर तरुणी मैंने दूसरी शायद नहीं देखी। हाँ, वह वेश्या बाज़ार वाली बीबी, वह रूप में उसी के टक्कर

की है। इन दोनों में कौन अधिक बैठेगी, निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। वह वेश्या न होती तो नारी जाति का शृंगार होती। फिर भी यह रज्ञा इन सब में सब से अधिक आकर्षक है। इसकी आत्मा में, मुझे लगता है, नारीत्व पिरोया हुआ है। मुझे यह इतनी आकर्षक क्यों लगती है? प्रशंसा, अनुराग और मुग्धता नाम की कोई भी वस्तुएँ इस स्त्री में ऊपर नहीं दीख पड़तीं। किसी पुरुष रूप के प्रति इसके मन में कोई नारी-सुलभ भाव नहीं उठ सकता। यह कट्टर धर्मवादिनी और चरित्रवादिनी है। लेकिन सेक्सुअली स्टार्व्ड! वेंकटाचलम् ने इसके बारे में यह कैसी बात कही थी! मुझे यह बात उस समय बड़ी असाधु लगी थी; लेकिन क्या मैं उसे ही पसंद नहीं करने लगा हूँ? रज्ञा से मैं अनजाने ही ये क्या आशाएँ करने लगा हूँ! क्या मैं नहीं चाहता कि रज्ञा नारी-काम की भूख से अतृप्त ही निकले, अपनी इस अतृप्ति को पहचाने और उसका कुछ उपचार करे? मैं अपने भीतर झाँकने लगा। मैं भी ऐसा आदमी हूँ, मैंने अब देखा। किसी अन्य इतनी प्रियदर्शन स्त्री के इतने समीप आने का मुझे शायद अब तक अवसर नहीं मिला था; वह मुझ पर श्रद्धा करने लगी थी। मुझे अपने ऊपर हँसी भी आई और फिर ऐसी भावुकता के प्रति — इस तरह के भावुकों के भी प्रति — एक नई सहाभूति भी जाग उठी, और यह रज्ञा, सेक्सुअली स्टार्व्ड। क्या यह सम्भव है? ......

"आप कुछ गहरी बातें सोचने लगे" चौधरीजी के शब्दों ने जैसे मुझे जगा दिया, "रज्ञा को बचपन से ही अपने मा-बाप के घर से, साधू-संतों का सतसंग हासिल होता रहा है और

इसके अन्दर भक्ती और बैराग के जज़्बे समाये हुए हैं। इसका कहना है कि इन स्वामीजी जैसे महात्मा इसे दूसरे नहीं मिले और इन्हीं से इसने गुर-मंत्र लेने का फ़ैसला किया है।"

"स्वामीजी" मैंने कुछ चौंक कर पूछा, "आप वेंकटाचलम् स्वामी की ही बात कह रहे हैं न? क्या वह गुरु-मंत्र भी देते हैं?"

"देंगे क्यों नहीं? वैसे वह बहुत निर-अहंकार सुभाव के महात्मा हैं। अपने आपको स्वामी भी नहीं कहने देते। रत्ना को छोटी बहिन करके मानते हैं और उससे दादा कहलवाते हैं। कहते हैं कि साधू-महात्मा और गिरस्त सब एक बराबर हैं। आमतौर पर किसी को गुर-मंत्र नहीं देते। लेकिन रत्ना उनसे गुर-मंत्र लेकर ही रहेगी। उनके हज़ारों भक्तों में से कुछ को गुर-मंत्र उन्होंने दिया ही है। इसकी मा ने भी एक ऐसा गुरू किया था जो किसी को मंत्र नहीं देते थे।"

"और आप?" मैंने पूछा।

"इस मामले में मैं रत्ना के पीछे ही हूँ। मैं हरद्वार के एक महात्माजी से गुर-मंत्र ले चुका हूँ, इसलिए मुझे दुबारा मंत्र लेने की ज़रूरत नहीं है; लेकिन मैं इन स्वामीजी को अपने गुरू से किसी बात में कम नहीं देखता हूँ। मेरे गुरू औरतों को मंत्र नहीं देते थे, लेकिन इन स्वामीजी की नज़रों में औरत-मर्द सब बराबर हैं।" चौधरीजी ने कहा।

हमारा भोजन कुछ देर पहले ही समाप्त हो चुका था और रात भी काफ़ी हो आई थी। मैं उनकी सुविधा-व्यवस्था की दो-चार बातें पूछ कर पत्नी सहित अपने कमरे में लौट आया। रत्ना का जो रूप मैंने आज देखा उससे मुझे एक

अस्पष्ट-सी निराशा का अनुभव हो रहा था। वेंकटाचलम् के सम्बन्ध में कुछ अप्रिय संदेह भी आजकी बातचीत ने मेरे मन में उत्पन्न कर दिये थे और चौधरीजी को इतना छोटा आदमी पाकर भी मुझे बुरा-बुरा-सा लग रहा था।

[११]

चौदह नवम्बर की शाम कैलास बस्ती में एक बारात-सी जुड़ आई। तीन कारों और चार-पाँच ताँगों में आने वाले व्यक्तियों की संख्या तीस के लगभग थी। हरीश और राजा उस दल को साथ लेकर आये थे। पूर्व-प्रबन्ध के अनुसार उन्हें राजगुफा के पास की इमारतों में ठहरा दिया गया। रोशनी और खाने-पकाने का सब सामान उनके साथ था। उन सबको सुविधापूर्वक ठहरा कर मैं अपने कमरे में लौट आया और उनसे कह आया कि रात में आ सके तो राजा मेरे पास ही आकर सोये।

सबके भोजनादि से निवृत्त होने पर राजा मेरे कमरे में आ गया। इस सम्मेलन के सम्बन्ध में मैं अभी तक अन्धकार में था। इसकी कुछ जानकारी मेरी आवश्यकता और उत्सुकता का विषय थी और इसी विचार से मैंने राजा को बुला लिया था।

नौ स्त्रियाँ और उन्नीस पुरुष आज के दल में आ गये हैं और उनमें से तीन स्त्रियों की गोद में एक-एक छोटा बच्चा भी है, राजा के मुख से मुझे ठीक संख्या ज्ञात हुई। उसने बताया कि अगली सुबह ये तीनों कारें चौदह और व्यक्तियों को लेकर आयेंगी। वेंकटाचलम् आज रात को ही यहाँ आजायेंगे। बाहर से दो-चार और भी मेहमान अलग-अलग

आ सकते हैं। सम्मेलन की बैठकें कल दोपहर से प्रारम्भ होंगी।

"वे चौदह आदमी आगरे में आ गये हैं या उनमें से कुछ बाहर से अभी आयेंगे। ये अट्ठाईस व्यक्ति पहले से ही आकर शहर में कहीं ठहरे रहे होंगे।" मैंने पूछा।

"ये अट्ठाईस और वे चौदह, इनमें से लगभग सभी लोग करीब एक सप्ताह से आगरे में आकर ठहरे हुए हैं। वे हिन्दुस्तान भर के अलग-अलग स्थानों से आये हैं। उनमें से कुछ को आप पहले भी देख चुके हैं।" राजा ने मानों मेरे आश्चर्य और कुतूहल का अनुमान लगा कर हँसते हुए कहा।

"पहले भी देख चुका हूँ?" मैंने विस्मित होकर ही कहा, "मैंने तो इनमें से किसी को नहीं पहचाना।"

"कल सुबह आप उजाले में उन्हें पहचान लेंगे। हरीश बाबू और राजा बाबू को तो शायद आज ही पहचान लिया होगा।" राजा ने कहा और हँसने लगा।

"इस सम्मेलन का उद्देश्य क्या है और इसमें क्या-क्या होना है, मुझे कुछ बताओ तो सही।" मैंने अनुरोध किया।

"वेंकट दादा जो नया नगर बसाना चाहते हैं उसी की कुछ तैयारी करने के लिये यह सम्मेलन बुलाया गया है। इसमें वे ही लोग बुलाये गये हैं जो वेंकट दादा से कुछ विशेष स्नेह रखते हैं और जो उस नये नगर में बसना और उसके बसाने में सहयोग देना पसंद कर सकते हैं।"

"वेंकट दादा से स्नेह रखने वाले ऐसे व्यक्तियों की संख्या क्या चालीस-पचास की ही है?"

"चालीस-पचास नहीं तो सत्तर-अस्सी तक होगी। लेकिन इससे क्या! पहले यह संख्या चार की ही थी। चार से अस्सी हुये हैं, तो अस्सी से आठ हजार भी समय पर हो जायेंगे।"

"यह ठीक है" मैंने सोचते हुए कहा, "इन अस्सी से उन सौ के लगभग भिखारी प्रचारकों की संख्या अलग होगी, जिन की बात हरीश बाबू ने कही थी।"

"उनमें से कुछ, जो विशेष पढ़े-लिखे या और तरह से काम में विशेष चतुर हैं, इन अस्सी में ही शामिल हैं।"

"मेरे पड़ोस में दिल्ली से आये हुए इंजीनियर साहब अपनी पत्नी रक्षा कुमारी के साथ ठहरे हैं। ये भी उन अस्सी में शामिल हैं?" मैंने इस दम्पति का स्थान, और इनके स्थान से इस सम्मेलन की हैसियत जाँचने के अभिप्राय से पूछा।

"बिलकुल। वे दोनों वेंकट दादा के ख़ास आदमियों में हैं।"

मैं इस दम्पति की ख़ासियत की बात सोचने लगा। अगर ये भी वेंकट दादा के ख़ास आदमी है, तो उनके आदमियों से मैं कितनी आशा कर सकता हूँ, मैं कुछ निराश-भाव से सोचने लगा। वास्तव में मैं उस समय राजा और हरीश जैसों की बात भूल ही गया।

"इस काम को उठाने के लिए वेंकट दादा को आदमी जो मिल रहे हैं सो तो मिल ही रहे हैं, पैसा भी काफ़ी मिल रहा होगा। शहर-शहर में भिखारियों का संघटन उनके खाने-पहनने आदि की व्यवस्था में जितना ख़र्च होता होगा क्या उतना वे भीख माँग कर कमा लाते हैं? मैं समझता हूँ, इस तथा यात्रा आदि के दूसरे तमाम ख़र्चों के लिए काफ़ी रुपया लगता होगा।" मैंने पूछा।

"भिखारियों के संघटन और उनके विभाग में उनकी भिक्षा की कमाई के ऊपर लगभग चार-पाँच हज़ार रुपया

मासिक तो ख़र्च होता ही होगा। ऐसा कोई हिसाब ख़र्च और आमदनी का कहीं नहीं रक्खा जाता, लेकिन मेरा अनुमान ऐसा ही है। पिछले छह वर्षों में अकेले मुझ पर ही होने वाला ख़र्च पाँच सौ रुपया महीने से कम नहीं होगा।"

"पाँच सौ रुपया महीना!" मैंने अचरज में आकर कहा, "भला पाँच सौ रुपया महीना अकेले तुम पर कैसे ख़र्च हो जाता है?"

"भिक्षा की फेरियों में भिखारियों और ग़रीबों की और कभी-कभी बड़े आदमियों की भी आर्थिक सेवा-सहायता में, सफ़र में, कभी-कभी दूसरे और पहले दर्जे के रेल के, और हवाई जहाज़ के भी किरायों में, लोगों को यहाँ से वहाँ लाने ले जाने में, खाने-पीने और पोशाक में।" राजा ने मेरे विस्मय का रस लेते हुए कहा।

"तब इन सब कामों के लिये कोई बहुत बड़ा कोष होगा और उसमें बहुत-से धनवान् लोग बराबर रुपया देते रहते होंगे?" मैंने पूछा।

"ऐसा एक छोटा-सा कोष ज़रूर है, जिसमें कुछ लोगों की इच्छानुसार भेजी हुई भेंटें जमा होती रहती हैं। इस कोष में कठिनाई से चार-पाँच सौ रुपया मासिक आ जाते हैं, और उसमें से आवश्यकतानुसार सौ-दो सौ रुपया वेंकट दादा के और कुछ मेरे भी ख़र्च में आ जाते हैं। यह कोष वेंकट दादा को निजी तौर पर साथियों द्वारा मिलने वाली भेंट का ही कोष है। इसमें बारह-तेरह हज़ार रुपया इस समय जमा है।"

"तब फिर इतना लम्बा-चौड़ा ख़र्च कैसे चलता है, कौन चलाता है?"

"हमारे साथियों में जो पैसे वाले हैं वे अपने सामर्थ्य और इच्छा के अनुसार आवश्यक कामों में स्वयं ही पैसा ख़र्च करते हैं। इसका कोई हिसाब नहीं रह सकता : मिसाल के तौर पर आगरे में हरीश बाबू कम-से-कम हज़ार रुपया महीना तो इन कामों में ख़र्च कर ही देते होंगे।"

"तब फिर तुम्हारे इस संघटन में पैसे वाले और खूब पैसे वाले काफ़ी तादाद में हैं। ऐसे पैसे वाले लोग तुम्हें बहुत-से मिल जाते हैं।"

"मिल भी जाते हैं और अपने मिले हुए लोगों को हम आवश्यकतानुसार पैसेवाला बना भी देते हैं।" वेंकट दादा चाहें तो आप दस हज़ार रुपया महीना कमा कर उन्हें दे सकते हैं।" मुझे लगा वह अब शरारत की बात पर उतर आया था और मेरे कुतूहल का पूरा आनन्द लेना चाहता था।

"कैसे? तुमने या वेंकट दादा ने किसी बे पैसे वाले को पैसे वाला बनाया है? कोई मिसाल बताओ।" मैंने बहुत साधारण भाव से कहा।

"उस दिन ताजमहल में आपने रंजन का गाना सुना था। वह मेरी ही एक खोज है। वह नागपुर में भीख माँगता था और भूखों ही मरता था। उसे भीख माँगते हुए पकड़ कर मैं नागपुर के अपने साथी के पास ले गया। अब तीन वर्षों से वह सिनेमा का प्लेबैक सिंगर है। उसकी आमदनी पंद्रह हज़ार रुपया मासिक है और करीब दस हज़ार वह हमारे कामों में ख़र्च कर देता है। इसी तरह एक और लड़की हमारी खोज की प्लेबैक सिंगर का काम करती है, वह तीन-चार हज़ार रुपया हमारे मिशन के कामों में ख़र्च कर देती है।"

"लड़की कौन ?" कुछ दूरी पर अपने बिस्तर पर लेटी हुई लीला हमारी बातों को सम्भवतः कुछ देर से सुन रही थी, अब प्लेबैक सिंगर लड़की की चर्चा सुनकर वह बोल उठी, "यह किस लड़की की बात है, लता मंगेशकर की, जिसने 'महल' में गाने गाये हैं ? उसका हाल 'नवयुग' में मैंने पढ़ा है।"

"शा—यद" राजा ने संदेह उत्पन्न करने वाले स्वर में उसे संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

"तुम ठीक बताना नहीं चाहते। अच्छा यह बताओ कि क्या वह भी पहले भीख माँगती थी।"

"शा—यद" राजा ने फिर उसी स्वर में उत्तर दिया और क्षण भर रुक कर बोला: "अगर आप इसके बारे में तीसरा कोई सवाल न पूछें तो मैं इस दूसरे का ठीक-ठीक उत्तर आप को दे दूँगा।"

"अच्छा नहीं पूछूँगी। तुम इसी बात का जवाब दे दो।"

"वह भीख नहीं माँगती थी।" राजा ने कहा।

"अच्छा एक बात बताओ। मैं उस लड़की के बारे में नहीं, अपने बारे में पूछती हूँ। यह बताओ कि ये दस हज़ार रुपया महीना कैसे कमा सकते हैं? क्या उपन्यास और कहानियाँ लिख कर या सिनेमा के लिए कहानियाँ लिख कर ? अगर वेंकट दादा इनसे इतना रुपया कमवालें तो मैं दस हज़ार में से नौ हज़ार तुम्हारे कामों में खर्च कर दूँगी।"

मैंने अब देखा, मेरी पत्नी ने इस प्रश्न की उत्सुकता को कितनी कठिनाई से अब तक साधर होगा।

"लिख-लिखाकर नहीं, अपने पैसे वाले दोस्तों से माँग कर यह दस हज़ार रुपया महीना कमा सकते हैं" राजा ने बिलकुल अनपेक्षित-सा उत्तर दिया।

"लेकिन इनके ऐसे पैसे वाले दोस्त तो हैं नहीं, और जो दो-एक कोई होंगे भी वे इन्हें हर महीने क्या, एक बार भी एक हज़ार रुपया भी नहीं देंगे।" लीला ने अब राजा की बात को विनोद की ही एक उक्ति मान कर कहा।

"अभी नहीं हैं तो आगे हो सकते हैं, यह कोई कठिन बात नहीं है। लेकिन ये दस हज़ार तभी कमा सकते हैं, जब आप अपना खर्च सतगुना बढ़ाने के बदले उसे अब से भी कुछ और घटा देने का इरादा रक्खें।" राजाने छिपे तौर पर एक सात्विक उपदेश की बात कह डाली।

लीला चुप हो गई और मैं भी चुप होकर सोचने लगा।

"वेंकटाचलम् के इस संघटन का आरम्भ कब और कैसे हुआ? हरीशबाबू ने बताया था कि उसका प्रारम्भ उनके एक बड़े भाई ने किया था।" मैंने कुछ देर बाद पूछा।

"आज से सैंतीस बरस पहले वेंकट दादा के एक बड़े भाई, बल्कि बड़े मित्र ने उन्हें इस काम का कुछ विचार दिया था और इसके लिये एक नया साथी भी उन्हें दिया था। इन दोनों ने ही इस काम को प्रारम्भ किया था और बड़े भाई इन्हें सलाह और सहायता देते रहते थे।"

"यह पहले साथी कौन थे? कोई बहुत पैसे वाले थे?"

"पैसे वाले? हाँ, पैसे वाले ही थे। वे इस काम में नियमित रूप से पाँच रुपया महीना छह वर्ष तक खर्च करते रहे। उनकी तनख्वाह तीस रुपया मासिक थी। वही इस मिशन के पहले धन-दाता थे।"

"तब तो उनका यह मिशन एक महान् और अत्यन्त प्रगतिशील मिशन है। उसका ऐसा प्रारम्भ आश्चर्यजनक है। पाँच रुपये महीने में ही उसका काम छह वर्ष तक चलता रहा!"

"छह वर्ष तक क्यों, उसी वर्ष से काफ़ी रुपया इस मिशन के कामों में आने और खर्च होने लगा। लेकिन वह पहले साथी जब तक जिये, बराबर पाँच रुपया मासिक देते रहे। आग की दुर्घटना से छह वर्ष बाद जवानी की उम्र में ही उनकी मृत्यु हो गई।"

"मृत्यु हो गई?" मैंने यों ही कह दिया।

"हाँ मृत्यु हो गई" राजा ने एक जम्हाई लेते हुए कहा, "और मृत्यु की छोटी बहिन नींद मुझे भी इस समय आने लगी है। मेरे लिये कोई खाट है?"

कमरे के दूसरे कोने में बिछी हुई चारपाई मैंने उसे दिखा दी और वह उस पर जा सोया।

वेंकटाचलम् के इस मिशन में ऐसा कौन-सा असाधारण आकर्षण है जो इतने लोग इतनी द्रुतगति से इसमें खिंचे चले आते हैं और इसके लिये अपना तन, मन, धन, सभी भरपूर लगाने के लिये तैयार हो जाते हैं—मैं सोचने लगा। हरीश द्वारा एक बार दिये हुए परिचय के बाद इस मिशन की जानकारी की यह दूसरी किस्त मुझे आज राजा से मिली थी और इसने इसके सम्बन्ध में मेरी जिज्ञासा को और भी तीव्र कर दिया था।

[१२]

अगले दिन सुबह जल्दी ही उठ कर राजा चला गया। वह कह गया कि दिन के प्रोग्राम की सूचना वह स्वयं आकर मुझे जल्द-से-जल्द दे जायगा।

आठ बजे के पहले ही वह फिर आया। उसके साथ, मैंने कुछ संदेह के साथ पहचाना, वह वेश्या बाज़ार वाली

तरुणी भी थी। राजा के हाथ में एक बड़ी सी पतीली थी और उस लड़की के हाथ में कपड़े से ढकी एक टोकरी। मुझसे कुछ न बोल, सीधे लीला को ही लक्ष्य कर राजा ने कहा :

"दाल और रोटी के लिए बरतन ले आइये। हम आपके लिए खाना लाये हैं।"

लीला ने विस्मय से उनकी ओर फिर मेरी ओर देखा और मेरे कहने पर उसने एक कटोरा और रोटियों का कटोरदान उनके सामने बढ़ा दिया।

तंदूर की पकी बड़ी-बड़ी गरम रोटियाँ और उर्द की दाल हमारे बरतनों में हमारी बताई आवश्यकता के अनुसार उन्होंने परोस दीं।

"इस खाने के बदले अगर आप दे सकें और देना चाहें तो कुछ दूध हमें दे सकती हैं। शाम के खाने में कैम्प में शायद दूध की कुछ कमी पड़ेगी।" राजा ने कहा।

लीला ने उसी समय दुह कर आये हुए दूध में से अशोक की आवश्यकता भर बचा कर शेष उसे देने की स्वीकृति दे दी और कहा कि शाम को भी इतना ही दूध उन्हें यहाँ से मिल जायगा। कुछ देर बाद दूध ले जाने की बात कह कर राजा हमारे पड़ोस के चौधरी-दम्पति के कमरे की ओर मुड़ा और फिर रुक कर कहने लगा :

"और आपकी खाना पकाने की जो मेहनत और समय हमने बचाया है उसे आप एकाध चक्कर हमारे कैम्प की तरफ़ का लगा कर खर्च कर सकती हैं।"

ये दोनों चौधरी-परिवार के कमरे में परोसा देने जा पहुँचे। उस लड़की ने आते-जाते समय किसी प्रकार का शिष्टा-

चारिक अभिवादन नहीं किया। उसने मुझे और लीला को केवल एकबार बिलकुल अपरिचित और ग़ैरकी-सी दृष्टि से, या फिर सदा की परिचित एवं निर्भाव की दृष्टि से देखा। उन के जाने के बाद भी मेरे मन में संदेह रह गया कि यह वही लड़की थी या अन्य कोई।

"यह खाना यहाँ कैसे आया और यह लड़की कौन थी?" उनके दूर होते ही लीला ने पूछा।

"खाना सारे कैम्प के लिए बना होगा और हमें भी उन्होंने कैम्प में शामिल कर लिया है। यह तो ठीक ही है। और यह लड़की आगरे की सेवके बाज़ार की एक वेश्या है।" मैंने लीला को खिझाने की ही दृष्टि से कहा।

"वेश्या? वेश्या यहाँ कैसे?" लीला ने तमक कर कहा, और फिर तुरंत ही कुछ सोच कर कहने लगी, "छिः आप ऐसी वाहियात बातें करने लगते हैं। अच्छी भली लड़की को—"

"यह वही वेश्या है जिससे मैं सेवके बाज़ार में उस दिन राजा के साथ मिला था और जिसे मैंने उस रात ताजमहल में गाना समाप्त होने के बाद कुछ दूरी से तुम्हें दिखलाया भी था।" मैंने बहुत सादे स्वर में कहा।

"मज़ाक भी उचित-अनुचित देख कर किया जाता है। ऐसे सम्मेलन में आई हुई किसी भले घर की लड़की को आप वेश्या कह कर कितना बड़ा पाप कर रहे हैं। मैं अन्धी नहीं हूँ। वह उस रात वाली लड़की हर्गिज़ नहीं है।"

लीला के इस अनुमान के पक्ष में जाना मेरे लिए भी वांछनीय ही था। लीला कहती है तब यही सम्भव है कि यह

खुले हुये-से घर में कैम्प की भोजनशाला थी और तन्दूर की भट्टी उसमें बनी हुई थी। एक अलग भट्टी में एक बड़ा डेग अब भी चढ़ा हुआ था। शाम के लिये कोई चीज़ उसमें पक रही थी। राजा के साथ हम आगे बग़ल के एक आश्रम में पहुँचे। एक बड़े कमरे में सिलसिले से, काफ़ी फ़ासला छोड़ कर पाँच-छह बिस्तर लगे हुये थे और उन पर उनके मालिक विश्राम कर रहे थे या चलने की तैयारी कर रहे थे। एक अधेड़ आयु के देहाती बनक के व्यक्ति को लक्ष्य कर राजा ने उससे कहा :

"यह लीजिए, रावीजी को मैं यहीं ले आया।"

उस व्यक्ति ने तपाक के साथ मुस्कराते हुये मेरा स्वागत किया। "आप तो मुझे नहीं पहचान सके होंगे।" उसने कहा।

"शक्लों के बारे में मेरी याददाश्त बहुत कमज़ोर है" मैंने उसे पहचानने का प्रयत्न करते हुए कहा।

"यह कमज़ोरी ऊँची बुद्धिमत्ता के आभास के कारण ही अक्सर होती है! जो शक्लों में आसानी से भेद नहीं कर पाता वह प्रायः भीतर ही भीतर सबों के लिए समदृष्टि का विकास कर रहा होता है।" उसने मुस्कराते हुए कहा, "आपने उस दिन मुझे बाज़ार में जूते बेचते हुए देखा था।"

"आप एक अच्छे बहुरूपिया हैं और अपनी कला को केसी बहुत अच्छे उद्देश्य में लगा रहे हैं।" मैंने उसका अभिनन्दन किया।

"आप ठीक कहते हैं और अपनी कला को मैं जिस बहुत अच्छे उद्देश्य में लगा रहा हूँ उसे जान कर आप उसे और भी अधिक पसंद करेंगे।" उसने कहा।

"इनका नाम रघुनाथ दास है और मेरठ शहर में इनक जूतों का कारखाना है। उसी ज़िले के एक गाँव में इनक मकान और कुछ ज़मीन भी है। इनके कामों की कुछ बड़ी-बड़ बातें आप कभी फ़ुर्सत से इनके ही मुँह से सुनेंगे।" राजा ने मानो आगे बढ़ने का संकेत करते हुये कहा।

"मैं अवश्य सुनूँगा। मैं समझता हूँ, आपका उद्देश्य विचित्र प्रकार के प्रदर्शनों और कुतूहलों द्वारा लोगों को एकत्र कर उनमें से खास अच्छे लोगों की छाँट कर लेना है।" मैंने चलते-चलाते अपना कुछ-न-कुछ समाधान कर लेना चाहा।

"बहुत खास अच्छे लोगों की छाँट करना तो उतना नहीं, बल्कि साधारणतया अच्छे लोगों की अच्छाइयों या बुद्धि-मत्ताओं को ऊपर निकाल लेना आप मेरा उद्देश्य मान सकते हैं। साधारणतया अच्छे लोगों में कुछ विशेष अच्छाइयाँ और बुद्धिमत्ताएँ होती हैं, जिन्हें ऊपर लाने के लिये कुछ विशेष प्रकार के कौशल और अभ्यास की आवश्यकता है, मेरा काम लोगों की कुछ भीतरी अच्छाइयों को उभार लाना है; इस राजा का काम भीड़ों में से विशेष अच्छे लोगों को छाँट लाना है। हम सबकी अलग-अलग योग्यतायें और अलग-अलग काम हैं। यह राजा सचमुच हमारा राजा और इन कामों में हमारा सबसे बड़ा जमादार है।"

"ये भीतर से देखने की बातें हैं। लेकिन उस दिन के आपके प्रदर्शन से, मैं नहीं समझ सकता मेरी कौन-सी अच्छाई उभर सकती थी। मुझे तो वह प्रदर्शन कुछ खास आकर्षक नहीं लगा।" मैंने शंका की।

"आपको उस समय जूते की आवश्यकता होती और साथ ही पैसे की कुछ किफ़ायत की भी ज़रूरत होती तो आपकी

बुद्धि उस समय कुछ सतर्क हो सकती थी। वह प्रदर्शन तो एक ख़ास परिस्थिति के लोगों के लिये ही था।"

"मेरे सामने जिस आदमी ने छह रुपये में एक जोड़ी जूता ख़रीदा था, उसका आगे आपसे कोई सम्पर्क हुआ? जूते के साथ आपने उसे जो परचा दिया उसमें ऐसे ही काम की कोई बात लिखी होगी?" मैंने पूछा।

"वह मेरे मित्र बन गये और सम्बन्धी भी। उनकी लड़की से मेरे लड़के का विवाह तय हो गया है। बहुत सुलझे हुये आदमी निकले। इस तरह के पर्चे मैं अक्सर नये शहरों में सड़क पर पटाये हुये अपने ख़रीदारों को देता हूँ।" और रघुनाथदास ने अपने बक्स से निकाल कर एक हाथ का लिखा परचा मेरे हाथ में रख दिया। उस पर लिखा था:

आप बहुत भले और समझदार जान पड़ते हैं। मैं जूते बेचने या धर्म और भक्ति का प्रचार करने के अलावा कुछ और काम भी करता हूँ। क्या आप रोशन मुहल्ले की सर्वजन धर्मशाला में आज से तेरह तारीख़ तक किसी भी दिन शाम के सात बजे से सुबह के दस बजे तक मुझे दर्शन देने की कृपा करेंगे? मेरा नाम रघुनाथदास है।

राजा ने मेरा हाथ दबा कर आगे बढ़ने का संकेत किया। "बैठक शुरू होने के पहले आपको दो-तीन जनों से अभी और मिलना है। इनसे तो आपका परिचय हो ही गया है।" उसने कहा।

हम लोग आगे बढ़े।

एक दूसरे कमरे में उसने दो और व्यक्तियों से मेरा परिचय कराया। उनमें से एक कुबड़ा और विशेष मसख़रे

स्वभाव का था और दूसरा गेरुआ वस्त्रधारी एक हृष्ट-पुष्ट साधु था। पहले का नाम मानकचन्द था और वह विदूषक नृत्य में विशेष पटु था। दूसरे का नाम स्वामी सर्वदानन्द था और वह देखने में बहुत शान्त और कर्मठ प्रकृति का जान पड़ता था। मुझे लगा, इन लोगों से मुझे मिलाने का राजा का उद्देश्य मुझे इनका नहीं, बल्कि इन्हें ही मेरा परिचय देना अधिक था।

एक दूसरे भवन के आँगन में राजा ने मुझे एक विशाल-काय पहलवान सरीखे आदमी से मिलाया। "इनका नाम बजरंग बहादुर है। ये अक्सर हमारी यात्राओं में बैल और घोड़े का काम दे जाते हैं। कलकत्ते में इन्होंने हाथ की रिक्शा चलाने में बड़ा नाम कमाया था और बहुत पैसा भी। यह बहुत भले और सीधे-सादे आदमी हैं।" उसने कहा।

"हाँ, यह आपके दल के बजरंगबली ही हैं!" मैंने उसका संक्षिप्त-सा अभिनन्दन किया और हम आगे बढ़े।

उसी भवन की ऊपरी छत पर मास्टर रंजन कुछ एकांत चिन्तन कर रहे थे। हमें देखते ही वह उठ खड़े हुए और हमारा स्वागत किया।

"इन्हें तो आप जानते ही हैं और इनका साधारण श्रेणी का कुछ संगीत उस दिन ताज महल में सुन चुके हैं। इन्होंने भी आगरे की गलियों में पिछले आठ-दस दिन अपना पुराना, भिखारी का काम किया है। भाटियाजी के घर मैं इन्हीं को उस सुबह ले गया था।" राजा ने कहा।

"आपका वह गाना साधारण श्रेणी का था तो आपका ऊँची श्रेणी का गाना न जाने कैसा होता होगा" लीला ने

आश्चर्य और प्रशंसा के स्वर में कहा। मैंने इसे ही उस महान गायक का हम लोगों की ओर से यथेष्ट अभिनन्दन समझ कर कुछ और नहीं कहा। वह भी केवल मुस्करा कर चुप रह गया। हम अब बैठक के स्थान की ओर बढ़े।

"और इस सम्मेलन के लिए आई हुई स्त्रियाँ क्या कहीं अलग ठहरी हैं? जो लड़की सुबह खाना लेकर आई थी वह कहाँ है?" लीला ने राजा से पूछा।

"हाँ, जो औरतें अकेली आई हैं वे अलग एक जगह ठहरी हैं, भोजनघर के पास के एक घर में।" राजा ने कहा।

"मैं तो उस लड़की से मिलना चाहती थी" लीला ने अपनी उत्सुकता प्रकट कर दी।

"लेकिन वह आपसे मिलने में कुछ डरती है।" राजा ने शरारत के स्वर में कहा।

"क्यों? मुझसे डरने की ऐसी क्या बात है? वह कौन है?"

"वह एक लड़की ही है। क्वाँरी है। आप उससे कहीं नफ़रत न करने लगें इसी बात का उसे कुछ डर है।"

"वही तो मैं पूछती हूँ, उसमें नफ़रत की ऐसी क्या बात है?"

"वह बहुत सुन्दर है, और सुन्दर स्त्रियों से आमतौर पर भली स्त्रियाँ नफ़रत करती हैं।" राजा का चिढ़ाना बढ़ता ही जा रहा था।

"बेकार की बातें मत करो, सीधे बताओ वह लड़की कौन है।" लीला ने अब राजा पर रौब जमाने का प्रयत्न करते हुए कहा। उसकी और राजा की इतने दिनों में काफ़ी बेतकल्लुफ़ी हो गई थी।

"जल्दी मत कीजिए। वह आपको खुद ही मिलेगी और तभी आप उसे अच्छी तरह जान जायेंगी।" राजा ने कहा और लीला भी इस पर चुप हो रही।

"इस मिशन का यह जाल बहुत तगड़ा जान पड़ता है। इस आगरे में कई दिन पहले से कितने ही लोग आकर अपना-अपना काम कर रहे थे।" मैंने राजा से कुछ और सुनने के लिए कहा।

"उस दिन अगर आपके पास और समय होता तो कम-से-कम एक दर्जन लोग और मैं आपको शहर में जहाँ-तहाँ अपना काम करते हुए दिखा देता। उस दिन तक करीब पचीस-तीस आदमी बाहर से आकर अपने-अपने कामों में लग गये थे। कभी-कभी शहर में हमारे ऐसे पूरे सौ-सवा-सौ काम करने वाले इकट्ठे हो जायँ तो हंगामा मच जाय।"

"और पिछले कमरे में जो सर्वदानन्द स्वामी मिले थे उन्हीं की बात शायद वह मेरे बूरे की दूकान वाले मित्र कह रहे थे।" मैंने पूछा।

"उन्हीं की। सर्वदानन्द ने शहर में हर रोज़ एक व्याख्यान दिया है और अलग-अलग भी बहुत-से लोगों से मिले हैं।"

इस समय तक हम लोग जमना-तट के उस मैदान में पहुँच गये थे। घास पर बीस-पचीस के लगभग लोग तितर-बितर बैठे अपना-अपना गुट बनाकर बातें कर रहे थे। दक्षिण-पश्चिम की ओर दो बड़े लट्ठे गाड़ कर उनके सहारे एक बड़ा-सा कपड़ा तान दिया गया था जो सूर्य की तेज़ धूप को कुछ रोकने का काम कर रहा था।

राजा के साथ हमलोग भी एक अलग गुट बना कर बैठ गये।

[१३]

दस मिनट बाद वेंकटाचलम् और हरीश एक अन्य युवक के साथ गुफा के टीले परसे उतरते हुए दिखाई दिये। ये तीनों आकर हमारे पास ही बैठगये। दस मिनट और बीतने पर वहाँ आने वाले सभी व्यक्ति आ चुके। उपस्थित जनों की संख्या अब चालीस के लगभग थी और मैंने अनुमान लगाया, उनमें दस-बारह के करीब स्त्रियाँ थीं। हरीश के हाथ की घड़ी देखते हुए वेंकटाचलम् ने खड़े होकर सबको सम्बोधित करते हुए कहा :

"मित्रो, दो बजने में दो मिनट और बाकी हैं और मैं समझता हूँ कि आने वाले सभी लोग आ गये हैं। हमें अपनी कार्यवाही आरम्भ कर देनी चाहिए।"

"हाँ, सभी लोग आगये हैं।" बीच में से एक आदमी ने खड़े होकर कहा और सभी लोग उठ कर एक पास एकत्र हो गये। वे लगभग एक अर्द्ध चन्द्राकार वृत्त की तीन-चार पंक्तियों में हमें घेर कर बैठ गये।

वेंकटाचलम् ने अब अपने स्थान पर बैठे हुए ही कहना प्रारम्भ किया :

"मित्रो, आप में से अधिकांश लोग एक दूसरे से नये नये ही इस सम्मेलन में मिल रहे हैं। अपने नये परिचितों का परिचय प्राप्त करना आप लोगों का अपना काम है, जिसे आप इस सभा के बाद या कभी भी कर लेंगे। पिछले वर्ष आज से लगभग ग्यारह महीने पहले हम लोग बनारस में एकत्र

हुए थे। उस समय हमारी संख्या केवल बारह थी और इस वर्ष हम लोग चालीस से ऊपर हैं। मुझे आशा है कि अगले वर्ष जहाँ भी हमारा कैम्प होगा, हम सौके समीप पहुँच जायेंगे। आप में से जो लोग इसी साल हमारे मित्र हुए हैं, उनकी जानकारी के लिए इस संघटन की कुछ मोटी-मोटी बातें मुझे यहाँ बता देनी चाहिए। लेकिन उससे पहले एक बात और है। हमारे इस छोटे-से समाज का अभी तक नाम कोई नहीं रखा गया है और बिना नाम के हमें अब इसके सम्बन्ध में बात करने में असुविधा भी होने लगी है। इसलिए मेरा प्रस्ताव है कि इस समाज का नाम कम-से-कम एक वर्ष के लिए मैत्री क्लब रख दिया जाय। यह नाम हमारे नये मित्र रावीजी का दिया हुआ है। यह रावीजी, जो मेरे दाहने हाथ पर बैठे हुए हैं और जिन्हें आप सब लोग देख रहे हैं, हिन्दी के एक अच्छे लेखक हैं और हमारी इस वर्ष की सभा के मेज़बान हैं।"

मैंने इस समाज का मैत्री क्लब नाम कभी नहीं रक्खा था और न इसके नामकरण के बारे में मेरी वेंकटाचलम् से या किसी से भी बात ही हुई थी। मैंने सोचा कि उसकी इस बात का प्रतिवाद कर दूँ, पर बीच में इस तरह बोलना ठीक न समझ कर चुप ही रहा। अगले ही क्षण मुझे ध्यान आया कि मैंने अपनी एक कहानी में एक क्लब का नाम मैत्री क्लब रक्खा था। वेंकटाचलम् ने वह कहानी अवश्य पढ़ी होगी और उसी के आधार पर, मुझे सम्मानित करने के लिए, उसने ऐसा प्रस्ताव रक्खा है—मैंने सोच लिया।

वेंकटाचलम की बात चल रही थी :

"मैं समझता हूँ कि यह नाम किसी तरह भी हम लोगों के उद्देश्य और अभिप्राय के विरुद्ध नहीं है; इसलिए आप लोग इस नाम को स्वीकार करना पसंद करेंगे।"

कुछ लोगों की अवाज़ें उठी :

"ठीक है। अच्छा रहेगा। स्वीकार है।"

"तो फिर हम अगले कैम्प तक के लिए इसे मैत्री क्लब या क्लब के नाम से पुकारेंगे। इस में आप लोगों में से किसी को आपत्ति नहीं है। लेकिन हम केवल एक साल के लिए इसे यह नाम देंगे और अगले साल इसका कोई और नाम रक्खेंगे। मेरा विश्वास है कि इस समाज का कोई एक निश्चित नाम अवश्य है, लेकिन वह हमे आगे कभी समय आने पर मालूम होगा। जब हमें वह मालूम हो जायगा तभी हम इसे स्थायी रूप से उस नाम से पुकारने लगेंगे।" वेंकट ने कहना प्रारंभ किया।

"इसका मतलब क्या यह नहीं है कि वह नाम आपका या हम लोगों में से किसी का रक्खा हुआ नहीं है और वह आपको भी मालूम नहीं है।" बीच में एक ने प्रश्न किया।

"वह नाम मेरा नहीं, बल्कि मेरे एक बड़े भाई और उसके कुछ साथियों का रक्खा हुआ है और जब हमारे कामों की रूपरेखा कुछ स्पष्ट हो जायगी तभी हम लोग उसे जान सकेंगे।" वेंकट ने कहा और जारी रक्खा, "हमारे इस मैत्री क्लब के मुख्य सदस्यों की संख्या इस समय चौवन है और उनमें से पैंतालीस यहाँ इस कैम्प में उपस्थित हैं। इन चौवन मुख्य सदस्यों के अतिरिक्त हम लोग अलग-अलग लगभग तीन सौ और व्यक्तियों के सम्पर्क में आ चुके हैं, जिनमें से बहुत से लोग हमारे क्लब के लिए उपयोगी बहुत अच्छा काम अपने

तौर पर कर रहे हैं। हमारा अनुमान है कि अगले वर्ष के कैम्प तक उनमें से चालीस-पचास हमारे क्लब के सदस्य बन जायँगे और हम लोगों के सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों की संख्या हज़ार के लगभग पहुँच जायगी।"

"तब क्या आप लोगों के सम्पर्क में आने वाले सभी व्यक्ति इस क्लब के सदस्य नहीं होते? उन सबको क्या इस संस्था की जानकारी भी नहीं होती?" एक अन्य व्यक्ति ने पूछा।

"हमारे नये मित्र राजाराम जी" वेंकटाचलम् ने सारी सभा को सम्बोधित करते हुए कहा, "जो कि बरेली के निवासी हैं और रघुनाथदास के खोजे हुए हमें प्राप्त हुए हैं, यह प्रश्न पूछ रहे हैं। इन्होंने और इस सभा में उपस्थित दूसरे नये मित्रों ने अपने-अपने मित्र द्वारा हमें केवल इतना ही लिखित वचन दिया है कि वे अपनी-अपनी रुचि और सामर्थ्य के अनुसार समाज या किसी भी नये परिचित व्यक्ति की भलाई का कोई काम करते रहने का बराबर ध्यान रक्खेंगे और इस क्लब के सदस्यों की विभिन्न रुचियों और कार्यों के प्रति सहयोग, सम्मान, और जहाँ यह न हो सके वहाँ कम-से-कम सहिष्णुता या उदासीनता का भाव रखते हुए उनसे मिलेंगे। केवल इन दो शर्तों के साथ हमारे जिन नये परिचितों ने इस क्लब के निकट सम्पर्क में आने की इच्छा प्रकट की है पहली बार आज इस क्लब के अधिवेशन में उपस्थित हैं। हमारे क्लब के नन्हें-से जीवनमें किसी वचन-बद्धता के बिना भी पहली बार एक नये मित्र का प्रवेश हुआ है और वह हमारे इस कैम्प के स्वागतकार रावी हैं। उनसे हमे जिस प्रकार के सहयोग की आवश्यकता है वह इसी प्रकार का है कि उनसे किसी

प्रतिज्ञा की हमें आवश्यकता नहीं है। नियमों में अपवादों को स्थान देने के लिए हमें सदैव तैयार रहना पड़ेगा।

"हमारे इस क्लब के कोई विशेष उद्देश्य और कार्यक्रम नहीं हैं। इसका एक मोटा अभिप्राय केवल यही है कि समाज में जहाँ कहीं भी कुछ अच्छा हो रहा है उसे सहयोग और प्रोत्साहन देकर अधिक-से-अधिक आगे बढ़ने का अवसर दिया जाय। ऊपर से देखने में यह बहुत साधारण, उलझी हुई और निर्बल-सी बात जान पड़ती है, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। ज्यों-ज्यों हम इसकी गहराई में उतरते जायँगे इसकी बढ़ती हुई सबलता और रोचकता को देखते जायँगे। इस अभिप्राय के लिए हम अधिक-से-अधिक लोगों के सम्पर्क में आना चाहते हैं और समय-समय पर उन लोगों की रुचियों और योग्यताओं के अनुसार नये-नये क़ाम भी हाथ में लेते रहना चाहते हैं। इसके लिए पिछले चार वर्षों से एक प्रारम्भिक आवश्यकता का काम हमने हाथ में लिया है, और वह है, एक नये नगर का निर्माण—ऐसे नगर का निर्माण जिसमें बसने वाले लोग सुख और समझदारी के साथ रह सकें और उन्हें देख कर दुनिया जान सके कि इस प्रकार का जीवन आज के समय और परिस्थितियों में भी साध्य और सम्भव है।

"मेरे मित्रो, मानव-समाज अपने विकास के एक बहुत महत्वपूर्ण विन्दु पर इस समय पहुँच गया है और संसार में संकट और पतन की-सी जो परिस्थितियाँ इस समय दीख पड़ती है, उनका वास्तविक रूप वह नहीं है जो आमतौर पर लोगों को दिखाई दे रहा है। मानव-समाज की एक यथेष्ट

बड़ी संख्या इस समय विकास के उस स्थल पर पहुँच गई है जो सुख-समृद्धि की स्थिति के बहुत निकट है। आप यह सुनकर आश्चर्य न करें कि इस बड़ी संख्या में सम्मिलित अधिकांश लोग ऐसे ही हैं जो साधारण हैसियत और योग्यताओं के मामूली दुनियादार ही जान पड़ते हैं और जिनमें मानव-स्वभाव की कामनाएँ और दुर्बलताएँ आम लोगों जैसी ही, और कहीं-कहीं आम लोगों से भी अधिक मौजूद हैं। लेकिन उनमें एक बड़ी चीज़ स्पष्ट या अभी कुछ अस्पष्ट रूप में जाग उठी हैं: वे अपने मार्ग पर सामने देखने के साथ-साथ अपने ठीक नीचे की भूमि को भी देखने में समर्थ होने लगे हैं। वे चलना ही नहीं, ठीक चलने के लिए समय-समय पर रुकना भी सीख चले हैं। जब उनके कानों में कोई आवाज़ आती है तो वे उसे सुन सकते हैं; अगर यह आवाज़ उनसे कुछ सोचने के लिए कहती है तो वे उसे सोच भी सकते हैं—चाहे वह आवाज़ उनके किसी परिचित की हो या अपरिचित की, आदरणीय व्यक्ति की हो या अनादरणीय की, दृश्य की हो या अदृश्य की। एक शब्द में उनमें प्रत्येक स्वयं सूझी हुई या किसी दूसरे के द्वारा सुझाई हुई चेतावनी पर विचार करने की क्षमता जाग रही होती है। इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह होता है कि उनका जीवन थोड़े-से ही संकेत पर सरलता और स्वतन्त्रता की ओर मुड़ चलता है। वे सुगमता-पूर्वक दुनिया का रंग तेज़ी से अपने अनुकूल बदलता हुआ देख सकते हैं। आमतौर पर वे लोग अपने सम्बन्ध में ऐसी कोई ऊँची धारणा नहीं रखते जिसका मैंने अभी उल्लेख किया है। उन्हें अपनी इन सम्भावनाओं का आमतौर पर कोई

स्पष्ट ज्ञान नहीं होता और इसीलिए वे अपने आपको आम लोगों से भिन्न नहीं समझते।

"अभी मैंने लोगों के जिस प्रकार की चर्चा की वह एक ऐसा प्रकार है जो मानव समाज में एक बड़ी संख्या में—हज़ारों नहीं बल्कि लाखों की संख्या में मौजूद है और जहाँ-तहाँ नये युग के समाजों में खिंच कर एकत्र होने के लिए तैयार है। लेकिन अलग-अलग क्षेत्रों में ऐसे निर्माण का प्रारम्भिक कार्य जो लोग करेंगे वे पीछे कहे लोगों की अपेक्षा कुछ अधिक जागरूक और संवेदनशील होंगे, और उन्हें अपनी ऐसी नई सम्भावनाओं का कुछ अधिक स्पष्ट रूप में पता होगा। वे अपनी दुर्बलताओं और प्रवृत्तियों पर भी कुछ अधिक पैनी और सजग दृष्टि रखने के अभ्यस्त होंगे। ऐसे आगे चल सकने वाले लोगों का चुनाव पूरे मानव-समाज में से अनेक आन्तरिक और बाह्य आन्दोलनों के द्वारा इस समय तेज़ी से हो रहा है और वास्तव में कभी तेज़ और कभी कुछ धीमी चाल से सदैव होता रहता है। अलग-अलग समयों और मंज़िलों की आवश्यकतानुसार अलग-अलग प्रकार के लोग छँट कर सामने आ जाते हैं और वे अपने समय के नये युग और नये समाज का निर्माण करते हैं। मानव-समाज की प्रगति की सदा से यही शैली रही आई है।

"मुझे विश्वास होता है कि हमारा यह क्लब भी उसी तरह के एक बाह्य आन्दोलन का परिणाम है और उसकी जड़ किसी आन्तरिक आन्दोलन से जुड़ी हुई है। हम भी अपेक्षाकृत बहुत छोटे पैमाने पर नये, कुछ अधिक विकसित और सुखी समाज का एक सूत्र डालने जा रहे हैं। मेरा यह विश्वास

इसलिए और भी दृढ़ हो जाता है कि हमें ऐसा करने के लिए कुछ अभीष्ट सुविधाएँ आसानी से मिलती जा रही हैं। प्रारम्भ में हम एक स्थान विशेष पर एक ऐसे नगर का निर्माण करने जा रहे हैं जहाँ का निवासी प्रत्येक व्यक्ति आज की अपेक्षा अधिक सुखी होगा, रोटी, कपड़ा और घर की उसके लिए सुविधाजनक और निश्चिंततापूर्ण व्यवस्था होगी, जहाँ वह अपने आपको विशेष रूप से स्वतंत्र पायेगा और अपनी रुचियों के विकास के लिए उसे नये-नये मार्ग मिलेंगे। मैं समझता हूँ कि यहाँ उपस्थित हम में से अधिकांश लोग—मुझे आशा करनी चाहिए, सभी लोग—उस नगर के निर्माता और निवासी बनेंगे, और हममे से प्रत्येक व्यक्ति सौ-सौ व्यक्तियों का केन्द्र बनकर उस नगर में पहुँचेगा।...

"मेरी इन बातों पर आप आश्चर्य या अविश्वास न करें। विश्वास करने का भी मैं कोई तकाज़ा नहीं करता। आपकी आवश्यकतानुसार वह सहज ही आपके सामने आता जायगा। यहाँ उपस्थित हम सब लोग साधारण व्यक्ति हैं। मनुष्य की सभी बातें हम में हैं हम सभी विभिन्न विचारों के हैं। हममें आस्तिक, नास्तिक, अध्यात्मवादी-भौतिकतावादी, तार्किक और श्रद्धालु सभी प्रकार के लोग हैं। हमारे अपने-अपने व्यक्तिगत विश्वास भी हैं और वे कभी-कभी भद्दे और अन्धविश्वास की सीमा पर पहुँचे हुए भी हो सकते हैं। दूसरों से सम्बंन्ध स्थापित करने की हमारी अपनी-अपनी शैली भी है, जो एक के लिए अनुकूल होती हुई दूसरे के लिए बिलकुल व्यर्थ की भी हो सकती है।"

एक अन्य व्यक्ति ने इस पर आक्षेप किया:

"जब हम लोगों में इतनी विभिन्नता है और विश्वासों और विचारों में हम सब के लिए एकता का कोई निश्चित स्थल ही नहीं है तो आप कैसे आशा करते है कि हम सब एक जगह मिल कर रहने और एक दूसरे को अपना प्रेम और सहयोग देने के लिए प्रेरित किये जा सकेंगे?"

"किसी से प्रेम और सहयोग की माँग करना" वेंकटाचलम् ने कहा, "या इन बातों की लोगों को प्रेरणाएँ देना बीतते हुए युग का एक मूर्खतापूर्ण बलात्कार है। कम-से-कम यह किसी उभरते हुए फोड़े को कुछ समय तक दबाये रखने के लिए उस पर एक बाहरी बोझ रख देने के बराबर ज़रूर है। हम इस तरह की कोई माँग अपने सदस्यों से नहीं करते। ऐसी कोई माँग हम किसी भी सदस्य से क्लब के लिए सामूहिक रूप में या किसी सदस्य या सदस्यों के लिए नहीं करते और न इनकी कोई आवश्यकता ही है।......

"लेकिन आप" एक अन्य व्यक्ति ने प्रश्न किया, "नये सदस्य से जो दो प्रतिज्ञाएँ लेते हैं कि वह अपनी रुचि और सामर्थ्य के अनुसार दूसरों की कुछ भलाई अवश्य करता रहेगा और इस क्लब के किसी सदस्य की रुचियों और कार्यों के प्रति असहिष्णु नहीं होगा— क्या ये दोनों प्रतिज्ञाएँ उसी श्रेणी की माँगें नहीं हैं?"

"ये कोई मांगें नहीं, बल्कि नये आने वाले सदस्य की स्वतन्त्र प्रवृत्ति और मानसिक स्तर की सूचनाएँ मात्र हैं। जब कोई व्यक्ति अपने सहज स्वभाव से दूसरों की भलाई करने में कुछ रस पाने लगता है और दूसरों को भी उनकी रुचि के अनुसार बरतने देने की सार्थकता उसकी समझ में आजाती

है तो वह स्वयं ही इन बातों में आगे बढना पसंद करता है।" वेंकटाचलम् ने कहा और जारी रक्खा :

"हमारे सदस्यों से ऐसी कोई माँग न होते हुए भी यह स्पष्ट है कि हम लोग प्रायः मिलकर सहयोगपूर्वक ही काम करेंगे और और एक दूसरे से प्रेम भी करेंगे। हम यह सब इसलिए करेंगे कि ऐसा किये बिना हम रह न सकेंगे और ऐसा करने में हमें विशेष सुख मिलेगा। हम लोग उस नये नगर में मिलकर रहना पसंद करेंगे, इसलिए कि वहाँ हमें जीवन और सुख की नई सम्भावनाएँ दीख पड़ेंगी और हम में से जो दूसरों के लिए त्याग और श्रम के काम करेंगे वह इसी लिए कि हमें उस त्याग में ही अधिक रस मिलेगा। हम अपने नये नगर में उस आदमी को विशेष सम्मान के साथ खोज-निकालने का प्रयत्न करेंगे जो अपने घर में विश्रामपूर्वक अकेला बैठ रहना पसंद करेगा और किसी को अपना प्रेम और सहयोग न देना चाहेगा ; क्योंकि वैसा व्यक्ति सम्भवतः किसी बहुत आगे की ऊँची मानव-सभ्यता का मनुष्य होगा।...

"हम जो कुछ करना चाहते हैं वह बिलकुल सरल, सहज स्वाभाविक है। आजकी शिक्षित और थोड़ी भी सुरुचि रखने वाली जनता उसके लिए बिलकुल तैयार है। हम ऐन वही बात करना चाहते हैं जिसे वे चाहते हैं और जो उनके लिए हितकर भी है। सबसे पहले हम उन्हें ऐसे स्थान में लाकर बिठाना चाहते हैं जहाँ वे जीवन की मोटी आवश्यकताओं की ओर से निश्चित हों और जहाँ उन्हें अपनी स्वतंत्र अर्थात् अपनी रुचिकर प्रवृत्तियों के लिए बटने वाला क्षेत्र मिल सके। ऐसे नगर या उपनिवेश में बसना कौन पसंद नहीं करेगा?

बोलिये, आप में से किसी को ऐसे नगर में बसना पसंद न हो तो वह बताये।...

दो क्षण के लिए वेंकटाचलम् ने मौन ग्रहण किया। जब कोई कुछ न बोला तो उसने फिर कहना प्रारम्भ किया :

"आप सभी ऐसे नगर में बसने के लिए तैयार और उत्सुक हैं। फिर भी ऐसे लोगों की ही वर्तमान समाज में अधिकता होगी— जो इस प्रकार के उपनिवेश में आने की बात सोचते झिझकेंगे और आना पसंद नहीं करेंगे। उनके मन में तरह-तरह की शंकाएँ और आशंकाएँ उत्पन्न होंगी। सारे मनुष्यों के लिए कोई नया उपनिवेश या नये नगर नहीं बनाये जा सकते। ऐसा प्रारम्भ में कुछ लोगों के लिए किया जा सकता है और शेष लोग, जो अभी इसके लिए तैयार न होंगे, वे स्वयं ही उसमें आना पसंद न करेंगे।...

"आप कहेंगे कि जिस समाज में हर व्यक्ति को अपनी मनमानी रुचियों का पसारा करने की स्वतंत्रता होगी, उसमें लोगों की व्यक्तिगत स्वतंत्रताएँ अवश्य दूसरे लोगों की स्वतंत्रता के संघर्ष में आयेंगी; एक ओर हर व्यक्ति को अपनी स्वतंत्रता को कुछ सिकोड़ कर रखना पड़ेगा और दूसरी ओर उसे दूसरे की स्वतंत्रता से कुछ दबना भी पड़ेगा। आपके मन में ऐसा संदेह इसी लिए उठेगा कि आप आज की भौतिक और मानसिक परिस्थितियों से बाहर की परिस्थितियों की कल्पना अभी स्पष्ट रूप में नहीं कर पायेंगे। लेकिन कुछ गहराई तक ध्यान देकर विचार करने पर आप इसकी कुछ कल्पना कर सकेंगे।...

अपनी वक्तृता का उपसंहार करते हुए वेंकटाचलम् ने कहा:

"हम सब की रुचि का एक काम इस समय हमारे सामने है। हम सब एक नई व्यवस्था और नई सुविधा के उपनिवेश में बसने के लिए तैयार हैं। ऐसे उपनिवेश में जहाँ हम जीवन की मोटी आवश्यकताओं की ओर से निश्चिन्त होंगे, जहाँ हमें अपनी हर प्रकार की कामनाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति की पूरी स्वतंत्रता होगी, जहाँ दो व्यक्तियों के बीच तीसरा अवांछित रूप में कभी नहीं आयेगा, और जहाँ की परिस्थितियों में हमें जीवन की अधिक ऊँची सम्भावनाओं और सुखों को खोज निकालने का अवसर मिलेगा। उस उपनिवेश में कोई किसी से कुछ नहीं माँगेगा, लेकिन बहुतों को बहुत से लोग बहुत कुछ देंगे और हम सब देने और पाने के— मैं कहता हूँ देने और पाने के, देने और माँगने के नहीं — देने और पाने के पारस्परिक आदान-प्रदान में गहरे सुख का अनुभव करेंगे। वहाँ हम सहज ही देख सकेंगे कि देने में कितना बड़ा सुख है और जीवन का वास्तविक आनन्द देने में ही है, और पाना उसका एक स्वाभाविक परिणाम और अंश है। ऐसी किसी बस्ती में निवास पाने के लिए हममें से हरेक एक छोटा-सा प्रवेश-शुल्क देने के लिए सहर्ष ही तैयार होगा; और वह प्रवेश-शुल्क यही है कि हम दूसरों को भी उनकी इच्छा और रहन-सहन के अनुसार रहने दें और उन्हें अपने पड़ोस से हटाने का प्रयत्न न करें। उतनी बड़ी प्राप्ति के लिए इतना-सा मूल्य कोई बड़ी रकम नहीं है। और फिर यह सब आपको अभी एक प्रयोग और परीक्षण के रूप में करके देखना है। आपसे इसके लिए किसी तरह के काम, आदर्श, विश्वास और

चरित्र की माँग नहीं की जाती। आपसे केवल इतनी आशा की जाती है कि आप दूसरों को इनका काम करने देंगे और स्वयं भी अपनी रुचि का काम करेंगे। यह दूसरी बात आप पर कोई बोझ नहीं है; खुली परिस्थितियाँ मिलने पर आप अपनी रुचि का काम किये बिना रह ही नहीं सकेंगे। ऐसा एक उपनिवेश, प्रारम्भ में एक छोटा-सा नगर हम शीघ्र ही बसाने जा रहे हैं। रूस में नहीं, इसी भारतवर्ष में और यहाँ से केवल सौ मील की दूरी पर। वास्तव में वह कोई नया नगर नहीं होगा; क्योंकि अठारह हज़ार वर्ष पहले बसे, एक भूगर्भ में समाये हुए नगर की नींव पर ही हम उस नगर का निर्माण करेंगे। हमारे देश की वर्तमान राजधानी दिल्ली नगरी का प्रथम निर्माण आज से उन्नीस हज़ार वर्ष पहले हुआ था और तब उसका नाम रविपुर था, आजकी दिल्ली उस रविपुर का सातवाँ संस्करण है। उसी रविपुर के पूरक, उससे कुछ दूरी पर बनाये हुए एक सांस्कृतिक नगर की ध्वंस-भूमि पर हमारा यह नगर बसेगा। इसका निर्माण-कार्य हमने आज से चार वर्ष पहले प्रारम्भ कर दिया है। ईंट, चूना और धातुओं से पहले हमें उसके लिए निवासियों का संग्रह करना है। तीन दिन के इस शिविर-सम्मेलन के अंतिम दिन तक आप इस कार्य की प्रगति कुछ और भी खुले रूप में देख सकेंगे।"

श्रोताओं ने बड़ी रुचि और तन्मयता से वेंकटाचलम् के भाषण को सुना। उन्हें बाँधने के लिए उसमें सचमुच बहुत कुछ था।

सभा विसर्जित हो गई। सूर्य की अंतिम सुखस्पर्शी किरणें

हम सब पर पड़ रही थीं; सामने का पर्दा बीच में ही किसी समय हटा दिया गया था। अधिकांश लोग उठ कर अपने-अपने डेरों की ओर चल दिये; कुछ वहीं बैठे बातें करने लगे। हम अपने कमरे को लौट आये।

हमारे डेरे पर पहुँचने के कुछ देर बाद ही दो व्यक्ति, एक पुरुष और एक स्त्री, एक बड़ी पतीली में गेहूँ का पका हुआ दलिया लेकर आ पहुँचे। इसके साथ परोसने के लिए उनके पास, दूध, बूरा और दाल भी थी। इनमें से हर कोई अपनी इच्छित वस्तु ले सकता था। यह कैम्प-वासियों का शाम का भोजन था। भोजनादि से निवृत्त हो कर रात को अपने बिस्तर पर पहुँचने पर लीला ने कहा :

"ऐसा कोई नगर क्या सचमुच बनने जा रहा है, जैसा वेंकट दादा ने बताया है? वह कब तक बस जायगा? हम तो उसी में चलकर रहेंगे।"

"तुम उसमें रहना पसंद करोगी?" मैंने कहा, "अगर वहाँ तुम्हारे एक बगल में कोई ऐसे लोग बस गये जिनके घर में रोज़ मांस पकता हो और दूसरे बगल में कोई ऐसे सज्जन हुए जो हर सप्ताह एक नया विवाह करने के आदी हों तो?"

"तो!" लीला कह उठी, "क्या ऐसा भी उस नगर में हो सकता है?" और वह चुप होकर सोचने लगी।

[१४]

दूसरे दिन सुबह सात से दस तक वन-भ्रमण का प्रोग्राम था। स्वभावतया इस दल का नेतृत्व मैंने किया। इस दल में सम्मिलित होकर चलने से इनकार करते हुए वेंकटाचलम् ने मुझसे कहा, "इस अवसर का नेतृत्व मैं आपको देना चाहता

हूँ। अगर मैं साथ चला तो मैं ही इसका भी नेता बनूँगा क्योंकि इस वन से जितना मैं परिचित हूँ उसका आधा भ आप इसे नहीं जानते।"

शिविर के लगभग तीस व्यक्ति इसमें सम्मिलित थे कैलासपुरी के समीपवर्ती वन के कुछ सौन्दर्य-स्थलों की सैर मैंने उन्हें कराई और कई स्थलों के फ़ोटो लिये गये। लगभग डेढ़ घंटे की सैर के बाद हम लोग एक जगह बैठ गये। साधारण ऊँचाई के टीलों की श्रेणियों के बीच घिरा यह समतल स्थल भी विशेष रमणीक था। टीलों पर बबूल के और आस-पास की नीची धरती पर बेर, शीशम, छोंकर, कदम्ब आदि के वृक्ष खड़े थे और बीच की इस खुली भूमि पर यत्र-तत्र नये करील के मंडप किसी बड़े सुरुचिपूर्ण हाथों के सँवारे शोभा दे रहे थे। सूर्य की किरणें हमारे शरीरों को इस समय बड़ा सुखद स्पर्श प्रदान कर रही थीं।

हम सब के बैठ जाने पर एक झोले में साथ आई हुई कच्ची मूँगफली के दाने और गुड़ नाश्ते के लिए वितरित किये गये। इस नाश्ते के प्रारम्भ के साथ एक युवक ने खड़े होकर कहना प्रारम्भ किया :

"मित्रो, मेरा नाम तारकेश है और आपमें से जो पहली बार इस शिविर में ही मुझे देख रहे हैं वे मेरे सिरके तार जैसे लम्बे बालों को देखकर मेरे नाम को आसानी से याद रख सकेंगे!..."

युवक के बाल उसके कंधों के पीछे पीठ तक लटके हुए थे और उनकी कुछ लटें कंधों के उस पार सीने पर भी आ जाती थीं। वह देखने में विशेष सुन्दर भी था और उसके

सौन्दर्य में कोमलता की आभा विशेष थी। होट और ठोड़ी के साफ़ किये हुए बालों से पहला अनुमान यही होता था कि उसके मुख पर अभी इनका आविर्भाव नहीं हुआ है। उसकी आँखें और कंठस्वर सर्वथा एक कलाकार के ही अनुरूप थे। वह कह रहा था :

"कैलास के इस रमणीक वन को देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है और इस पर्यटन के लिए मैं अपने नये मित्र रावी को हार्दिक धन्यवान और आप सब को बधाई देना चाहता हूँ। वनों का हमारे आत्मिक और सांस्कृतिक जीवन से बहुत गहरा सम्बन्ध है और यही कारण है कि प्राचीनकाल में आत्म-चिन्तकों और मानव संस्कृति के संस्थापकों का निवास प्रायः वनों में ही रहा है। इस भूमंडल में मानव-जाति अपने आदि काल से अपनी सहोदरा देव-जाति के साथ-साथ रहती आई है और जब तक इस पर रहेगी, उनका साथ बना रहेगा। ये मानव और देव जातियाँ एक प्रकृति के गर्भ से उपजी दो सन्तानें हैं और दोनों का विकास इस भूतल पर साथ-साथ होता आया है। इस देव-जाति के सर्वोच्च सदस्य सर्वोच्च मानवों से भी ऊँचे, और इसके निम्नतम सदस्य अविकसित मानवों से भी नीचे कहे जा सकते हैं। इस प्रकार विकास की सीढ़ियों में यह देव-जाति मानव-जाति के बहुत नीचे-ऊपर तक फैली हुई है। एक समय था कि जब मनुष्य और देव एक दूसरे के प्रकट सम्पर्क में इस पृथ्वी पर रहते थे और उनके पारस्परिक सहयोग से मानव-जीवन विशेष सुखी और समृद्ध था लेकिन आगे चलकर मनुष्य ने कुछ भौतिक प्रलोभनों में पड़ कर स्वार्थवश अपने इन बन्धुओं से नाता तोड़ना प्रारम्भ

कर दिया। मनुष्य ने अपने लिए नये-नये नगर बसा लिये और उनमें से धीरे-धीरे अपने देव बन्धुओं का बहिष्कार भी कर दिया। उन्होंने अपने नगरों को ऐसी अस्वाभाविक और कृत्रिम परिस्थितियों से भर दिया कि सामान्यतया देव-जनों का वहाँ टिकना ही कठिन हो गया। इस व्यापार से मनुष्य ही अधिक घाटे में रहा। इस हानि का अनुभव अब मानव-जाति के कुछ अधिक संवेदनशील क्षेत्रों में होने लगा है और वे उस सम्पर्क को पुनः स्थापित करने के लिए प्रयत्न-शील हैं। वन, पर्वत आदि भूतल के प्राकृतिक स्थल अब भी इन देवजनों के निवास-स्थान हैं और पृथ्वी पर इनका क्षेत्र मनुष्य की बस्तियों से कहीं अधिक है। इन प्राकृतिक स्थलों में आकर ही मनुष्य अधिक सुगमतापूर्वक अपने इन खोये हुए बन्धुओं का बहुमूल्य सम्पर्क प्राप्त कर सकता है। निस्संदेह अगली कुछ ही सहस्राब्दियों के भीतर मनुष्य इस खोये हुए सम्पर्क को फिर से यथेष्ट रूप में प्राप्त कर लेगा। बिना इस सम्पर्क के मनुष्य का सुगम विकास असम्भव है और इस सम्पर्क की पुनः स्थापना मानव-विकास की योजना के अन्तर्गत ही है।......

"मेरी इन बातों का इस शिविर के अवसर से एक सीधा सम्बन्ध है। जिस स्थल पर नये नगर के निर्माण का काम हमने इस समय हाथ में लिया है वह विशेष रूप से ऐसे देव-जनों का एक प्रिय निवास-स्थान है। उस नगर के निर्माण में हम यह ध्यान रक्खेंगे कि उसमें ऐसी कोई बात न आने पाये जो उसके उन पूर्वनिवासियों के लिए अरुचिकर हो। वहाँ बस कर हम उनका सहयोग और सामीप्य बराबर बनाये

रक्खेंगे। प्रत्येक वन-खंड का एक प्रधान देव होता है और उसके साथ उसका पूरा परिकर-परिवार होता है। ऐसे प्रधान देवों को ही हमारे प्राचीन साहित्य में वनदेव या वनदेवी का नाम दिया गया है। प्राकृतिक स्थलों की अनेक सुन्दरतायें—पर्वतों की सुन्दर कटाव वाली कन्दरायें, उनकी ग्रीवाओं और शिरों पर मनोरम आकृति से छोटे-बड़े पर्वत-खंडों का चुनाव और शृङ्गार, वनों में वृक्षों, लताओं और द्रुम-मंडपों का रूप-निदर्शन और कलात्मक विधि से क्रमीकरण—प्रायः उन देवजनों का अभिप्राय विशेष से किया हुआ कार्य होता है। नये नगर के वनदेव से हमारा बहुत मैत्रीपूर्ण सम्पर्क स्थापित हो चुका है और उसके सहयोग से हम अपने नगर को आवश्यक विशेषताओं से विभूषित कर सकेंगे।........

"मेरी इन बातों से यदि आपका केवल कुछ मनोरंजन हुआ या कुतूहल ही जाग्रत हुआ तो वह कोई काम की बात न होगी। आज के सुन्दर प्रभात में मैं यथासम्भव प्रत्यक्ष रूप में इस वनस्थली की वनदेवी के हाथों आपका कुछ सत्कार कराने का प्रयत्न करूँगा।"

तारकेश ने अपनी वक्तृता समाप्त करके भीड़ के बीच में एक लड़की की ओर संकेत किया। आठ वर्ष की एक सुन्दरी बालिका नृत्यगति से उठकर उसके पास चली आई।

"रेखा, देखो यहाँ पर कहीं तुम्हारे कोई सखाजन हैं।"

बालिका रेखा ने वहीं खड़े-खड़े, धीरे-धीरे चारों ओर घूम कर चकित दृष्टि से कुछ देखा और तब उछलती-कूदती एक ओर को दौड़ गई। सामने की वृक्षावलि की गोद में उगे एक करील-मंडप के समीप रुक कर वह हमारी ओर

मुँह फेर कर पास के नन्हें कृशकाय शीशम के वृक्ष से लिपट गई।

पश्चिम के मन्द समीर को भेदकर उत्तर की ओर से, जिधर वह बालिका थी उधर से वायु का एक तेज़ झोंका आकर निकल गया और रजनीगन्धा की मीठी महक हमारे समीप के वातावरण में बिखड़ पड़ी।

"धन्यवाद!" तारकेश ने किसी अदृश्य उपस्थिति को धन्यवाद देते हुए हम सबसे कहा, "यह वनदेवी के द्वारा हम लोगों का सत्कार है।"

कुछ क्षण बाद पूर्व की ओर से दूसरा वैसा ही झोंका आया और कदम्ब पुष्पों की सुगंध से हमारी नासिकाएँ छक गईं। उतने ही अंतर से दक्षिण की ओर से तीसरा झोंका नीबू की सुगन्ध लिये हुए आया।

सभी लोग शान्त, मौन बैठे थे। इस बीच में किसी का बोलना सम्भवतः ठीक नहीं था।

"रेखा, चित्र मिलेगा?" तारकेश का स्वर गूँज उठा।

"मिलेगा। ले लीजिए।"

रेखा को लक्ष्य कर हमारे दल के चित्रकार का कैमरा पहले से ही तैयार था। रेखा ने वृक्ष से अपनी बाँहें हटा कर बगलों की ओर फैला दीं।

"हाँ, एक–दो–तीन।" रेखा ने कहा और इधर कैमरे का बटन खटक गया। चित्र ले लिया गया।

हम सब लौट कर अपने-अपने डेरों पर आये। इस बीच इस विषय पर किसी ने कोई चर्चा, कोई प्रश्न नहीं किया। यह उन सभी लोगों के लिए कोई पुरानी बात थी या फिर

प्रश्नों को पेट में रोक रखने का संयम उन्हें सिखा दिया गय था। मैंने भी उस समय कुछ पूछने का साहस नहीं किया।

डेरे पर पहुँचते ही लीला ने कुछ समाचार-पत्र लाकर मेरे सामने रख दिये। वे आगरे के उस दिन के सभी दैनिक पत्र थे। वे पत्र उस समय के भोजन के साथ राजा मेरे लिए दे गया था, उसने बताया। पन्ने पलट कर मैंने देखा, उन सभी में इस शिविर की ओर से एक विज्ञापन था :

आवश्यकता है

एक नये नगर के निर्माण के लिए हर प्रकार के शिल्पकारों की तथा उसमें निवास के लिए सभी वर्ग और व्यवसाय के नागरिकों की। लेखक, कलाकार और वकील-वर्ग के व्यक्तियों को विशेष सुविधा रहेगी। नये नगर में निवासियों के लिए भोजन और मकान की व्यवस्था नगर-सभा की ओर से रहेगी। कल १७ तारीख शुक्रवार के दिन आगरे के समीप कैलास-स्थान में दो बजे से मैत्री क्लब शिविर-सम्मेलन के अधिवेशन में सम्मिलित होकर इस सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त करें।

पत्रकारों की दुनिया में इससे भी बड़े 'स्टंट' मैंने बहुत देखे थे, पर इस विज्ञापन से मेरे अनुमानों में नई सम्भावनाओं की वृद्धि ही हुई।

दो बजे से आज भी सभा थी। पिछले दिन के स्थान पर वैसा ही सब प्रबन्ध था। जिस समय हम—मैं और लीला—पहुँचे, लगभग सभी लोग आ चुके थे।

"मित्रो!" पीछे की पंक्ति में बैठते ही मैंने एक अति मधुर नारीकंठ का परिचित-सा स्वर सुना, "आपके सामने उपस्थित आज की सभा-वाहिनी का नाम हिमदा है।"

मैंने विस्मय और आश्चर्य की दृष्टि से देखा, यह वही नवयुवती थी जो पिछले दिन राजा के साथ हमें भोजन देने आई थी और जिसे मैंने कुछ दिन पहले आगरे के वेश्या-बाज़ार में राजा के साथ ही देखा था। यमुना की धारा से सटे एक छोटे-से, कोई दो हाथ ऊँचे टीले पर, जिस पर धोबियों की एक शिला बिछी हुई थी, आसीन होकर उसने उपरोक्त शब्द कहे, और कई क्षणों तक चुप रहकर उपस्थित जनों की ओर देखती रही।

"मेरी मा लखनऊ की एक अमीर महिला हैं" उसने कहना प्रारम्भ किया, "उनका वहाँ निजी मकान है। मुझे अपने पिता का पता नहीं है और न मेरी मा को ही इस बात की निश्चित जानकारी है।"

क्षण भर को रुक कर उसने उपस्थित जनों पर दृष्टि दौड़ाई और साथ ही एक मुस्कान उसके होंटों में थिरक आई।

"मैं एक वेश्या की लड़की हूँ। अब इतना जान कर आप में से कौन-कौन मुझसे घृणा करने और कौन-कौन मेरे साथ प्रेम-व्यापार में बँधने के लिए तैयार होंगे?"

उसने क्षण भर रुक कर उत्तर की प्रतीक्षा की और कोई उत्तर न पाकर कहने लगी :

"आप इस समय अपने मन की बात नहीं कह सकते। लेकिन मैं जानती हूँ, आप सभी साधु और वैरागी नहीं हैं। ख़ैर। वेंकट दादा के एक मित्र और सहयोगी ने, जिन्हें आप में से दो-तीन को छोड़ कर और किसी ने नहीं देखा, मुझे मेरी मा से उस समय माँग लिया था जब मैं सात वर्ष की थी। मेरी शिक्षा-दीक्षा का सारा प्रबन्ध मेरी मा के घर पर ही

उन सज्जन के आदेशानुसार हुआ और वेश्याओं की लड़कियों को मिलने वाली नृत्य-संगीत की शिक्षा के अलावा साहित्य, गणित, इतिहास और दर्शन को भी शिक्षा मुझे दी गई। दस वर्ष में मेरी यह शिक्षा पूरी हो गई। इस शिक्षा के समय में ही मुझे अपनी दूसरी सगी और मौसेरी बहनों और उनके प्रेमी ग्राहकों के भी सम्पर्क में आने का पूरा अवसर मिला। उस घर में मेरी इन बहनों की संख्या पाँच से लेकर कभी-कभी नौ-दस तक हो जाती थी। अपनी इन बहनों और उनके प्रेमी ग्राहकों की प्रवृत्तियों और सम्बन्धों का मुझे एक नये दृष्टिकोण से अध्ययन करने की शिक्षा दी गई। उस शिक्षा और उसकी परीक्षा में मैं फ़र्स्ट डिवीज़न में पास हुई।......

एक हलकी-सी हँसी श्रोतामंडल में मुखरित हुई। क्षणभर रुक कर वह कहती गई :

"आप मुझसे पूछ रहे हैं कि मैं उस घर में आने वाले पुरुषों में से किसी की शिकार बनी या नहीं; या मैंने किसी को अपना शिकार बनाने का प्रयत्न किया या नहीं। इस प्रश्न का मेरा सीधा और स्पष्ट उत्तर है—'नहीं।' तब आपका दूसरा प्रश्न होगा कि मैंने किसी व्यक्ति से प्रेम या उसके प्रति प्रेम का अनुभव किया या नहीं; और इसके उत्तर में मुझे मौन ही रहना चाहिए।"

वह कुछ क्षणों के लिये मौन हो गई और उसकी आँखें उपस्थित जनों की आँखों में घुस कर मानो उनमें से कुछ खोज निकालने का प्रयत्न करने लगीं।

"याद रखिये, दूसरे प्रश्न के उत्तर में मैंने 'हां' नहीं कहा है। खैर; अपनी शिक्षा समाप्त करके मैं पिछले कई वर्षों से

इस रूप और शरीर के व्यवसायियों के क्षेत्र में ही कार्य कर रही हूँ। हम जिस नये नगर को बसाने जा रहे हैं उसके निवासियों और निर्माताओं की एक छोटी-सी संख्या मैं इस वर्ग में से—वेश्याओं और वेश्यागामियों में से—आपको देने की आशा करती हूँ। वेश्याओं के परिवारों से उस नये नगर के निवासियों को अपनी पुत्रियों, बहनों और पत्नियों के लिये उच्चकोटि की शिक्षिकायें मिलेंगी जो उन्हें स्वास्थ्य, सौन्दर्य, काम, प्रेम, आदि की कलाओं की शिक्षा देंगी। ये ही प्रारम्भ में वहाँ के युवा वर्ग को ऊँची आकांक्षाओं और उदारताओं की प्रेरणा भी देंगी। वेश्यागामी वर्ग में से आपको अनेक सच्चे और ईमानदार व्यवसायी मिलेंगे।

"इसका मतलब यह है कि उस नये नगर में भी वेश्याओं और वेश्यागामियों का वर्ग होगा।" एक सज्जन बोल उठे।

"मेरी बात का क्या ऐसा भी कुछ अर्थ निकलता है?" हिमदा ने प्रश्नकर्ता की आँखों में पूरी दृष्टि डाल कर कहा, "लेकिन आपका अनुमान एक तरह से ठीक ही है। नारी रूप और नारी शरीर को बेचने वाले वर्ग को यदि आप आज का वेश्यावर्ग कहें तो अपने रूप और शरीर द्वारा दूसरों को प्रभावित और प्रेरित करने वाला एक नारी वर्ग उस नगर में भी होगा और उससे प्रभावित और प्रेरित होने वाला पुरुष वर्ग भी अवश्य होगा। आपके वेश्यावर्ग से बाहर के सभ्य समाज में भी शरीर और रूप का प्रभाव कहाँ नहीं है? वह तो सभी जगह है, और जहाँ नहीं है वहाँ जीवन और सुरुचि का अभाव है।"

"यह ठीक है" पूर्वोक्त प्रश्नकर्ता ने कहा, "यह ठीक है

कि सारे समाज में नारी अपने रूप और शारीरिक चेष्टाओं से पुरुष वर्ग को प्रभावित करती है, लेकिन यह बात तो समूचे नारी समाज की है। ऐसा होने से उसका कोई अलग नारी वर्ग तो नहीं बन जाता। नये नगर में ऐसे एक विशेष नारी-वर्ग से आपका अभिप्राय आज के वेश्या वर्ग से नहीं तो और किससे है?"

"आपके शिक्षित समाज में" हिमदा ने उत्तर दिया, "सभी लोग लिखना-पढ़ना जानते हैं। ऐसा होने से उनका कोई अलग वर्ग नहीं बन जाता। लेकिन उसमें से कुछ लोग लिखना-पढ़ना सिखाने का ही काम अपना लेते हैं। उनका एक अलग वर्ग अवश्य बन जाता है, जिसे आप शिक्षक वर्ग कहते हैं। नये नगर में जो विशेष सुगठित शरीर और आकर्षक रूप वाली स्त्रियों अपने रूप और शरीर की क्षमताओं से पूरा काम लेकर नागरिकों को जीवन के कुछ विशेष विभागों की शिक्षा देंगी उनका एक तरह से एक अलग वर्ग कहा जा सकेगा। वे उस समाज की लोक-प्रिय गायिकाएँ, नर्तिकाएँ, शिक्षिकाएँ, वक्ताएँ, कवयित्रियाँ, पुरोहिताएँ, और उपमाताएँ होंगी। मानव- सम्पर्क की कला में विशेष दक्ष होने के कारण— वे अपनी उदारता और मधुरता को अधिक खुले रूप में लेकर पुरुष वर्ग के सामने आ सकेंगी। क्योंकि वे पुरुष की अकोमल कामनाओं और सुरुचिहीन उत्तेजनाओं से अपने आपको सुरक्षित एंव अछूता रखने के साथ-साथ उन कामनाओं और उत्तेजनाओं को स्वस्थ दिशाओं में मोड़ने की कला में भी निपुण होंगी।"

"यह असम्भव जान पड़ता है" एक अन्य श्रोता ने

आपत्ति की "जहाँ पुरुष और स्त्री अपनी उदारताओं और मधुरताओं को खुले रूप में लेकर मिलेंगे वहाँ सेक्स सम्बन्धी कामनाओं और उत्तेजनाओं से अपने आपको अछूता रखने की कला के असफल हो जाने का ही शत-प्रति-शत भय है।"

"मेरे इन मित्र ने" हिमदा ने सभा को सम्बोधित कर कहा, "बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण बात कही है। उन्होंने कहा है कि यह असम्भव जान पड़ता है; असम्भव है, ऐसा नहीं कहा। जो बात असम्भव जान पड़ती हो उसे असम्भव कहने की उतावली कोई बुद्धिमान पुरुष नहीं करेगा। जब तक हम किसी बात की सभी सम्भावनाओं को पूरा-पूरा जान न लें तब तक उसे असम्भव कैसे कह सकते हैं? समाज की वर्तमान प्रवृत्तियों और दुर्बलताओं को देखते हुए यह बात अभी असम्भव ही जान पड़ती है। लेकिन समाज में कुछ ऐसी परिस्थितियों का, जिनकी हम अभी आसानी से कल्पना भी नहीं कर सकते, निर्माण किया जा सकता है जो हमारी इन्हीं प्रवृत्तियों का कोई नया ही पार्श्व हमारे सामने घुमा दें। मनुष्य की ऊँची-से-ऊँची सम्भावनाएँ उसमें हर समय विद्यमान हैं और उनमें से कोई भी सम्भावना किसी भी क्षण उसके सामने, परिस्थिति विशेष उत्पन्न करके, लाई जा सकती है। इसके लिए युगों और वर्षों के संयम अभ्यास की भी आवश्यकता नहीं है। यदि मेरे यह मित्र एक दिन और रात के लिए मुझे अपना अतिथि बनाना स्वीकार करें तो मैं अपनी सारी उदारताओं और मधुरताओं को लेकर—यदि ये चीज़ें मुझमें थोड़ी-बहुत हैं—इनका आतिथ्य ग्रहण करना अपना सौभाग्य समझूँगी; और तब मैं और यह इस प्रश्न के सम्बन्ध में सम्भवतः किसी

निश्चयपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँच सकेंगे।" हिमदा ने कहा और क्षणों के लिए मौन होकर स्निग्ध, अपलक, स्थिर दृष्टि से उस प्रश्नकर्ता युवक की ओर देखती रही।

मैंने हिमदा को देखा। उसका रूप और माधुर्य अपने पूरे निखार में उभरा हुआ एक अभूतपूर्व तेज के वातावरण से घिर गया था। उस क्षण मैंने अपनी कल्पना में उसके मृदुहास-खचित मधुर होटों को एकबार चूम लेने का प्रयत्न किया; पर मैंने देखा, मेरे होट उसके घुटनों से ऊपर नहीं पहुँच पाये। मुझे लगा कि रूप और तेज की वह एक देवी-सी इतने ऊँचे आसन पर बैठी है। उस प्रश्नकर्त्ता तथा लगभग सभी उपस्थित जनों को उस क्षण ऐसे ही कुछ अनुभव हुए होंगे, इसमें मुझे संदेह नहीं है।

"मैं आपके इस निष्कर्ष से सहमत हूँ" उसी प्रश्नकर्ता के कुछ भर्राये-से कंठस्वर ने सभा की निस्तब्धता भंग की।

हिमदा अपने आसन पर हिली। उसने लगभग एक अधूरी अंगड़ाई-सी ली और कहना प्रारम्भ किया :

"पुरुष और स्त्री के रूप और उनके पारस्परिक सम्बन्ध से उत्पन्न सेक्स-सम्बन्धी कामनाओं की सम्भावनाएँ क्या हैं, यह हमने अभी लगभग कुछ भी नहीं देखा। नये समाज की नई परिस्थितियों में हम इसे अवश्य देखेंगे, और तब हम देखेंगे कि मनुष्य के लिए सुख और शक्ति का कितना बड़ा स्रोत उस की इस कामना में सोया पड़ा था। मित्रो, क्या यह सम्भव नहीं कि हम लोग अपनी पुरानी धारणाओं और मान्यताओं को कुछ समय के लिये अलग रख कर नये प्रयोगों को निष्पक्ष भाव से देखने के लिए अपने हृदय खोल दें?......

क्षण भर को वह रुकी और फिर बोली :

"मित्रो, इस समय इतनी सब बातें कह कर मैं आपके सामने केवल एक प्रश्न रखना चाहती हूँ, और वह यह है : आपका वह सबसे अधिक स्वस्थ रुख़ क्या हो सकता है जिसे आप स्वयं किसी विपरीत सेक्स के व्यक्ति की ओर आकृष्ट होने पर ग्रहण कर सकते हैं और अपनी बहिन, बेटी, पत्नी अथवा भाई, पुत्र और पति को भी उस रूप में किसी की ओर आकृष्ट होने पर वैसे ही रुख़ की स्वतन्त्रता और सलाह दे सकते हैं ? आपका वह स्वस्थतम रुख़ क्या हो सकता है ? मेरा अनुरोध है कि इस प्रश्न को आप अपने साथ ले जायँ और इस पर विचार करके अपना उत्तर खोज निकालें ।"

सभा विसर्जित हुई । सूर्यास्त का समय हो आया था । कुछ लोग हिमदा के गिर्द घिर आये । कुछ देर वहाँ रुक कर मैंने भी पत्नी-सहित अपने डेरे की ओर प्रस्थान किया ।

यमुना के किनारे-किनारे चल कर हम अपने कमरे के समीपवर्ती घाट की सीढ़ियों पर चढ़ने को ही थे कि एक कोमल हाथ के स्पर्श से मैंने मुड़ कर पीछे देखा, हिमदा ने ही पीछे से चुपचाप आकर मेरा और लीला का एक-एक हाथ अपने हाथों में पकड़ लिया था और हमारे गर्दन फेरते ही खिलखिला कर हँस पड़ी थी ।

"आपके इस कोमल हाथ में गरमाहट बिलकुल नहीं है । क्या इसीलिए आपका नाम हिमदा पड़ा है ?" मैंने कहा । मुझे उस स्पर्श में किसी सुन्दरी तरुणी के प्रथम कर-स्पर्श की मादक चेतना का भान नहीं हुआ था । मेरे इस प्रश्न का भीतरी अभिप्राय यही था ।

"क्या आपका मतलब है कि मेरे हाथ में जान ही नहीं है ?" हिमदा ने चंचल आक्षेप के स्वर में कहा। आपके हाथ की गरमाहट मुझसे अधिक है, इसीलिए आप ऐसा कह रहे हैं। हिम पवित्रता का प्रतीक है, इसलिये हिमदा का अर्थ है पवित्रता देने वाली, न कि बरफ़ या ठंडक देने वाली। मैं लोगों को पवित्रता देने वाली हूँ, क्यों न बहिन ?" हिमदा ने अंतिम बात लीला को सम्बोधित कर कही।

"यह तो वे लोग ही जानें जिन्हें आपने पवित्रता दी होगी। मैं तो अभी तक आपको रोटियाँ देने वाली और व्याख्यान देने वाली ही जानती हूँ।" लीला ने कहा।

"आप बहुत खरी बात कह लेती हैं और मेरी-आपकी खूब अच्छी पटेगी। आपकी मैंने बड़ी प्रशंसा सुनी है।"

हम अपने ज़ीने पर आ पहुँचे थे। हिमदा की उस बात से लीला को यथेष्ट संतोष हुआ जान पड़ा। हिमदा का हाथ पकड़े हुए वह उसे ऊपर ले आई। हम सभी सुखपूर्वक बैठ गये।

"आपकी उम्र तो मुझसे बहुत कम होगी।" मैंने नया प्रसंग उठाया।

"हो सकता है" हिमदा ने कहा, "लेकिन बहुत अधिक निश्चय के साथ आप ऐसा नहीं कह सकते।"

"नहीं कह सकते ? क्यों ? आप किसी भी दशा में पच्चीस से अधिक नहीं हो सकतीं।"

"नीति शास्त्र में मैंने पढ़ा है कि एक स्त्री को किसी पुरुष से उसकी पत्नी के सामने अपनी उम्र की बात नहीं बतानी चाहिए।" उसने नैतिक अड़चन उपस्थित की।

"लेकिन लीलाजी को आप साधारण पत्नियों में न गिनें" मैंने कहा, "आप की उम्र सोलह और छप्पन के बीच किसी भी गिनती की हो तो मुझे या उन्हें कोई आपत्ति न होगी।"

"इनकी उम्र अट्ठाईस साल की होगी।" लीला बोल उठी।

"बिलकुल ठीक" हिमदा ने कहा, "आपका कम-से-कम अनुमान सोलह और इनका अट्ठाईस, इन दोनों को जोड़ दीजिए, यही मेरी इस समय की उम्र है।

"चवालीस साल!" लीला ने विस्मय के स्वर में कहा, "हर्गिज़ नहीं। आप हँसी करती हैं।"

"इसी दिसम्बर में मेरा चवालीसवाँ वर्ष पूरा हो जायगा।" हिमदा ने सहज भाव से कहा।

इस पर अविश्वास हम नहीं कर सकते थे। नये युग की नारी के रूप और स्वास्थ्य की आदर्श प्रतिमा। उसके प्रति श्रद्धा और एक नये अनुराग की भावना से मेरा हृदय भर गया। कुछ क्षणों के लिये हम सब चुप रहे।

"जब आप सभा में बोल रही थीं उस समय मुझे आपको देखकर प्राचीन ग्रीक युग की प्रेम की देवी वीनस की याद आ गई थी।" मैंने कहा।

"सच!" हिमदा का मुख बाल-सुलभ उल्लास से खिल उठा, "मैं क्या सचमुच उस समय ग्रीक गाडेस वीनस जैसी लग रही थी? बचपन में मैंने वीनस की कहानियाँ पढ़ी थीं और उसी की जैसी बनने की विचित्र कल्पनाएँ मेरे मन में उठा करती थीं।"

हिमदा की इस शुभ सरलता पर मेरा हृदय उस की अर्चनामें एक खन और भीतर उतर गया।

"वीनस ने अवश्य ही आपको अपने रंग में रंग कर अपना रूप और चिर यौवन आपको प्रदान किया है। मुझे लगता है कि विशेष अवसरों पर उसकी छाया का आवेश आपके शरीर में होता है और तब आप प्रेम की देवी का प्रभाव अपने चारों ओर बिखेर पाती हैं। उस नये नगर की सम्भावनाएँ क्या-क्या हो सकती हैं, अब मैं देखने लगा हूँ।" कहते-कहते मैंने देखा, मेरी बात दूसरे प्रसंग की ओर मुड़ गई थी।

उसी समय हमारा भोजन आगया—गेहूँ का दलिया और आलू बैंगन का साग। हिमदा का हिस्सा भी लीला ने यहीं ले लिया। हम तीनों भोजन करने लगे।

"नये नगर के सिलसिले में आपने एक ऐसे नारी-वर्ग की बात कही थी जो अपने शरीर और रूप से पुरुषों को किन्हीं विशेष दिशाओं में प्रभावित करेगा। लेकिन वेंकटाचलम् ने, जहाँतक मुझे याद है, दूसरों को प्रभावित-प्रेरित करने को, चाहे वह पारस्परिक प्रेम और सहयोग के लिए ही क्यों न हो, समाज का एक मूर्खता-पूर्ण बलात्कार कहा था। आपकी और उनकी इन बातों में तो स्पष्ट विरोध दीखता है।" मैंने कहा।

"हो विरोध! नया नगर वैसा ही तो नहीं बनेगा जैसा वेंकटाचलम् बनायेंगे। यह तो वैसा ही होगा जैसा हम सब लोग मिलकर उसे बनायेंगे। सब का अपना-अपना दृष्टिकोण है और उसे उपयोग में लाने के लिए हम सभी स्वतंत्र हैं। मैं नहीं समझती कि प्रभावित और प्रेरित करने की क्रियाएँ बन्द करदेना मानव-समाज के लिए आवश्यक, वांछनीय या सम्भव भी है। फिर भी मेरा विचार है कि वेंकट दादा की

उस बात का ठीक वैसा ही अभिप्राय नहीं है जैसा आपने लगाया है। हमारी विभिन्नताओं में सामंजस्य का पूरा अवकाश है।" हिमदा ने स्पष्ट किया।

इसी समय अशोक ने हिमदाकी कटोरी का साग उठा कर आधा चटाई और आधा अपनी मा के प्लेट पर पलट लिया। बात यह थी कि उस प्लेट का साग बहुत थोड़ा रह गया था।

"आपने बराबर का हिस्सा लगा कर साग नहीं लिया था" हिमदा ने लीला को लक्ष्य कर कहा, "इसी कमी-बेशी को बच्चे ने पूरा कर दिया है। यह अपने नाम का सच्चा रहा तो इसका और मेरा काम बहुत कुछ एक-सा रहेगा।"

इस पर अशोक की शरारतों और साहसिकताओं की बातें चल पड़ी। भोजन के कुछ देर बाद हम हिमदा को उसके डेरे तक पहुँचा आये।

[१५]

अगले दिन सुबह जब मैं मंजनादि के लिए अपने समीपवर्ती घाट की सीढ़ियां पर उतरा तो दूर से ही सभा-स्थल पर शामियाने, फ़र्शों और क़नातों का आयोजन होता देखा। आज की सभा एक तरह से सार्वजनिक सभा होगी, इसलिए ऐसे प्रबन्ध पर मुझे आश्चर्य नहीं हुआ।

स्नानादि से जल्दी-जल्दी निबट कर मैं यमुनातट की राह से राजगुफा की ओर चला। राह में मैंने देखा, सभा का आयोजन काफ़ी समृद्ध और बड़े पैमाने पर हुआ था। तख्ते पर ग़लीचा और कालीन बिछा कर एक छोटा-सा सभा-मंच तैयार कर लिया गया था। कम-से-कम दो हज़ार व्यक्तियों के

बैठने योग्य स्थान को नीचे साफ़-सुथरे फ़र्शों और ऊपर एक नये शामियाने से घेर दिया गया था। सभा-मंच के पीछे, पश्चिम की ओर एक ऊँची कनात की दीवार खड़ी करके उधर की धूप से बचाव का प्रबन्ध कर लिया गया था। पीले वस्त्रों में लिपटे लगभग दो दर्जन गोल काष्ठ-खम्भों पर शामियाना टिका हुआ था। सभा-मंडप की बाँई ओर की अंतिम पांच-छह पंक्तियों से लगभग दो ढाई-सौ कुर्सियाँ बिछी थीं और सामने का बड़ा स्थान भूमि पर बैठने वालों के लिए था। फ़र्श और कुर्सियों में भी आगे और बग़ल का कुछ भाग अलग बैठने वाली महिलाओं के लिए सुरक्षित था। कैलास की मुख्य सड़क के राजगुफा वाले मोड़ से इस सभा-स्थल तक पहुँचने के लिए मार्ग के दोनों ओर रँगे हुए बाँस के डण्डे गाड़कर उनपर रंगीन कागज़ों की पत्तियाँ डोरों द्वारा सजाई जा रही थीं।

यह सब देखता मैं राजगुफा में पहुँचा। वेंकटाचलम् के पास राजा के अतिरिक्त और कोई नही था।

“तारकेश की बाजीगरी से आप अपने मन में कोई उलझनें न पैदा होने देंगे.” वेंकटाचलम् ने अपने हाथ की तसवीरों में से एक मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा, “उसने कल कैलास-वन की कुछ नन्हीं परियों का फ़ोटो खींचा है।”

मैंने फ़ोटो हाथ में लेकर देखा, करील मंडप के सहारे खड़ी हुई बालिका रेखा के दोनों बग़ल दो सुन्दर, पांच-छह वर्ष की दीखने वाली बालिकाएँ थीं। एक के कन्धे रेखा की एक बाँह के नीचे थे और दूसरी उसकी दूसरी बाँह के ऊपर झूलती हुई-सी बैठी थी। दोनों के कन्धो पर बाहों के पीछे दो-दो

पंख उगे हुए थे। दोनो के शरीर धड़ के नीचे एक हलके रंग के वस्त्र से ढके हुए दीख रहे थे। बाँह के ऊपर बैठी हुई बालिका विशेष नटखट जान पड़ती थी। उसने सिर पर नटखट तरीके से ही एक गांधी टोपी ओढ़ रखी थी। *

"यह फ़ोटो मेरे सामने ही ली गई थी लेकिन ये परियाँ मुझे उस समय नहीं दिखाई दीं। परियाँ आधुनिक युग की वास्तविक वस्तुएँ हैं, यह मैं आज ही जान रहा हूँ। मैंने आश्चर्यपूर्वक कहा।

"आधुनिक युग की अधिकांश वास्तविकताओं को आप अभी अवास्तविक ही जानते हैं। विज्ञान ने बताया है कि मनुष्य अभी अपनी आँखों से भौतिक संसार की समीपवर्ती वस्तुओं के भी केवल आठवें भाग को ही देख पाता है और शेष सात बटे आठ भाग उसे नहीं दीख पड़ता। इस पृथ्वी पर असंख्य और अधिकांश देहधारी जीव ऐसे हैं जिन्हें आप नहीं देखते। उनके बाह्य शरीर हमारी अपेक्षा कुछ सूक्ष्म, फिर भी भौतिक तत्व के ही बने हुये हैं। उनके फ़ोटोग्राफ़ कुछ एक्स्ट्रा सेंसिटिव प्लेटों पर उतारे जा सकते हैं, जैसा कि आप देख रहे हैं।" वेंकट ने कहा।

"तब परियों और देवों का अस्तित्व कल्पनामात्र नहीं है" मैंने उत्सुक होकर कहा, "मुझे इस सम्बन्ध में पूरी जानकारी की आवश्यता है। इन नन्हीं-नन्हीं परियों का भूमंडल के सामूहिक जीवन में क्या उपयोगी भाग हो सकता है?"

"तारकेश या फिर कोई जवान परी ही आपकी इन

---

* एडवर्ड गार्डनर की पुस्तक Fairies में भी ऐसी परियों के कैमरा द्वारा लिये हुए चित्र देखे जा सकते हैं। लेखक।

जिज्ञासाओं को अवसर आने पर सन्तुष्ट कर सकेगी" वेंकटाचलम् ने हँसते हुए कहा, "नये नगर के निर्माण में ऐसे अवसरों की आपको कमी न रहेगी। अभी तो हमें यह देखना है कि भूमंडल के सामूहिक जीवन में इन परियों का नहीं, हमारा-आपका क्या उपयोगी भाग हो सकता है।"

मैं चुप हो गया। नये नगर का यह सारा विधान एक अमानवीय या अतिमानवीय योजना है। कोरे मनुष्य का इसमें कितना हाथ है? इसका निर्माण देवों, परियों, मंत्रों और चमत्कारों के ही सहारे होगा। मनुष्य अकेला अपने हाथ और हृदय से कुछ नहीं कर सकेगा। जिस मिर्माण में मानव-मस्तिष्क और हृदय की कृतियों और अनुभूतियों का ही पूरा आधिपत्य न होगा उसमें मेरी कहाँ तक दिलचस्पी हो सकती है? यह सब अलादीन के चिराग़ का कौतुक होगा, जो किसी जादू की दियासलाई से जल उठेगा और न जाने कब एकदम जादू के ही किसी झोंके से बुझ भी जायगा! ऐसे निर्माण का अस्तित्व ही क्या होगा; और उस नगर के निर्माण से पहले मेरे इस 'जादुई' उपन्यास का भी साहित्य में क्या मूल्य होगा! मेरा हृदय एक दुःसह उदासी के बोझ से दबने लगा।

मैं काफ़ी देर तक इन्हीं विचारों में डूबा रहा। सावधान होने पर देखा, वेंकटाचलम् की आँखें मेरे माथे पर न जाने कब की टिकी हुई थीं। मुझे सावधान देख कर उसने कहा:

"मैंने आपसे कहा था कि आप तारकेश की बाजीगरी से अपने मन में कोई उलझनें न पैदा होने देंगे। हमारी योजनाओं में मानवीय साधनों से बाहर की कोई बात नहीं है। जब मनुष्य अपनी सहज प्रवृत्तियों में जाग कर बरतना प्रारम्भ

करता है तब देवों और प्रकृति की अन्य योनियों का सहयोग उसे मार्ग में स्वयं ही प्राप्त होने लगता है। ये उसके स्वाभाविक विकास-पथ की ही वस्तुयें हैं। मनुष्य प्रकृति की सम्पूर्ण शक्तियों का पुंज है। जब उसकी सुमति जागती है तब उसकी ये शक्तियाँ भी जागने लगती हैं और तब वह अपने कार्यों में देवों और प्रकृति की अन्य शक्तियों के सहयोग पर स्वभावतया शासन करने लगता है। नये नगर और उसके जीवन का निर्माण हम-आप और हमारे भाई बन्धु ही करेंगे, देव और परियाँ नहीं। उनका सहयोग हमें हमारे अधिकार के बल पर ही मिलेगा। आपके मस्तिष्क में इस समय उठी हुई चिन्ता को मैंने पढ़ लिया है; यह किसी देव-बल या परी-बल से नहीं, बल्कि एक अति सहज मानव-अनुभूति के द्वारा ही। यह सब सर्वथा मानवीय है।"

वेंकटाचलम् के इन शब्दों से मेरे हृदय का बोझ बहुत कुछ हलका हो गया। मैंने कहा :

"लेकिन वैसी मानवीय अनुभूतियों और शक्तियों को जगाने के लिये क्या हमें कठिन साधनायें न करनी पड़ेंगी? और क्या उन साधनाओं में हमें अनेक बार विफलता की पीड़ा न सहनी पड़ेगी?"

"बिलकुल नहीं, कभी नहीं।" वेंकटाचलम् ने तत्पर स्वर में उत्तर दिया, "शक्तियों और अनुभूतियों को जगाने के लिये अब तक लोग तरह-तरह की साधनायें अवश्य करते आये हैं पर अब वे बीते युग की बातें हो गई हैं। नये युग में हमें इनके लिये किसी प्रकार की तनिक भी साधना नहीं करनी होगी। हमें केवल अपने हृदय और मस्तिष्क के उस पृष्ठ-द्वार को

खुला रखना पड़ेगा जिसे बन्द कर लेने के कारण हमारे सामने आई हुई सभी वस्तुयें हमारे भीतर क़ैद होकर सड़ने लगती हैं और हम उन्हें पकड़ रखने के आदी हो जाते हैं।"

"तब क्या उस पृष्ठद्वार को खोलना ही एक साधना नहीं है?" मैने पूछा।

"पृष्ठद्वार को खोलना नहीं, उसे बन्द करना ही एक साधना है और सबसे बडी दुर्भाग्यपूर्ण और कष्टप्रद साधना है। पृष्ठद्वार को खोलने की नहीं, उसे खुला रखने की आवश्यकता है, वह स्वभावतया स्वयं ही खुला हुआ है। उसे खुला रखना संसार का सबसे सुगम कार्य है।" वेंकटाचलम् ने कहा।

"मैं इसे समझना चाहता हूँ।" मैंने अपनी बौद्धिक विवशता जताई।

"आप इसे स्वयं ही धीरे-धीरे समझ जायँगे। मेरे कुछ कहने की आगे आवश्यकता नहीं है।"

"जब हमें अपने हृदय और मस्तिष्क में किसी वस्तु को रोकना ही नहीं है तो जीवन और समाज के लिए इन नई-नई योजनाओं का स्थान कहाँ रह जाता है?" मैंने पूछा।

"इनका स्थान आप स्वयं ही ढूँढ़ लेंगे" वेंकट ने कहा, इतना आप अभी भी देख सकते हैं कि किसी भी रुचिकर कार्य का करना किसी वस्तु को अपने भीतर रोकना नहीं, बल्कि उसे मुख-द्वार से पृष्ठ-द्वार की ओर ले जाना ही है। इस स्वाभाविक ग्रहण, संचालन और निष्कासन का नाम ही जीवन का प्रवाहशाश्वत और निरन्तर जीवन का प्रवाह है। इस ग्रहण, संचालन और निष्कासन में कहीं पर भी रुकावट डालना ही जीवन का अवरोध और मृत्यु है।"

"यह एक मनन योग्य-दार्शनिक तथ्य जान पड़ता है। लेकिन आज आप साधना के विरोध में इतनी बात कह रहे हैं और पहले आपने साधना के पक्ष में बहुत कुछ कहा था। इन दोनों में बहुत विरोधाभास जान पड़ता है।" मैंने कहा।

"इसमें कुछ दोष हमारी भाषा का है" वेंकट ने कहा, "एक ही बात जब दो अलग-अलग कोनों से कही जाती है तो वह एक-दूसरी के विपरीत जान पड़ती है। आप को इस छत के बीच में खड़ा करके यदि में पश्चिम के कोने पर भेजना चाहूँगा तो, यदि मैं स्वयं पश्चिम के कोने में हूँगा तो 'आइये' शब्द का प्रयोग करूँगा और यदि पूर्व के कोने में हूँगा तो जाइये शब्द का प्रयोग करूँगा। इन दोनों पारस्परिक विरोध 'आइये' और 'जाइये' शब्दों का अर्थ एक ही होगा। नीचे से जो साधना है, ऊपर से वही अ-साधना है; नीचे से जो कर्म है, ऊपर से वही अ-कर्म है।"

वेंकट की इस विचार-धारा की तह तक पहुँचने का प्रयत्न करता हुआ मैं मौन हो गया। इस कर्मयोगी की ज्ञान-गरिमा कुछ क्षणों के लिए और ऊपर छा गई।

"नये नगर का निर्माण-कार्य जो हम करने जा रहे हैं वह इतना सरल और स्वाभाविक है कि उसमें वेंकटाचलम् के परोक्ष दर्शन, तारकेश के देव-सम्पर्क देवों और परियों के प्रकट या ज्ञात सहयोग आदिकी तनिक भी अनिवार्य आवश्यकता नहीं है। राजा की पैनी वाक-पटु, बुद्धि, हिमदा का मानवी आकर्षण, हरीश का प्रबन्ध-कौशल, रावी की सतर्क जिज्ञासा और सदाशयता और इन्हीं जैसे खुले हृदय वाले मानवों के विविध गुण मिल कर उस नये नगर का निर्माण बिना किसी

अमानवीय या अति-मानवीय चमत्कार के पूरी सुन्दरता के साथ कर सकते हैं।" वेंकटाचलम् ने प्रसंग बदला।

"लेकिन आपने कहा था कि नये नगर का निर्माण कुछ बड़े आन्तरिक परिवर्तनों का एक बहुत छोटा-सा बाह्य परिमाण ही होगा—। यदि वैसी बात है तो केवल राजा, हिमदा और रावो जैसों के हाथों उस नगर के निर्माण की कोई सम्भावना नहीं रह जाती। इसके निर्माण का श्रेय और उत्तरदायित्व तो उन शक्तियों या व्यक्तियों पर जाता है जो उन बड़े आन्तरिक परिवर्तनों का संचालन करती हैं। साधारण मनुष्य की हैसियत तो यहां पर नगण्य हो जाती है।" मैंने पूछा।

"साधारण मनुष्य की सबसे सहज और समीपकी अवस्थाएँ—उसकी सरल, निष्कृष्ट विचारशीलता, उसका सहज मानवीय आकर्षण उसकी निर्बन्ध सदाशयता ये ही—उसकी परोक्ष दर्शन और देव सम्पर्क आदि से कहीं ऊँची क्षमताएँ हैं। जहाँ ये हैं वहाँ वे दूसरी आवश्यकतानुसार अपने आप पीछे लगी आती हैं। मनुष्य की परम सरलता ही उसकी परम बुद्धिमत्ता, परम सम्पन्नता और परम शक्तिमत्ता है।"

कुछ क्षण के लिए चुप होकर वेंकट ने फिर कहा:

"पहले मैंने कहा था कि आपके सहयोग से मैं एक बहुत बड़े कार्य—नये नगर के निर्माण कार्य को हाथ में उठाना चाहता हूँ। वह एक दृष्टिकोण से कही हुई बात थी। वास्तव में कोई भी, कभी भी किसी नये काम को उठाने का दावा नहीं कर सकता। प्रत्येक प्रारम्भ किसी पहले से प्रारम्भ किये हुए कार्य का एक मध्य-बिन्दु ही हो सकता है। जो काम हम कर रहे हैं उसका प्रारम्भ, एक मोटे ही हिसाब से, मेरे और

आपके जन्म से बहुत पहले, आज से बहत्तर वर्ष पहले हो चुका था।"

"हमारी आँखों में जितना दीखता है, उससे कहीं अधिक विस्तार हमारे पल-पल के जीवन का है, मुझे अब लगने लगा है।" मैंने विचारस्थ होकर कहा।

"आप आन्तरिक सचाइयों की ओर आ रहे हैं" वेंकट ने प्रोत्साहन के स्वर में कहा, "हमारा काम कर्मनिष्ठ होने का है। किसमें किसका श्रेय है और किसका उत्तरदायित्व है, यह सब व्यर्थ का चिन्तन है। जीवन और जीवन का रस कर्म करने में है और वह सदैव तात्कालिक है। श्रेयों, उत्तरदायित्वों और अप्राप्त फलों की कल्पनायें उस रस की बाधक ही हैं। हम जो काम कर रहे हैं वह हमारे लिये विशेष रुचिकर है और यह रुचिकरता ही उसका वास्तविक पुरस्कार है। आज तीसरे पहर की सार्वजनिक सभा के लिये आप तैयार हैं?"

"पूरी उत्सुकता के साथ।" मैंने वेंकटाचलम् के अभीष्ट स्वर में उत्तर दिया।

"उसके पहले कुछ समय आपको अपने मेहमानों को देना पड़ेगा। तब तक मैं भी अपनी कुछ तैयारी कर लूँगा।" वेंकटाचलम् ने उठते हुये कहा।

मैं उससे विदा होकर अपने कमरे की ओर लौटा। इक्के-दुक्के ताँगों और साइकिलों का आना प्रारम्भ हो गया था। नौ बज गये थे। कमरे पर हमारा खाना पहुँच गया था। गेहूँ और बाजरे की पूड़ियाँ और आलू-गोभी का साग। हमने भोजन किया।

ग्यारह बजे के लगभग मेहमानों का एक दल हमारे घर

आ पहुँचा। उनमें हमारे अधिकांश साहित्यिक और अनेक अन्य परिचित मित्र भी थे। कुछ देर बाद एक दूसरा दल आया—भाटिया दम्पति, डाक्टर रमाशंकर, वकील दिनेश-चंद्र, राधाकान्त जौहरी, बूरे वाले मित्र, इन्हीं के परिवारों के अनेक व्यक्ति इस दल में थे।

"आप लोग तीन दिन से गुप-चुप मीटिंगें कर रहे हैं, हमें इसकी ख़बर भी नहीं दी।" कुमारी प्रभा जौहरी ने आते ही उलाहना दिया।

"यह आपकी ही नहीं बल्कि हम सब लोगों की शिकायत है।" मेरे एक लेखक मित्र ने प्रभा का समर्थन किया।

"बात यह है कि कल तक हम आप लोगों के लिये चाय का प्रबन्ध नहीं कर पाये थे।" मैंने राजा का स्वर सुना। देखा छत के एक कोने में वह बड़ी बरोसी में कोयले डाल कर उन्हें दहकाने में लग रहा था। एक बड़ी पतीली में छनी हुई तैयार चाय उसके पास रक्खी थी और उसे गरम रखने के लिये ही यह आग सुलगाई जा रही थी। मेरे घर आने वाले मित्र-मेहमानों के लिये यह चाय और बाजरे तथा गेहूँ की मीठी और नमकीन टिकियाँ शिविर के भोजनालय से ही तैयार होकर आई थीं।

मित्रों और अभ्यागतों के साथ चाय और वार्ता-सत्कार में हम व्यस्त हो गये।

[१६]

दो बजे तक सभा का पंडाल लगभग पूरा भर गया। ठीक दो बजे उस सूने मंच पर रंजन ने पदार्पण किया। उसके हाथ में एक छोटे आकार की वीणा थी। वीणा के तारों की

एक अपूर्वश्रुतमोहक रागमयी झनकार सभा के वातावरण में समा गई। एक अनुपम तन्मयता और एकाग्रता की दशा उस वादन ने सभा में मानो बरबस प्रस्तुत कर दी।

रंजन का कार्य समाप्त हुआ और हिमदा की मूर्ति मंच पर अवतरित हुई।

"मित्रो!" हिमदा का कंठस्वर सभा में मुखरित हुआ। सबकी आँखें उस ओर उठ गईं और इसी दशा में लगभग एक मिनट तक स्तब्धता छाई रही।

"मुझसे पहले इस मंच पर जिस नवयुवक ने आपको वीणा का राग सुनाया था उसका नाम है रंजन, और मेरा नाम है हिमदा।" हिमदा ने रंजन के और अपने इतने परिचय के साथ अपना भाषण प्रारम्भ किया, "यहाँ उपस्थित हम सभी लोग युवा हैं। आपमें से जो लोग अपने आपको युवावस्था के पार पहुँचा हुआ मानते हैं, वे कुछ देर के लिए अपने आपको मेरी आँखों से देखने का प्रयत्न करें। इस सारी सभा में मुझे एक भी पुरुष या स्त्री का चेहरा ऐसा नहीं दिखाई देता जो युवा न हो।......

"आप सब युवा है; कम-से-कम आपमें से अधिकांश ऐसे ही हैं। जीवन के सुखों का यौवन से ही सबसे बड़ा सम्बन्ध है—बल्कि यौवन ही जीवन है। यौवन के सुखों और यौवन की स्फूर्तियों से आप सभी परिचित हैं। आप उन्हें पसंद करते हैं; कम-से-कम उनके सतोगुणी और मेधावी रूप में उन्हें पसंद करते हैं। है न यही बात?......

"लेकिन बीच में आपकी कुछ समस्याएँ हैं—धन की, स्वास्थ्य की, श्रम और विश्राम की, सामाजिक सम्बन्धों और

संघर्षों की, प्रेम, सौन्दर्य और व्यक्तिगत विकास की समस्याएँ हैं। इन समस्याओं ने आपके जीवन को बहुत कुछ ढक लिया है। इन समस्याओं के विविध हल समय-समय पर चिन्तकों ने समाज के सामने रक्खे हैं, और वैसा ही एक हल हम भी आपके सामने रख रहे हैं। हर नये हल की एक अपनी विशेषता होती है और हमारे हल की विशेषता उसकी सर-लता और रुचिकरता में ही है।......

"आप लोग कल के पत्रों में छपे हुए विज्ञापन को पढ़कर यहाँ आये हैं। जैसा आपने उसमें पढ़ा, हम एक नया नगर बसाने जा रहे हैं और आपमें से जो लोग उस नगर में बसना स्वीकार करें उन सब के लिए उस नगर में स्थान सुरक्षित है। वास्तव में आप सबके लिए यथेष्ट से भी अधिक स्थान उस नगर में है। भोजन, वस्त्र और घर की समस्या उस नगर में किसी के भी सामने नहीं होगी। किसी भी अप्रिय श्रम के लिए वहाँ कोई बाध्य नहीं होगा। लेकिन एक नई समस्या वहाँ आपके सामने होगी। वहाँ के किसी भी निवासी की किसी भी माँग का कुछ-न-कुछ उत्तर, हाँ से लेकर नहीं तक आपको अवश्य देना होगा और आपका वह उत्तर कभी-भी कुटिल या कपट-पूर्ण नहीं होगा। यह एक कठिन बात है। इसका अर्थ यह है कि वहाँ सभी को अपना मनचाहा प्रस्ताव किसी के भी सामने खोलकर रखदेने की स्वतन्त्रता होगी और उस पर कोई भी व्यक्ति असहिष्णुतापूर्ण उत्तर नहीं दे सकेगा। आप अनुमान लगायेंगे कि ऐसी दशा में वहाँ का समाज मनचाहे प्रेम निवे-दन, मुक्त और अमर्यादित प्रेम और वासना के लिए खुल जायगा, क्योंकि लोगों को अपनी छिपी-दबी वासनाओं को

प्रकट करने की छूट मिल जायगी और इससे उत्पन्न होने वाले प्रलोभनों का वेग असाध्य हो जायगा। आपकी राय में उस नगर का वातावरण ऐसा ही होगा न?......

हिमदा ने कुछ क्षण रुक कर समर्थन या प्रतिवाद की प्रतीक्षा की, फिर बोली:

"आप कुछ कहना नहीं चाहते। अच्छी बात है। फिर भी आप उस नगर के प्रयोग को उत्सुकता के साथ देखना चाहते हैं। आपकी आँखें कह रही हैं। आपके अनुमान में, और यदि आप इन बातों की चर्चा अपने बड़े-बूढ़ों से करेंगे तो उनकी भी राय में, वह नगर अधर्म और विलासिता का नगर होगा। लेकिन ये अधर्म और विलासता क्या वस्तुयें हैं? क्या आप इन्हें जानते हैं? इनके विपरीत धर्म और वैराग्य को क्या आप कुछ समझते हैं?......

"लेकिन मुझे इन प्रश्नों के उत्तर आपसे नहीं चाहियें। मुझे आज आपके सामने केवल एक घोषणा करनी है। नये नगर का निर्माण-कार्य प्रारम्भ हो गया है। यहाँ से लगभग सौ मील उत्तर-पश्चिम की ओर इसी यमुना के तट पर छह वर्गमील भूमि इस नगर के लिए खरीद ली गई है। आवश्यकतानुसार उस भूमि के आगे भी हमारा अधिकार बढ़ता जायगा। अगले पच्चीस वर्ष के भीतर हमारा अनुमान है वह नगर बस जायगा। यह हमारा अनुमान है। पच्चीस की जगह उसमें ढाई सौ वर्ष भी लग जायँ तो कोई आश्चर्य की, या आरम्भ की हुई योजना के विरुद्ध बात नहीं होगी। लेकिन हमें आशा है कि उसकी बस्ती का आरम्भ हम सम्भवतः इन्हीं पाँच वर्षों के भीतर ही देख सकेंगे। उस नगर के की-

वर्ग का कुछ काम मेरे ज़िम्मे है। वहाँ की स्त्रियाँ स्वस्थ और सुन्दर होंगी, या यों कहिए कि वहाँ का स्त्री-वर्ग स्वास्थ्य और सौन्दर्य प्रधान होगा। वहाँ पति का पत्नी पर, पत्नी का पति पर, पिता का पुत्र या पुत्री पर, किसी का किसी पर भी कोई अधिकार न होगा। प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि और धारणा के अनुसार रहने और बरतने के लिए स्वतन्त्र होगा। संयम, साधना और सदाचार का, अथवा मुक्त स्वच्छन्द विहार का, जो व्यक्ति जैसा भी चाहे वैसा जीवन बिताने के लिए स्वतन्त्र होगा। मैं आप सबको—यहाँ उपस्थित आप लोग पुरुष ही अधिक हैं; आप में कठिनाई से पचास या सौ स्त्रियाँ यहाँ होंगी—मैं आपको उस नगर के निवास का निमंत्रण देती हूँ। आप अपनी पत्नियों, प्रेयसियों, बहिनों, पुत्रियों और इच्छानुसार परिवारों और प्रियजनों को लेकर वहाँ आ सकते हैं। आप सभी निस्संकोच वहाँ आ सकते हैं। वहाँ के वातावरण और जलवायु में इतनी विशेषता है कि आपकी जिन महिलाओं के स्वास्थ्य या सौन्दर्य में कुछ कमी होगी वह सहज ही वहाँ पूरी हो जायगी। इसके अतिरिक्त इन बातों के लिए वहाँ के महिला-वर्ग का एक अलग विभाग ही है जो यथा समय विशेष साधनों से सम्पन्न होगा।......

"इतनी जानकारी को लेकर आपमें से जो लोग अकेले या अपने कुछ परिवार को लेकर उस नगर में बसना पसंद करें वे अपने नाम और पते हमें दे देंगे। इसका विवरण अभी आपको इस मंच के अगले वक्ता से ज्ञात होगा। अपने विभाग की बात मैं कह चुकी हूँ। आपमें से किसी को उस सम्बन्ध में कुछ कहना-पूछना है?"

सभा के बीच में एक व्यक्ति उठ खड़ा हुआ और बोला :

"मैं उस नगर में रहना पसंद करूँगा। मैं विवाहित हूँ, पर मेरी पत्नी कुरूप है और मुझे उससे संतोष नहीं है। क्या उस नगर में मुझे एक अच्छी पत्नी या प्रेयसी मिल जायगी?"

"क्यों नहीं! लेकिन शायद आपको अपनी प्रेयसी कुछ अधिक धैर्य और परिश्रम के साथ, सम्भवतः कुछ दिन तक अपने चेहरे को घूँघट में रख कर, खोजनी पड़ेगी।" हिमदा ने उत्तर दिया।

सामूहिक हँसी का एक गम्भीर घोष सभा में गूँज गया। लोगों ने देखा, प्रश्नकर्त्ता महोदय स्वयं भी यथेष्ट कुरूप थे।

"उस नगर की आर्थिक व्यवस्था मुझे आकर्षक जान पड़ती है" कुर्सियों की प्रथम पंक्ति में बैठे एक पैंटधारी युवक ने कहा, "लेकिन आचारिक व्यवस्था पर मुझे बहुत से सन्देह हैं। फिर भी मैं एक लेखक और पत्रकार होने के नाते इस प्रयोग को देखना पसंद करूँगा। वहाँ रहते हुए क्या मैं और मेरी पत्नी अपना जीवन संयम-सदाचार पूर्वक सुरक्षित रख सकेंगे?"

"अवश्य सुरक्षित रख सकेंगे। मैं नहीं समझती कि उसमें बाधा पहुँचाने वाली वहाँ कोई बात हो सकती है, यदि आप अपनी इस धारणा और आत्म-विश्वास को हाथ से न जाने दें।"

"आपकी बातों ने मेरे मन में एक विचित्र उथल-पुथल पैदा करदी है। मैं व्यक्तिगत रूप में आप से कुछ बात करना चाहता हूँ।" मंच के समीप बैठे एक अन्य व्यक्ति ने कहा।

"फ़ालेन इन लव" मैंने सुना हिमदा अपने होटों के बीच भुनभुनाई और फिर प्रकट स्वर में बोली :

"आप कह सकते हैं और अगर यहाँ न कह सकें तो इस सभा के बाद उस छतरी में आकर मुझसे मिल सकते हैं।"

"मैं अलग में ही आपसे मिलूँगा" कह कर वह चुप हो गया।

एक अन्य सज्जन ने अपनी कुर्सी के सहारे खड़े होकर कहा :

"मैं नहीं समझ पाया कि इस नये नगर की योजना की असलियत क्या है। और इसके पीछे कैसे लोगों का हाथ है। लेकिन इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि संसार में, और कम-से-कम ऋषियों के इस धर्म-प्राण देश भारत में जब तक धर्म का लेशमात्र भी शेष है तब तक यहाँ ऐसी कोई योजना नहीं चल सकेगी। मानव-समाज को पतन की ओर ले जाने वाली इससे अधिक भयंकर कोई और योजना नहीं हो सकती; और ऐसे पतन की ओर भारत-वासियों को जाने देना ईश्वर को कभी स्वीकार नहीं हो सकता।"

"वी शैल कम्पेयर नोट्स फ्रॉम टाइम टु टाइम" हिंमदा ने कुछ धीमे शरारत भरे-से स्वर में उन्हें उत्तर दिया, जिसका अर्थ था कि वे दोनों ही आगे घटने वाली घटनाओं को देखते चलेंगे और तत्सम्बन्धी अपने-अपने लेखों का मिलान करते रहेंगे।

"कोई और प्रश्न ?" हिमदा ने सभा को सम्बोधित कर अपने हाथ की घड़ी देखते हुए कहा, "मेरे पास दो मिनट का समय और है।"

कुछ क्षण तक सभा में निस्तब्धता रही और उसके पश्चात् वह मंच से उतर गयी। वेंकटाचलम् ने मंच पर प्रवेश किया।

"मेरे प्यारे मित्रो !" उसका स्वर सभा में गूँज उठा, "मेरा नाम वेंकटाचलम् है और जैसा आप देख रहे हैं, मैं एक सन्यासी हूँ। साधु और सन्यासियों का समय आज के सभ्य, शिक्षित युग में उठता जा रहा है और जैसा कि आपने अभी पिछले वक्ता से सुना, स्वास्थ्य और सौन्दर्य प्रधान स्त्रियों का युग आ रहा है—

सभा में एक गम्भीर हास्य की ध्वनि गूँज गई।

"अभी आप इस बात को सुनकर हँसते हैं, लेकिन यदि सचमुच ऐसा होते आपको देखना पड़ा तो वह आपके लिए एक बड़ी चिन्ता की भी बात हो सकती है। कम-से-कम आप में से ऐसों के लिए जो साधु-सन्यासियों से, या साधुता और सन्यास के आदर्शों से सहानुभूति रखते हैं, वह चिन्ता का ही विषय होगा। मैं एक साधु हूँ, लेकिन आये हुए समय की प्रेरणाओं को अपनी साधुता के भी ऊपर स्वीकार करने की बुद्धिमत्ता मैंने की है, जिस नये नगर के निर्माण की बात आप सुन रहे हैं उसकी योजना का जन्मदाता और संयोजक मैं ही हूँ। अब मैं किस प्रकार का साधु हूँ, अपने-अपने लिए इसके निर्णय की पूरी स्वतन्त्रता मैं आपको देता हूँ। मेरे और मेरी योजना के बारे में आप जैसा चाहें सोचें-समझें और चर्चा करें; इतना अनुरोध अवश्य करना चाहता हूँ कि अपने फ़ैसले में उतावली से काम न लें।......

"नये नगर के सम्बन्ध में बहुत संक्षिप्त बातें ही इस सभा में बताई जा सकती हैं। इस नगर में अन्न, शाक, नमक, खाँड, तेल, ईंधन, जल, वस्त्र, रोशनी और रहने के लिए मकान की व्यवस्था स्वास्थ्य और सुविधा की आवश्यकतानुसार सब के

लिए निश्शुल्क रहेगी। नगर की कपड़ा-मिल में मोटे और बारीक चार-पाँच श्रेणियों के सफ़ेद सूती थान ही तैयार होंगे जिन्हें पहनने वाले अपनी इच्छानुसार विविध रँगों में रँग सकेंगे। रँग-साज़ी उस नगर की एक विशेष विकसित कला होगी। शीत से बचने के लिए इन कपड़ों के साथ कपास भी यथेष्ट मात्रा में मिल सकेगी। प्रारंभिक शिक्षा सबके लिए अनिवार्य होगी, लेकिन वह आज की पाठ्य शिक्षा से बहुत भिन्न और सुगम होगी। अधिक-से-अधिक पाँच वर्ष में यह शिक्षा पूरी हो जायगी। विविध कलाओं, उद्योगों और अनुसंधानों के शिक्षण और अन्वेषण के लिए अनेक संस्थायें नगर में होंगी। सात वर्ष से ऊपर आयु के प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रुचि और योग्यता का कोई-न-कोई कार्य अवश्य करना होगा और उसके ऐसे कार्य का लेखा उस कार्य के रूप के अनुसार प्रति दिन, प्रति सप्ताह, प्रति मास या प्रति वर्ष उसके वर्ग-अधिकारी के पास संग्रहीत होता रहेगा। सभी व्यक्तियों के ऐसे कार्यों का आर्थिक मूल्य प्रति वर्ष निकाला जायगा। जिनका काम दिये हुए माप से कम होगा, वे उस कमी को आगे पूरा करने का प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार तीन वर्ष तक जो व्यक्ति समाज का ऋणी रहा आयेगा, वह नगर के इन निश्शुल्क अधिकारों से वंचित हो जायगा और उसे सवाये या ड्योढ़े परिश्रम से अपने जीवन की आवश्यकताओं को खरीदना पड़ेगा! इस पर भी जो व्यक्ति अपने पोषण के लिए यथेष्ट वस्तुएँ नहीं कमा सकेगा और दुर्बलता एवं दरिद्रता के ग्रास में जाता हुआ दीख पड़ेगा उसे नगर से कुछ दूर, उसके सुधारक उप नगर में रक्खा जायगा। तीन वर्ष तक वहाँ भी अपना आवश्यक सुधार न कर पाने

पर उसे वहाँ के निवास से वंचित कर दिया जायगा और कुछ आवश्यक धन और साधन देकर कहीं भी जा बसने के लिए छोड़ दिया जायगा।

एक व्यक्ति ने इसी समय खड़े होकर प्रश्न किया :

"क्या उस नगर में लोगों के परिश्रमों का मूल्य आँकने में पक्षपात और अन्याय की सम्भावना न रहेगी? आप समझते हैं कि मूल्यांकन करने वाले अधिकारी विविध कामों के भाव निश्चित होने पर भी उनकी व्यक्तिगत नाप-तौल में गड़बड़ी न कर सकेंगे?"

"कर सकेंगे, लेकिन वैसा करने की उन्हें आवश्यकता और इच्छा न होगी। ऐसी साधुता और सच्चरित्रता अभी आपको असम्भव जान पड़ेगी, लेकिन वहाँ इसके लिए किसी प्रयत्नसाध्य साधुता और सच्चरित्रता की आवश्यकता न होगी। वहाँ की परिस्थितियाँ मनुष्य की उन सम्भावनाओं को प्रकट कर देंगी, जिनकी अभी आप सुगमतापूर्वक कल्पना नहीं कर सकते।"

"आपने कहा" एक दूसरे प्रश्नकर्त्ता ने पूछा, "कि उस नगर में सात वर्ष से ऊपर के प्रत्येक व्यक्ति को काम अवश्य करना होगा। बुढापे और दुर्बलता की किसी भी आयु में क्या उन्हें विश्राम का अवकाश नहीं मिलेगा? वृद्ध जनों के लिए छुट्टी और विश्राम की व्यवस्था तो सदा से सभी सभ्य समाजों में बराबर रही है।"

"लेकिन इस नये नगर में नहीं होगी। लोगों को जीवन के अंतिम दिनों तक काम करना पड़ेगा। रोग और कष्ट के अवसरों पर उपचार और विश्राम की व्यवस्था सबके लिए

रहेगी। यह सब कब तक और कैसे सम्भव होगा, इसके विवरण में जाने का अवकाश यहाँ इस सभा में नहीं है। यहाँ तो केवल कुछ मोटी-मोटी बातों का उल्लेख ही किया जा सकता है।......

"लेकिन एक बहुत बड़े प्रश्न का उत्तर दिये बिना आप आगे बढ़ ही नहीं सकते" एक तीसरे व्यक्ति ने उठ कर कहा, "जब सभी लोग अपनी-अपनी रुचि और योग्यता का ही काम करेंगे तो यह बहुत सम्भव है कि कुछ मोटे और श्रम-साध्य लेकिन जीवन के लिए बहुत आवश्यक कामों के लिए बहुत कम लोग तैयार हों और दूसरे मनोरंजक, कलात्मक लेकिन कम उपयोगी कामों के करने वालों की अधिकता हो जाय। मिसाल के तौर पर क्या इस बात का पूरा खतरा नहीं है कि उस नगर में खेती करने और मकान बनाने वाले लोग बहुत कम निकलें और कविता, चित्रकारी और नृत्य-संगीत करने वाले ही अधिक हो जायँ?"

"ऐसा कोई खतरा कभी भी किसी ऐसी स्वतंत्रता वाले समाज में नहीं हो सकता। सारे मानव-समाज में, और उसके किसी भी स्थानीय समाज में सभी मनुष्यों की वास्तविक रुचियाँ और योग्यताएँ एक दूसरे के साथ इतनी तुली हुई होती हैं कि वे सब मिलकर पारस्परिक सुख-सुविधा के बहुत सामंजस्यपूर्ण कार्य ही कर सकते हैं। जितने मनुष्य संसार या किसी सह-निवासी समाज में उत्पन्न होते हैं उनकी रुचियाँ और योग्यताएँ एक दूसरे की पूरक ही होती हैं। ईश्वर नाम की जो मशीन उन्हें ढाल-ढाल कर इस दुनिया में भेजती है, वह इस सम्बन्ध में बहुत नपी-तुली है।......

इस पर हँसी की एक मंद गूँज सभा में फैल गई।

"हमारे गायक कलाकार रंजन ने, जिसका वीणा-वाद्य आपने अभी सुना था, और उसका संगीत फिर इस सभा के अंत में सुनेंगे, हमें एकबार बताया था कि यदि संगीत की क्षमता रखने वाले तीन सच्चे कलाकार कहीं एकत्र हो जायँ और उनमें से एक के होटों से कोई संगीत फूट पड़े तो दूसरा भी गाने नहीं लगेगा बल्कि उस संगीत पर किसी वाद्य-यंत्र को मुखरित कर देगा और तीसरा उसीकी गति पर नृत्य कर उठेगा। संसार में किसी के अनुकरण-अनुगमन के लिए नहीं, सभी व्यक्ति सहगमन के लिए बनाये गये हैं। संक्षेप में, अगर इससे आपकी उलझन कुछ दूर हो सके तो इतना मैं और कह सकता हूँ कि उस नगर में बहुत कम लोग केवल कृषक या राज-मज़दूर अथवा केवल कलाकार होंगे, अधिकांश लोग तो कला-प्रधान कृषक-मज़दूर भी कृषि-श्रम-प्रधान कलाकार ही होंगे।

"उस नये नगर में विवाह की व्यवस्था क्या होगी?" किसी कोने से एक और प्रश्न आया।

"यह प्रश्न आपको मुझसे पहले के वक्ता से पूछना चाहिए था" वेंकटाचलम् ने कहा, "मैं समझता हूँ कि आगे और भी प्रश्नों के उत्तर देने के पहले मुझे अपनी मुख्य बात पूरी कर देनी चाहिए। उस नये नगर में निवास आप में से प्रत्येक व्यक्ति के लिए खुला होगा। जो लोग उसमें निवास करना चाहें उन्हें कुछ छपे हुए प्रश्नों के उत्तर भरकर अपना-आवेदन-पत्र देना होगा। यह आवेदन-पत्र आपको अभी सभा की समाप्ति पर या कभी भी डाक द्वारा प्राप्त हो सकेगा। जैसा

कि आप इस आवेदन-पत्र में देखेंगे, प्रार्थी को केवल एक शर्त अनिवार्य रूप में माननी होगी और वह यह कि वह उस नगर में अपनी सीमा के बाहर किसी भी दूसरे व्यक्ति की रुचियों और कार्यों में बाधक नहीं होगा, और इस अभिप्राय के लिए उसके परिवार और आश्रय का भी प्रत्येक व्यक्ति उसकी सीमा से बाहर माना जायगा। इस वचन का उल्लंघन करने पर आप तुरंत ही उस नगर में निवास का अधिकार खो बैठेंगे। नये नगर में निवास के प्रत्येक प्रार्थी को उसमें स्थान मिलेगा; यह हो सकता है कि कुछ लोगों को इसके लिए कुछ कम या अधिक समय तक प्रतीक्षा करनी पड़े। वह नगर कब तक बनेगा और आप कब उसमें आने का निमंत्रण पायेंगे, यह मैं अभी नहीं कह सकता, लेकिन अगले ही वर्ष आप इसका कुछ आशाजनक समाचार अवश्य सुन सकेंगे। आप में से जो लोग इस स्थिति में हैं कि अपने लिए एक मकान उस नगर में अपने खर्च से बनवा सकें, पर उससे भी अधिक कुछ और योग अपने धन का उस नगर की योजना में दे सकें वे ऐसा करने के लिए स्वतंत्र होंगे और इसके बदले उन का अधिकार होगा कि वे बाहर के समाज में अपनी इच्छानुसार जिसे भी चाहें उतने मूल्य की सामग्री यहाँ से भेज सकेंगे। दूसरे शब्दों में बाहर से आई हुई सम्पत्ति को यह नगर एक ऐसी पूँजी के रूप में स्वीकार करेगा जो उसके बचे हुए अतिरिक्त उत्पादन में से लौटाई जा सकेगी। उस नगर का निवासी इच्छानुसार बाहर के समाज में आने जाने और अपने पास बाहर से अपने स्वजनों को निमंत्रित करने के लिए भी स्वतंत्र होगा, पर इन सब का व्यय-भार उसे अपने अतिरिक्त श्रम या बाहर से लाई हुई सम्पत्ति के बल पर ही उठाना

होगा। एक निश्चित सीमा तक ऐसे आतिथ्य और व्यवहार का भार उस नगर की ओर से भी उठाया जाता रहेगा।...

"मैंने सम्भवतः इस समय के लिए आवश्यक सभी बातें कहदी हैं और यदि आपको कोई और विशेष बात नहीं पूछनी है तो मुझे अगली कार्यवाही के लिए यह स्थान अब छोड़ देना चाहिए।"

"एक प्रश्न का उत्तर देते जाइये" एक व्यक्ति ने खड़े हो कर कहा, "आपने कहा था कि जो लोग दिये हुए माप से कम काम करेंगे उन्हें उसकी कमी अगले वर्ष में पूरी करनी होगी; पर जो लोग उस माप से अधिक काम कर जायेंगे उन्हें उसका क्या पुरस्कार मिलेगा, यह आपने नहीं बताया।"

"वे अपने अधिक उत्पादन या सृजन द्वारा सारे समाज का स्तर ऊँचा करेंगे, उसकी समृद्धि को बढ़ायेंगे। यही संतोष उनका पुरस्कार होगा। एक स्वल्प अनुपात में उनको अपने अतिरिक्त सृजन के बदले कभी-कभी कुछ अतिरिक्त विश्राम की भी सुविधाएँ मिल सकेंगी।"

वेंकटाचलम् के बाद विशालकाय बजरंग ने मंच पर पैर रक्खा। लगभग सात फ़ीट ऊँचे इस भीम-मानव की काया उसके अनुरूप ही चौड़ी और हृष्ट-पुष्ट थी। कुछ क्षणों के लिए दर्शकों की आँखें एकटक उसे देखती रह गईं।

"भाइयो और बहनो!" बजरंग ने कहना प्रारम्भ किया, "मैं जितनी बात अपने मुख से कहूँगा, शायद उससे बहुत अधिक अपने पूरे शरीर से कह सकूँगा। मेरी बात के मुक़ाबले आप मेरे डील-डौल की बात ही अधिक सोचेंगे, और यह इस बात का सबूत है कि देखी हुई बात का असर सुनी हुई

बात से अधिक होता है। इसलिए मैं मुँह से थोड़ी-सी ही बात आपके सामने कहूँगा।··· ··

"मैं कोई पहलवान नहीं हूँ और न पहलवानी की कोई क्रियाएँ ही मैंने की हैं। मेरा शरीर कुदरती तौर पर ही ऐसा है। मेरे माता-पिता आप लोगों जैसे ही साधारण मनुष्य थे, पिता की ऊँचाई पौने छह फ़ीट और मा की लगभग साढ़े पाँच थी। मेरे पिता का काम गद्दी पर बैठ कर लिखने-पढ़ने का ही था। वह कलकत्ते के एक सेठ के मुनीम थे। मेरा जन्म कलकत्ते के एक अस्पताल में हुआ था। जन्म के समय मेरा वज़न आठ सेर था, और ऐसे माता-पिता से ऐसे पुत्र का जन्म बहुत दिनों तक कलकत्ते के डाक्टरों के लिए एक पहेली बना रहा था। मैं उन सब बातों के विस्तार में नहीं जाऊँगा। मेरी उम्र अभी सिर्फ़ अड़तालीस साल की है। मेरी पत्नी है और छह बच्चे हैं। मैं तीन मन का बोझ अपने कंधों पर लेकर आसानी से चालीस मील एक दिन में चल सकता हूँ और इस सम्बन्ध में आप लोगों के लिए आश्चर्य की बात यह है कि मैं दिन-रात में सिर्फ़ एक बार लगभग दो सेर अन्न का भोजन करता हूँ। यही मेरी स्वाभाविक ख़ूराक है।

"हम लोगों की एक छोटी-सी संस्था है जिसका नाम फिलहाल हमने मैत्री क्लब रख लिया है। इस मैत्री क्लब के नियम और उद्देश्य कुछ ऐसे हैं कि दुनिया के सोसाइटी में रहने वाले लगभग सभी तरह के लोग इसके मेम्बर हो सकते हैं। हमारे सामने इस समय का मुख्य काम एक नये नगर का बसाना है, और उस नगर में ऐसे नियमों और उपायों को बरतना है जिससे मनुष्य को अपने और अपनी सोसाइटी

के विकास का अधिक-से-अधिक अवसर मिले। हमारी एक बहिन ने अभी आपके सामने उस नये नगर की सोसाइटी की जो तस्वीर रक्खी थी वह बिलकुल ठीक होते हुए भी एक ऐसे पहलू से आपके सामने रक्खी गई थी जिससे आज-कल के ढंग पर सोचने वाले लोगों को बहुत ग़लतफ़हमी हो सकती है। उसकी बात सुन कर यहाँ पर अभी जिस भाई ने इस नये नगर पर बहुत बड़ा एतराज़ किया था, उनकी कठिनाई से मेरी पूरी हमदर्दी है। मेरी इस बहिन का बात करने का, ख़ास कर आज के नौजवानों के सामने बात करने का ढंग ऐसा ही है; और उसका कहना है कि बिना ऐसी ग़लतफ़हमी हुए वह बात उनके लिए इतनी दिलचस्प भी नहीं हो सकती। वह तसवीर को आपके सामने एक ऐसे रुख़ से रखती है कि तसवीर क़रीब-क़रीब बिलकुल ही न दिखाई दे। लेकिन इसमें मैं आपकी थोड़ी-सी मदद कर देना चाहता हूँ। हिमदा का और हमारे गुरु स्वामी वेंकटाचलम् का—वैसे यह स्वामी-जी अब मुझे भी कुछ-कुछ अपना गुरु मानने लगे हैं" (सभा में हँसी) "इन लोगों का कहना है कि हमारी सोसाइटी में आज कल सेक्स-स्टार्वेशन है। यानी सेक्स के मामले में लोगों को बड़ी अतृप्ति है। आप मेरे मुँह से अँगरेज़ी शब्दों पर ताज्जुब न करें। मैंने आज से चार साल पहले कलकत्ता यूनीवर्सिटी से बी. ए. कर लिया है।" (सभा में फिर हँसी) "मैं हँसी की नहीं, सच्ची बात कह रहा हूँ लेकिन आप लोग मुझे कोरा शरीर-पशु मानने से बाज़ नहीं आयेंगे" (फिर हँसी) "इसका कारण यह है कि आप जो देखेंगे उसे ही अधिक मानेंगे, और जो सुनेंगे उसकी उतनी परवाह न करेंगे। यह मनुष्य का स्वभाव है। ख़ैर। हिमदा का और इन

स्वामीजी का इस सेक्सुअल स्टार्वेशन से क्या मतलब है और इसका क्या इलाज वे समाज के सामने रखना चाहते हैं, यह खोल कर आपके सामने कभी नहीं बतायेंगे। वे समझते हैं कि बता देंगे तो इसका चार्म यानी आकर्षण ही जाता रहेगा। अगर इनकी यह बात खोल कर मैं आप के सामने कह दूँ तो इस सभा के बाद ही ये दोनों मेरी खबर लेने के लिए मुझ पर चढ़ आयेंगे" (हँसी) "लेकिन मेरा यह शरीर (भुजाएँ तान कर प्रदर्शनपूर्वक) जिसे आप देख रहे हैं उन्हें भी तो दिखाई देता है" (सभा में ज़ोर की हँसी) "इस लिए उन्हें मेरा भी कुछ डर होगा और मैं आपके सामने कुछ-न-कुछ बात कह ही जाऊँगा। मैं आपसे कहता हूँ कि सेक्स के मामले में लगी हुई रुकावटों का हट जाना तन्दुरुस्त सोसाइटी के लिए बहुत ज़रूरी है। लेकिन तन्दुरुस्त सोसाइटी का एक ज़रूरी लक्षण यह भी होगा कि उसमें मनुष्य की चमड़ी की भूख आज की जैसी न रह जायगी। आने वाली तन्दुरुस्त सोसाइटी में आज-कल की शारीरिक पवित्रता और ब्रह्मचर्य के ऊँचे-से-ऊँचे आदर्श अपने आप निभते चलेंगे। सेक्स के मामले में लगी हुई आज-कल की स्पेशल रुकावटें, जिन्हें आमतौर पर लाज, परदा, लिहाज़, धर्म और भलमन-साहत के नामों से पुकारा जाता है, किस तरह हटाई जा सकेंगी और उनके हटने से होने वाली ज़्यादतियों से कैसे बचाव हो सकेगा यह सब एक प्लेज़ेन्ट मिस्ट्री यानी दिलचस्प रहस्य के रूप में आपके सामने ज़ाहिर होगा। सेक्स के मामले में मेरे अपने अनुभव हैं और वे बहुत दिलचस्प और इतमी-नान दिलाने वाले हैं, पर उनके यहाँ बताने का मौका नहीं है। मैं समझता हूँ कि मैं नई सोसाइटी में होने वाले लोगों का

एक बिलकुल ठीक-ठाक नमूना हूँ, अलबत्ता मेरा बदन ज़रूर नाप-तोल में हिसाब से ज़्यादा बढ़ गया है।" (सभा में हँसी) "इसका मुझे कोई अफ़सोस तो नहीं, फिर भी यह कोई खुशी की बात नहीं है। मेरा शरीर एक एब्नारमैलिटी यानी हिन्दी में कहेंगे अस्वाभाविकता है। लेकिन इस एक छोटी-सी बात को छोड़ दीजिए तो समझदारी और भलमनसाहत के हिसाब से मैं ठीक वैसाही आदमी हूँ जैसा कि एक कदम आगे बढ़ी हुई सोसाइटी के आदमियों को होना पड़ेगा। (हँसी)

"अखीर में मैं फिर एक बार आपको याद दिलाता हूँ कि देखी हुई चीज़ के मुकाबले सुनी हुई बात कच्ची और कमज़ोर ही ठहरती है क्योंकि हम लोग अभी सुनी हुई बात को अपनी बहुत अधूरी और वह भी प्रेजुडिस्ड, यानी क्या कहेंगें, पक्ष-पात से भरी हुई बुद्धि से मतलब लगाने के आदी हैं। इसलिए आप नये नगर के बारे में तो कुछ सुन चुके हैं! उतने पर ही कोई पूरा या आख़री फैसला न करलें, बल्कि उसे देखते चलने के साथ-साथ ही अपनी राय बनाते चलने का इरादा रक्खें। यही ख़ास बात मुझे आपसे कहनी थी।......

"नये नगर के बनाने में मिट्टी और पत्थर ढोने का सबसे ज़्यादा काम मुझे ही करना पड़ेगा जब कि आप लोग उन पर नक्काशियाँ करने का आरामदेह काम करेंगे। यह मेरे बेहिसाब बढ़े हुए बदन का नामुराद इनाम होगा, और मेरी इस बेबसी से भी आप लोग कुछ नतीजे निकाल सकेंगे।"

हँसी और ताड़ियों की गड़गड़ाहट के बीच बजरंग ने मंच से प्रस्थान किया।

पीछे का परदा हट गया था और सूर्य की सुखद किरणें

सभासदों पर पड़ने लगी थीं। रंजन ने मंच पर दूसरी बार प्रवेश किया। उसके हाथ में एक इकतारा था। लगभग पंद्रह मिनट तक उसके सहज अलौकिक संगीत ने श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध रक्खा।

हिमदा ने मंच पर आकर श्रोताओं को धन्यवाद दिया और सभा-विसर्जन की घोषणा की।

सभास्थल से बाहर ले जाने वाले पूर्व और दक्षिण दिशा के दोनों मार्गों पर कुछ लोग नये नगर में प्रवेश के लिए आवेदन के छपे हुए पर्चे लिये उपस्थित थे। सुगमतापूर्वक ये पर्चे सभी के हाथों में पहुँच गये। आवेदन-पत्र की प्रश्नावली में ये बारह बातें पूछी गई थीं :

(१) नाम (२) सेक्स (पुरुष या स्त्री) (३) आयु (४) योग्यताएँ और विशेष योग्यता (५) रुचियाँ और विशेष रुचि (६) परिवार के सदस्यों का विवरण (७) इनमें से किन-किन को साथ लाना चाहते हैं (८) वर्तमान आय कितनी है और उसका साधन क्या है (९) संग्रहीत धन और सम्पत्ति (यदि कुछ हो) (१०) नया घर बनाने के लिए यदि पूरा या आंशिक कुछ धन लगा सकते हैं तो कितना (११) ऐसा ऋण (यदि कुछ हो) जिसे चुकाये बिना स्थान परिवर्तन न कर सकते हों (१२) पूरा पता।

इस प्रश्नावली के नीचे प्रार्थी की ओर से एक प्रतिज्ञा इन शब्दों में थी :

"नये नगर की पूरी स्थिति अपने लिए संतोषजनक रूप में जान लेने पर यदि यह मेरे लिए रुचिकर और सुविधाजनक हुई तो जब भी नगर के प्रबन्धक अपनी सुविधा से मुझे

वहाँ स्थान दे सकेंगे, मैं उसमें स्थायी रूप से निवास करना पसंद करूँगा। नये नगर में स्थान मिलने पर मैं अपनी सीमा के बाहर किसी भी दूसरे व्यक्ति की रुचियों और कार्यों में बाधक नहीं हूँगा, और इस अभिप्राय के लिए अपने परिवार और आश्रय के भी प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सीमा से बाहर, और इस प्रकार स्वतन्त्र मानूँगा।"

[१७]

सभास्थल से उठ कर मैं वेंकटाचलम् के पीछे-पीछे राज-गुफ़ा में पहुँचा। हरीश, हिमदा, बजरंग और दो-तीन व्यक्ति उसके साथ ही थे।

"आप इस समय प्रश्नों से भरे हुए आ रहे हैं और मैं उनका उत्तर देने के लिए बिलकुल तैयार हूँ। इस समय हमारे पास दूसरा कोई काम नहीं है।" सबके बैठते ही वेंकटाचलम् ने मुझे लक्ष्य कर कहा।

"निस्संदेह आज की कार्यवाही ने मेरी राह में बहुत-सी उलझनें खड़ी कर दी हैं। इस कार्य-क्रम का जो काम मैंने अपनी और आपकी इच्छा से अपने हाथ में लिया है, इन उलझनों के साफ़ हुए बिना उसका आगे बढ़ना असम्भव है।" मैंने कहा।

"मैं उन्हें साफ़ करने के लिए तैयार हूँ। आप एक हज़ार प्रश्न पूछिये।"

"पहली बात तो यह कि आपने नये नगर की व्यवस्था का जो चित्र दिया है वह एक ओर अपने आदर्श में समाज-वाद, साम्यवाद और कुछ लोगों के मनोनिष्ठ दैवी अराजक-वाद से भी आगे निकलता दीख पड़ता है; लेकिन दूसरी ओर

वह इतना असम्भव और अव्यावहारिक जान पड़ता है कि लोग आम तौर पर उस पर भरोसा करने का साहस नहीं कर सकते। जिस व्यवस्था में आप तीन वर्ष तक लोगों को मुफ़्त या उधार भोजन और कपड़ा देने जा रहे हैं, केवल इस आशा पर कि वे उतने का बदला ठीक-ठीक परिश्रम करके चुका देंगे, उस व्यवस्था को आप तभी हाथ में उठा सकते हैं जब कम-से-कम छह वर्ष तक इन सबको मुफ़्त खिलाने भर के लिए पूँजी आपके पास पहले से हो। और उसके आगे भी जाकर यह पूँजी कभी भी टूट सकती है। क्या इतनी पूँजी आपके पास है?" मैंने पूछा।

"आपने कई प्रश्न एक साथ पूछे हैं, इसलिए मैं पहले अंतिम का ही उत्तर दूँगा।" वेंकट ने कहा, "इस काम को प्रारम्भ करने के लिए हमारे पास भूमि के अतिरिक्त पंद्रह हज़ार रुपये हैं। जब हम नगर का निर्माण करेंगे तो पहले तीन वर्षों में पंद्रह लाख रुपया आसानी से खर्च कर सकेंगे और इतने के लिए यह कोई छोटी रक़म न होगी।"

"लेकिन वह पंद्रह लाख कहाँ से आयेगा? क्या आपके सदस्यों में ऐसे लोग निकल आयेंगे जो इतना रुपया जुटा लें?"

"हमारे वर्तमान सदस्य तो शायद अभी एक लाख रुपया भी अपने बीच से न जुटा सकें। लेकिन इससे क्या? जिस बड़े समाज में से हम अपने नये नगर के निवासी लेना चाहते हैं उसमें—उसमें क्या, आपके इसी एक सूबे में—पंद्रह आदमी ऐसे आसानी से निकल आयेंगे जो अकेले ही पंद्रह लाख रुपया खर्च कर सकते हैं। फिर हमारे काम में तो कई आदमी मिल कर भी इतना बोझ उठा सकते हैं।"

"लेकिन प्रश्न यह है कि इस काम के लिए क्या कोई इतना रुपया, बिना किसी व्यावसायिक लाभ के, खर्च करने के लिए तैयार होगा ?"

"जिनके पास रुपया है वे उसे खर्च करने के लिए तैयार ही रहते हैं। दुनिया मे कौन ऐसा है जो अपने रुपये को खर्च नहीं करना चाहता ? शायद कुछ मूर्ख और विकृत मस्तिष्क वाले धनिक ऐसे निकल आये। और व्यावसायिक लाभ के लिए खर्च करने की जो बात है वह केवल एक बड़ी मानसिक उलझन है। व्यावसायिक लाभ के लिए नहीं, अपने सुख और सुविधा के लिए ही लोग खर्च करते हैं, और जब वे उस खर्च को किसी अज्ञात भविष्य-काल के लिए स्थगित कर देते हैं तभी उन्हें यह व्यावसायिक लाभ का भ्रम उत्पन्न होता है। मै आप से स्पष्ट ही कह दूँ कि प्रत्येक व्यक्ति— कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़ कर— अपने पैसे को भरपूर खर्च करना चाहता है; और बहुधा उस खर्च के लिए अधिक अच्छे और सन्तोषजनक मार्ग न मिलने या न सूझने पर उसे कम अच्छे और कम संतोषजनक मार्गों में ही वह खर्च करना पड़ता है। मनुष्य स्वभावतः कमाने के लिए नहीं, खर्च करने के लिए ही व्याकुल रहता है। उसे कोई पहले से अधिक अच्छा मार्ग दीख जाने दीजिए और वह अपनी सारी सम्पत्ति को लेकर उसी की ओर दौड़ पड़ेगा। जिनके पास इच्छानुसार सुखपूर्वक खाने-रहने की आवश्यकता से ऊपर पैसा है उनकी बड़ी समस्या यही है कि वे उसे कहाँ खर्च करके अधिक-से-अधिक सुख की सामग्री ख़रीद सकते हैं।"

"यह एक बात आपकी पकड़ में आई है" मैंने सोचते हुए

कहा, "मनुष्य अपने सुख-सन्तोष के लिए खर्च करना ही चाहता है, यह ठीक है। तो फिर आप समझते हैं कि इस नये नगर की योजना कुछ बड़े धनिकों के सामने इतने आकर्षक रूप में प्रस्तुत की जा सकेगी कि वे और दिशाओं से सिमट कर इस की ओर अग्रसर हो जायँगे?"

"स्वभावतया! बल्कि योजना को उनके सामने प्रस्तुत करने का प्रश्न नहीं उठेगा। योजनाएँ—और अच्छी योजनाएँ भी प्रायः लोगों के सामने ऐसे पहलू से रक्खी जाती हैं कि उन्हे अपनी सहेज दृष्टि से देख सकना उनके लिए सम्भव नहीं होता; और उस पहलू में सब से बड़ा दोष प्रायः प्रस्तुत करने-वालों का ही होता है; उसमें उनका कुछ व्यक्तिगत स्वार्थ या अविश्वास-जनित बन्धन हो जाता है। वे अपनी बात को ग़लत दिशाओं से और गलत दबाव के साथ दूसरों के सामने लाने का प्रयत्न करते हैं। हमें अपनी योजना किसी के सामने रखनी नहीं है। हम तो उसे खुले में यों ही निर्बन्ध छोड़ देंगे, जहाँ से सभी देख सकने वाले अपने आप देख सकें। हम अगले पाँच वर्षों के भीतर ही इस योजना के कुछ मूर्त होने का अनुमान लगाते हैं, फिर भी, इस सम्बन्ध में किसी भी परिणाम को देखने के लिए अपने जीवन के अंतिम से भी आगे के दिन तक—हिमदा ने कहा था, ढाई सौ वर्ष तक प्रतीक्षा कर सकते हैं। लेकिन सृष्टि की व्यवस्था में, विशेष कर मानव प्रकृति के लिए, याचना-हीन आकर्षण का एक व्यापक नियम है और वह प्रायः अज्ञात रूप में ही मनुष्य को उसके विकास की अगली परिस्थितियों की ओर खींचता रहता है। नये नगर की व्यवस्था एक ऐसी ही विकास की परिस्थिति होगी।"

"आप अपनी इस योजना को उनके देखने के लिए खुले में छोड़ देंगे। इसकी अवश्य ही कोई नई रीति होगी। मैं उस पर अभी क्या बहस कर सकता हूँ। लेकिन उस नये नगर की नागरिक व्यवस्था के सम्बन्ध में जो कुछ आपने कहा वह समाज-व्यवस्था के क्रियाशील चिन्तकों और प्रयोगकारियों की खोजों और अनुभवों के सामने सैद्धान्तिक रूप में भी तो कुछ टिकना चाहिए। क्या आप समझते हैं कि आप इस व्यवस्था की अपनी व्याख्याओं द्वारा उन्हें सन्तुष्ट कर सकते हैं?"

"ऐसा कोई दावा हम नहीं कर सकते। सामाजिक बस्तियों और व्यवस्थाओं की योजनाएँ बनाने वालों को और जन-साधारण को भी हम अपनी किन्हीं भी व्याख्याओं द्वारा सन्तुष्ट नहीं कर सकते। आजका तर्कनाशील मस्तिष्क इतना बन्धन-प्रिय हो गया है कि वह अपनी अनुमानित कठिनाइयों का भी विछोह सहने के लिए तैयार नहीं होता। लोगों की एक हज़ार एक शंकाओं और आशंकाओं का हमारे पास एक मोटा-सा उत्तर है: 'प्रतीक्षा के साथ देखने चलिये।' इसका यह मतलब नहीं कि मैं आपके प्रश्नों का उत्तर नहीं देना चाहता। आप अपनी ओर से जो भी चाहिए, पूछिये, लेकिन लोगों को बीच में न लाइये, तभी मैं आपके सभी प्रश्नों का उत्तर दे सकता हूँ।"

"मैं आपकी इस युक्ति में तथ्य देखता हूँ। आप लोगों की—बुरे और दुर्बल चरित्र दीखने वाले लोगों की भी— अच्छाई में विश्वास करते हैं। आप मानते हैं कि साधारण स्वार्थ-प्रिय मानसिकता के लोगों को ही लेकर आप नये और अधिक सुखी समाज का संघटन कर लेंगे। आपके इस विश्वास का विरोध करने के लिए मेरे पास कोई अनुभूत सामग्री नहीं है। लेकिन

यदि इतने साधारण लोग भी उस नई नागरिकता के योग्य हैं तो उसके अधिकारियों की संख्या तो बहुत अधिक बढ़ जायगी। आप इस नये नगर या नये समाज में से किस आधार पर लोगों को बाहर रक्खेंगे? और यदि उन सब के लिए उस नई बस्ती के द्वार खोल देंगे तो इतने अधिक लोगों के लिए भोजन, वस्त्र और निवास की व्यवस्था आप कैसे कर सकेंगे? उसके लिए पंद्रह लाख क्या, पंद्रह अरब रुपया भी काफ़ी न होगा। मैं समझता हूँ कि इस समय संसार में, इसलिए भारतवर्ष में भी, प्राप्त होने वाले भोजन, वस्त्र और मकानों को सब में समान रूप से बाँटा जाय तो किसी के भी हिस्से में भरपेट भोजन, तन ढकने भर को कपड़ा और पैर फैलाकर सोने भर को छत की छाया नहीं पड़ेगी। मनुष्य के द्वारा होने वाला उत्पादन उसकी आवश्यकता से अभी बहुत कम है, और कुछ लोगों के नंगे-भूखे रहने पर ही दूसरे लोग पूरी तरह खा-पहन सकते हैं। अगले बीस वर्षों के किसी सामूहिक प्रयत्न द्वारा भी यह कमी पूरी नहीं की जा सकती। फिर आप कैसे सर्व साधारण के लिए ऐसी किसी साम्यवादी व्यवस्था के सफल या सुखकर होने की आशा करते हैं?" मैंने कहा।

"आप फिर अपनी स्थिति पर न रह कर सारी दुनिया में बहक जाते हैं। दुनिया भर के, या हिन्दुस्तान भर के सभी लोगों से नहीं; आपका मतलब तो केवल उनहीं लोगों से है जिन तक आपका निमंत्रण पहुँच सकता है और जो उसे स्वीकार भी कर सकते हैं। आपकी बात तो आपके ही सामाजिक स्तर के कुछ लोगों तक पहुँच सकती है और उनमें से कुछ प्रतिशत ही

उसे स्वीकार कर सकते हैं। दूसरे लोग अभी आपकी व्यवस्था को पसंद क्या, सहन भी नहीं करेंगे। बहुत धीरे-धीरे ही आपका यह क्षेत्र बढ़ सकेगा। अपनी श्रेणी के किन्हीं भी दस-पचास सौ या हज़ार-दो हज़ार व्यक्तियों को किसी भी कोने से ले लीजिए और उनके उत्पादनों और उत्पादन शक्तियों को एकत्र कर उनके फल सब में बराबर बांट दीजिए; आप देखेंगे कि उनमें से कोई भी नंगा-भूखा, बिना घर का या बिना सामाजिक उपयोग का नहीं रहेगा। और ऐसा करने में जिनके आराम और उपयोग का स्तर कुछ नीचे गिरेगा उन्हें उसके बदले कुछ विशेष ऊंचा सुख और जन-सम्पर्क अवश्य प्राप्त होगा।" वेंकटाचलम् ने कहा।

"व्यवहार में आने पर यह बात शायद ठीक उतरे" मैंने सोचते हुए कहा और कुछ देर को चुप हो गया।

हिमदा इसी बीच अपने आसन पर से उठी और चलने को उद्यत हुई। उसे लक्ष्यकर मैंने कहा :

"आप अभी नहीं जा सकतीं। आपको और बजरंगजी को भी मेरे बहुत से प्रश्नों के उत्तर देने हैं।"

हिमदाने सामने की ओर संकेत करते हुए कहा, "मुझे अपने एक अतिथि से बात करनी है। मैं अभी अधिक-से-अधिक पंद्रह मिनट के भीतर लौट आऊंगी।"

गैस लैम्प की तेज़ रोशनी दूर तक फैल रही थी। मैंने पहचाना, हमारी मंडली से कुछ दूरी पर वही व्यक्ति आकर खड़ा हुआ था जिसे अपनी वक्तृता के बीच हिमदा ने सभा के बाद एकांत में मिलने की स्वीकृति दी थी। मैंने देखा, कुछ दूरी पर, सामने वाले कमरे के आगे लगे हुये छोटे-से शामि-

याने के नीचे हिमदा अपने अतिथि को ले जाकर उससे बात करने लगी।

"नये नगर में आप व्यक्तियों के बीच जिस नये प्रकार के सम्बन्ध का प्रयोग करना चाहते हैं, जिसमें कि प्रत्येक व्यक्ति का परिवार का निकटतम सम्बन्धी भी उसकी अधिकार-सीमा के बाहर होगा और पति-पत्नी, पिता-पुत्र आदि का भी एक-दूसरे पर कोई अधिकार न होगा, क्या उस व्यवस्था से पारस्परिक स्नेह और सहयोग के लिये एक बहुत बड़ा खतरा न पैदा हो जायगा, और वासना-जनित प्रलोभनों के लिये पूरी छुट्टी मिल कर सेक्स सम्बन्धी विकार और अशान्तियाँ न बढ़ जायँगी?" मैंने अगली बात पूछी।

"ऐसा नहीं होगा। स्नेह और सहयोग प्रतिबन्धों और रोक-थामों द्वारा सुरक्षित रक्खी जाने वाली वस्तुयें नहीं हैं। ये तो मनुष्यों के बीच सहज स्वाभाविक हैं। जब मनुष्य अतृप्त या भयभीत होता है, तभी इन चीज़ों का अभाव उसके व्यवहार में प्रकट हो जाता है। निर्बन्ध परिस्थितियों में ही इन गुणों के खुल कर व्यवहार में आने की सम्भावना है। जिन्हें आप सेक्स सम्बन्धी विकार या अशान्तियाँ कहते हैं उनका भी बहुत बड़ा कारण मनुष्य की वही अतृप्ति और भय है। इन का उपचार प्रतिबन्धों द्वारा एक सँकरे समय और सीमा के आगे नहीं हो सकता। मनुष्य की सहज स्थिति में भोग सँबंधी अतियों का कोई स्थान नहीं रह जाता। अलबत्ता सेक्स के सम्बन्ध में आज के समाज-व्यवस्थापकों का दृष्टिकोण भी बहुत स्वल्पदर्शी और संकुचित है। वे तिल को ताड़ और ताड़ को तिल माने हुये हैं। मैं समझता हूँ कि कुछ अधिक विस्तृत

दृष्टिकोण से देख सकने पर एक दूकानदार के माल की पूरी खपत न होने पर भी दूसरे आदमी का उसीके पड़ोस में इन्हीं चीज़ों की दूकान खोल कर बैठना किसी पुरुष के अपने पड़ोसी की विवाहिता पत्नी के वय-सुलभ प्रेम को स्वीकार कर लेने की अपेक्षा कहीं अधिक बड़ा सामाजिक और नैतिक अपराध है। आज के व्यवसाय-जगत् की प्रतियोगिता और अनिष्टकर विज्ञापनबाज़ी ऐसे गन्दे अपराध हैं जिन्हें करने के लिए उस नये समाज का निम्नतम वर्ग भी तैयार नहीं होगा। अभी इन बातों को लोक-सम्मत और बहुत साफ़-सुथरा माना जाता है। यह सम्भव है कि आज के दृष्टिकोण से कुछ अधार्मिक मानी जाने वाली बातों में उस दृष्टिकोण से कोई अधर्म या अनीति की बात न दिखाई दे।"

"यौन-अतृप्ति की जो आप बात कहते हैं उसका अभिप्राय क्या यही नहीं है कि लोगों को सेक्स-सम्बन्धी जितने सम्पर्क और विहार की आवश्यकता है उससे बहुत कम मिल पाया है और उस कमी की पूर्ति होनी चाहिये?" मैंने आगे पूछा।

"केवल कहीं-कहीं। अधिकांश व्यक्तियों के लिये यौन-अतृप्ति का कारण यौन-सम्पर्क की कमी नहीं, बल्कि उसके मार्ग में दीखने वाले प्रतिबन्ध ही होते हैं, ये प्रतिबन्ध लोकमत के लगाये हुए भी हो सकते हैं और स्वयं अपने लगाये हुए भी। कुछ लोगों के लिये इस अतृप्ति का कारण यौन-सम्पर्क की कमी नहीं, बल्कि उसकी अति ही होती है; जैसे आवश्यकता से अधिक खाने वाले कुछ लोगों को आगे चल कर बहु-भक्षण का रोग हो जाता है और उस बहु-भक्षण में स्वाभाविक स्वाद और पोषण न पाने के कारण वे सदैव अतृप्त

बने रहते हैं। अलग-अलग लोगों की इस अतृप्ति का उपचार भी अलग-अलग ही हो सकता है।"

"लेकिन यौन-आकर्षण के मार्ग में समाज द्वारा लगाये हुए प्रतिबन्धों को हटा देना तो नई व्यवस्था में हर हालत में और हरेक के लिये आवश्यक होगा, यह तो आप कहते ही हैं?"

"यह हम अवश्य कहते हैं; लेकिन प्रतिबन्धों का निष्कासन कैसे-कैसे और किस-किस रूप में होगा, इसका संतोषजनक उत्तर हिमदा ही आपको दे सकती है। ऐसे प्रश्नों की ठीक अधिकारिणी वही है। वह है किधर?" वेंकटाचलम् ने इधर-उधर देखते हुए कहा।

"वह अभी अपने एक नये उम्मीदवार को सन्तुष्ट करने उधर ले गई है" बजरंग ने सामने के शामियाने की ओर संकेत करके बताया। वे दोनों अब भी वहाँ बैठे बात करते दीख रहे थे।

"आपने" मैंने बजरंग को लक्ष्य कर कहा, "और हिमदा ने इस सेक्स की समस्या की दो विरोधी दिशाओं में ऐसी खींच-तान की है कि मामला और भी उलझ कर बेमज़ा भी हो गया है। हिमदा ने नये नगर की सेक्स सम्बन्धी व्यवस्था का जो आकर्षक चित्र रक्खा है उसे कुछ बूढ़े और संयमवादी लोगों के अनुकूल बदलने के प्रयत्न में आपने आज के युवा वर्ग के लिये बहुत ही अनाकर्षक बना दिया है। आप दोनो में से किसकी बात को ठीक माना जाय?"

"बात मेरी ही ठीक मानी जा सकती है" हिमदा ने इसी क्षण आकर अपने आसन पर बैठते ही कहा, मैंने आपका

प्रश्न पूरा नहीं सुना, लेकिन मैं समझती हूँ कि मेरे और बजरंग के मतभेदों का प्रश्न चल रहा है। सेक्स के मामले में आजका शिक्षित मनुष्य स्थूल से धीरे-धीरे हटकर सूक्ष्म सम्पर्क की ओर अपने आप बढ़ रहा है, और इस 'हटने' की जगह 'हटाने' की बात इसके सामने कहना, जन साधारण के लिए अनावश्यक ही नहीं, अरुचि कर और अहितकर भी है। हमारी नई व्यवस्था में निस्संदेह सेक्स सम्बन्धी अधिक मुक्त आकर्षणों और सम्पर्कों का अवकाश होगा और आज की अपेक्षा इसका कहीं अधिक सुख लोगों को प्राप्त होगा। क्या बजरंग, वेंकट दादा या कोई भी इसके विरुद्ध कुछ कह सकते हैं?"

"मैं इसके विरुद्ध कुछ कह सकता हूँ" गुफा के द्वार से बाहर निकलते हुए राजा ने कहा, "और यह कह सकता हूँ कि अगर सेक्स के सुखों और उनकी चर्चाओं ने हमारे खाने और सोने के सुखों और उनके समयों पर अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया तो वे सुख सुख न रह जायंगे। मैं आज तीन बजे रात का जगा हुआ हूँ और बारह बजे दोपहर का खाया हुआ। आप लोगों को भी तो अपने खाने सोने की कुछ फ़िक्र होनी चाहिए।"

"तो तू खाता क्यों नहीं? खा ले और सो जा।" वेंकटाचलम् ने हँसते हुए कहा।

"खाने को तो मैंने जैसे तैसे खा ही लिया है, लेकिन यहाँ दरवाज़े पर इस तरह सभा लगी रही और उसमें इस हिमदा का व्याख्यान होता रहा तो मैं सो कैसे सकता हूँ? इसके पैने गले के आगे किसे नींद आ सकती है?" राजा ने कहा।

हम सब हँस पड़े और वेंकट को उठते देख कर उठ खड़े हुए।

"ठीक है। हमें खाना-पीना भी तो है और गरम कपड़े भी हमारे डेरों पर ही हैं। आपके मनोरंजक प्रश्नों का उत्तर देने के लिए हम और भी समय अगले दिन निकालेंगे।" वेंकटाचलम् ने अंतिम बात मुझे लक्ष्य कर कही।

"मेरे सभी प्रश्नों का उत्तर मुझे मिल गया है, और जो कुछ शेष भी रह गये होंगे उनका भी सबसे बड़ा उत्तर तो मुझे मिल ही चुका है: 'प्रतीक्षा के साथ देखते चलिये।' मुझे यह उत्तर पूर्णतया स्वीकार है।" मैंने कहा।

हम सब अपने-अपने डेरों की ओर चल दिये।

[१८]

अगले दिन सुबह ही मेरे पडोसी चौधरी साहब के नौकर ने मेरे पास आकर कहा, "स्वामीजी आपको बुला रहे हैं। वह हमारे कमरे में है। कल शाम से बाईजी को बुखार आ गया है।"

मैं तुरन्त वहाँ पहुँचा। रत्ना कुमारी अपने बिस्तर पर लिहाफ़ ओढ़ कर बैठी हुई थी। चौधरी साहब, वेंकटाचलम, हरीश और कैम्प के एक अन्य सदस्य, जो कैम्प के डाक्टर भी थे, वहाँ उपस्थित थे।

"मुझे सूचना ही नहीं मिली। इन्हें कब से क्या तकलीफ हो गई?" मैंने चौधरी साहब को लक्ष्य कर पूछा।

कल शाम की मीटिंग के बीच से यह; उठ गई थी। कुछ देर दिल की घबराहट के बाद बुख़ार भी हो आया। रात को बुखार एक सौ चार तक हो गया था। रात को ही मैंने हरीश बाबू को इत्तिला भेज दी थी और उनके साथ आकर इन डाक्टर साहब ने देखकर दवा दे दी थी। अब बुखार सिर्फ

सौ है। तीन बजे से कुछ नींद भी ले चुकी है। हार्ट ट्रबूल का दौरा इसे भीक-कभी हो जाता है।" चौधरी साहब ने मुझे बताया।

"ठीक दवा पहुँच गई है, और वह सब ठीक हो जायगा"; वेंकटाचलम् ने अपनी प्रसन्न मुख-मुद्रा से रोगी के समीप के वातावरण का मानो परिष्कार करते हुए कहा, "लेकिन रोग के जाने से पहले हमें उससे पूरा लाभ भी उठा लेना चाहिए। क्यों डाक्टर, आजकल में तो अब यह हार्ट-अटैक या बुखार उन्हें नहीं होगा? हम लोग कुछ देर इनके साथ बैठकर बात-चीत तो कर सकते हैं?"

"खूब बातचीत कीजिए। अब कुछ दिन तक इन्हें ऐसे अटैक का कोई डर नहीं है।" डाक्टर ने विश्वास के साथ कहा।

अगली दवा भेजने के लिए नौकर को साथ लेकर डाक्टर अपने डेरे की ओर चल दिया।

"रक्षा ने एक बार मुझसे योगसाधन की कुछ क्रियाएँ सिखानें की प्रार्थना की थी। मैं आज उसी विषय को उठाना चाहता हूँ। आज उसके लिए बहुत ठीक अवसर है। उसके लिए मुझे रक्षा की ओर से पहले कुछ कनफ़ेशन्स * की आवश्यकता है। क्या तुम अपने मन की कुछ भीतरी बातों को बताने या मेरे वैसे ही कुछ प्रश्नों का उत्तर देने के लिए तैयार हो? मेरे जिस प्रश्न का उत्तर तुम न देना चाहो उसके लिए मना कर सकती हो, पर झूठ या जानबूझ कर ग़लत उत्तर देने से काम पूरा नहीं होगा।"

---

* छिपी या छिपाई हुई बातों की प्रकट स्वीकृति।

"मैं तैयार हूँ। रत्ना ने किसी हद तक अव्यवस्थित फिरभी उत्सुक स्वर में कहा।

"आपको तो इसमें कोई एतराज़ नहीं है?" वेंकट ने चौधरीजी से पूछा।

"मुझे एतराज़ क्यों होगा, स्वामीजी? गुरू और शिष्य के बीच मैं दखल देने वाला कौन हो सकता हूँ!" चौधरीजी ने सहज प्रसन्न भाव से कहा।

"आपके भीतर दो-एक जितनी बड़ी-बड़ी खास खूबियाँ हैं, इन रावी जी के मन में आपकी तरफ उतनी ही बड़ी-बड़ी दो-एक गलत-फहमियाँ भी हैं। इनकी उन गलत-फहमियों का भी फैसला हो जाय, इसीलिए ज़रूरी समझकर मैंने इन्हें भी इस वक्त बुला लिया है।"

"इनकी मेरे बारे में क्या गलतफहमियाँ हो सकती हैं!" चौधरी जी ने हँसते हुए कहा "खैर, कुछ हों भी तो उनका फैसला तो हो ही जाना चाहिए।"

"चौधरी साहब" वेंकट की प्रश्नावली उन्हीं से आरम्भ हुई, "आप जानते हैं कि अफरीका के हब्शियों में कुछ फिरके ऐसे हैं जिनके लोग अपने सगे भाइयों पर हावी होकर उनकी बीबियों और लड़कियों को उड़ा लाते हैं और उनसे शादियाँ कर लेते हैं; और तिब्बत के कुछ धर्म को मानने वाले फ़िरकों में एक-एक औरत के चार-चार पति एक साथ होते हैं?"

"मैंने ऐसा पढ़ा है।" चौधरी साहब ने स्वीकार किया।

"क्या उनके रीति, रिवाज और व्यवहार को आप अपने व्यवहार में अपनाना पसंद कर सकते हैं?"

"कभी नहीं।"

"अगर ऐसे लोगों के देश में अकाल पड़ने लगे या भूचाल आने लगे तो क्या आप चाहेंगे कि उनकी कुछ मदद की जाय ? क्या आप यह न सोचेंगे कि ऐसी कौमों का दुनिया से उठ जाना ही अच्छा है ?"

"मैं ज़रूर चाहूँगा कि उनकी मदद हो। किसी भी किस्म के लोगों के दुनिया से उठ जाने की मैं ख्वाहिश नहीं कर सकता। इस ज़मीन पर जो पैदा हुए हैं, उन सब का हक़ है कि वो इस पर ज़िन्दा रहें।"

"यह वैष्णव है!" वेंकट ने सन्तुष्ट स्वर में कहा, "आप उन लोगों को ज़िन्दा रहने देने के लिए इसलिए आसानी से तैयार हैं कि वे आपकी निगाह से और आपसे बहुत दूर हैं। अगर ऐसे लोग आपके पड़ोस में ही आ बसें तब आपको अपनी ऐसी हमदर्दी और फराखदिली के रास्ते में कुछ रुका-वटें महसूस हो सकती हैं।"

"शायद—ज़रूर महसूस हो सकती हैं" चौधरी ने सोचते हुए उत्तर दिया, "क्योंकि उस हालत में उनकी काररवाइयों से हमारे रास्ते में बिघन पड़ने का डर है।"

"अगर वैसे डर को दूर रखने का इन्तिज़ाम कर लिया जाय तब भी वैसी रुकावटें आपको महसूस हो सकती हैं, क्योंकि इन्सान आम तौर पर अपनी तबीयत के खिलाफ़ बातें देखना पसंद नहीं करता—ज़ाती तौर पर उनका उस पर कोई असर न पड़ता हो तो भी वैसी बातों को सिर्फ़ दूसरों के मामलों में देखने से भी उसे तकलीफ़ महसूस होती है और वह उनके करने वालों से नफ़रत करने लगता है।"

"ज़रूर; यह इन्सानी नेचर है। लेकिन मैं समझता हूँ, यह

उसकी कमज़ोरी है। ऐसी कमज़ोरी मैं अपने भीतर अक्सर महसूस करता हूँ।"

"इसीलिए आपकी कमज़ोरियाँ कुछ तेज़ी से खातमे की तरफ़ बढ़ रही हैं। इन्सानी नेचर की जिस कमज़ोरी की बात हम कह रहे हैं उसके खातमे का एक बहुत ही सीधा रास्ता है। दूर बसने वाले बुरे आदमियों को आप ज़िन्दा रहने देना पसंद कर सकते हैं, क्योंकि आपके दिल में ज़िन्दगी की क़दर है और ज़िन्दगी पर सभी इन्सानों के हक़ को आप जान गये हैं। लेकिन पास आने पर बुरे आदमियों का ज़िन्दा रहना आपको तकलीफ़ दे सकता है। आप समझते हैं कि अफ़रीका और तिब्बत में रहने वाले वे लोग आपसे दूर हैं, और आपके कमरे में मौजूद यह रावीजी, हरीश और मैं आपके करीब हैं। लेकिन यह एक भ्रम या ईल्यूज़न है। दरअसल ज़मीन का हरेक कोना एक दूसरे के बिलकुल क़रीब है, दुनिया का हर इन्सान हर इन्सान के बिलकुल क़रीब है। फिर भी इन्सान के दिमाग़ का ईजाद किया हुआ एक ऐसा रास्ता है जिसके जरिये आप दूर-से-दूर बसने वाले इन्सान के बिलकुल क़रीब और क़रीब-से-क़रीब बसने वाले इन्सान से बहुत दूर रह सकते हैं। अगर आपको वह रास्ता मिल जाय तो बुरे और खतरनाक आदमियों को अपने पड़ोस में बस जाने देने में आपको क्या एतराज़ रह सकता है?"

"आप कोई गहरे रूहानी ताल्लुक़ की बात कह रहे हैं" चौधरीजी ने विचारमग्न होकर कहा, "अगर कोई ऐसा रास्ता मुझे मिल जाय और मेरी कांशसनेस (चेतना) ऐसी ऊँचाई पर पहुँच जाय तो मुझे बुरे और भले का क्या परहेज़

हो सकता है ? भगवान की दिरष्टी में और इसीलिए उसके सच्चे भक्त की दिरष्टी में भले-बुरे सब एक हैं; सभी उसके बच्चे हैं।"

"हम जो नया नगर बसाने जा रहे हैं, उसमें सभी को कम-बेश ऐसी दृष्टि हासिल होगी और उन्हें इस बात का अभ्यास भी होगा कि अगर चाहें तो अपने बग़ल के पड़ोसी से भी एकदम दूर और दूसरे छोर के बाशिन्दे के बिलकुल क़रीब रह सकें। उस नगर में क्या आप अपने पड़ोस के कुछ वैसे हब्शियों और अधर्म की रीति-रिवाज वालों को रहने देना पसंद करेंगे ?"

"इसे नापसंद करने का उस हालत में कोई सवाल ही नहीं उठेगा। मैं तो ऐसे एक्सपेरीमेंट्स और एक्सपीरिएंसेज़ (प्रयोगों और अनुभवों) को बड़ी खुशी से देखना चाहूँगा।"

"मेरी आपकी इतनी बातचीत इन रावीजी की एक बड़ी ग़लतफ़हमी का जवाब भी है। है न ?" वेंकटाचलम् ने मेरी ओर विजयपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा।

"निस्संदेह मेरे मन में चौधरी साहब के खिलाफ़ जो बहुत बड़ा एतराज़ था वह दूर हो गया है। मैं नहीं समझ सकता था कि यह इतने खुले हुए दिल-दिमाग़ के हैं। इनके बारे में मैंने जितनी छोटी बात सोची थी उसे देख कर मैं तो अब अपने आपको ही इनके मुक़ाबले बहुत तंग-दिल महसूस करने लगा हूँ।" मैंने कहा।

"यह रत्ना कुमारी आपको एक निहायत वफ़ादार पत्नी मिली है। इसके और आपके विचार और विश्वास बिलकुल एक-से हैं। लेकिन मान लीजिये कि कल को यह किसी तरह मुसल-

मान हो जाय या किसी और आदमी से प्रेम करने लगे तो इसकी तरफ़ आपका रुख़ क्या होगा ? मै किसी भीतरी मतलब से यह बात पूछ रहा हूँ।" वेंकटाचलम् ने विशेष रूखे और सुदृढ़ स्वर में पूछा।

रत्ना का चेहरा, मैंने देखा, इस प्रश्न के साथ ही एकदम तमतमा कर फीका पड़ गया।

"मैं नहीं कह सकता, मेरा रुख क्या होगा। मैं इस बात का गुमान ही नहीं कर सकता। मै समझता हूँ कि उस दिन से वह मेरी स्त्री न रह जायगी और मेरा उसका सभी ताल्लुक टूट जायगा।"

"यह कम-से-कम और अच्छे-से-अच्छा होगा। आप अपना रिवाल्वर भर कर उसके पीछे नहीं दौड़ेंगे। आप मानते है कि वैसा कर बैठना आपकी एक ग़लत काररवाई होगी ?"

"मै मानता हूँ। हर जीव अपने-अपने कर्म का जिम्मेदार है और इसलिये अपनी राह पर चलने के लिए आज़ाद है। दुनिया के नाते एक हद तक ही दो जीवों को एक-दूसरे के साथ बाँध सकते है।"

"आपकी रत्ना रूहानियत के ओहदे में हममें से किसी से कम नहीं है। जो सवाल-जवाब मैंने इस वक्त किये हैं वे देखने में शराफ़त और इख़लाक से गिरे हुए जान पड़ सकते हैं, लेकिन हमें इस वक्त एक ज़रूरी नतीजे पर पहुँचना है। दुनिया में कोई किसी का नहीं है और मा-बेटे; पति-पत्नी वगैरह के नाते चन्द दिनों के चलते हुए और बदलते रहने वाले नाते हैं। इन नातो के बाहर सभी इन्सान एक ही खून और एक ही मोहब्बत के नाते में हमेशा बंधे हुए हैं। हमें इन चलते-

फिरते रिश्तों के पार उस हमेशा के नाते को पहचानना है। आप उस जानकारी की तरफ़ खुद-बखुद बढ़ रहे हैं।"

चौधरीजी ने स्वीकृति और समर्थन सूचक सिर हिला दिया।

"रत्ना को समझने में आपने और खुद रत्ना ने भी एक बड़ी ग़लती की है। अगर आपका दो साल का बच्चा किसी खिलौने के लिए, मान लीजिए लकड़ी की मोटरकार के लिए, शाम को रोता-रोता सो जाय तो क्या सवेरे जागने पर वह उस मोटर के मामले में ज्यादा अक्लमन्द हो जायगा? क्या वह जान जायगा कि लकड़ी की मोटर बेकार की चीज़ है?"

"नहीं, इतनी समझ उसे नहीं आ जायगी।"

"क्या आप उसे लकड़ी की मोटर ला देना ग़ैरज़रूरी या नुकसानदेह समझेंगे?"

"नहीं। मैं शाम को न दे सका तो सुबह ज़रूर उसे लकड़ी की मोटर ला कर दूँगा।"

"आप ठीक काम करेंगे। लेकिन इसी के खिलाफ ग़लती आमतौर पर हमारे बड़े-बूढ़े अपने नौजवान और जवान छोटों के साथ करते हैं और रत्ना के साथ ऐसी ज्यादती ख़ास तौर पर हुई है। अब मैं सीधे रत्ना से ही कुछ प्रश्नों के उत्तर चाहूँगा।"

रत्ना जैसे साँस साध कर सावधान हो गई।

"परसों और कल की सभाओं में जो बातें कही गई हैं, ख़ास कर जो हिमदा ने कही हैं, उनसे आपके दिल को कुछ गहरी चोट पहुँची है। अपनी कल्पना में आपने हमारे इस समाज को जितना ऊँचा और आदर्श समझा था, उसके विपरीत ही बातें आपको सुनने को मिली हैं। है न यही बात?"

"यह ठीक है" रत्ना ने स्वीकार किया, "नये नगर का जो आदर्श मैंने इन दो दिनों में सुना उसे मैं किसी तरह अपनी प्रकृति और आशा के अनुकूल नहीं बिठा सकी।"

"आपकी यह निराशा पीड़ा की कठिन सीमा पर पहुँच गई और यही कल आपकी अस्वस्थता का भी कारण हुई।"

"हो सकता है। निराशा के कठिन आक्रमण के साथ ही कल मेरे हृदय की धड़कन भी बढ़ गई थी।"

"और यह हृदय की धड़कन और घबराहट आपका पन्द्रह वर्ष पुराना रोग है।"

"लगभग इतने ही समय से यह शिकायत थोड़ी-बहुत चल रही है।"

"भक्ति और वैराग्य की भावना चौदह-पन्द्रह साल की उम्र से आपके हृदय में समाई हुई है। इस तरह की शिक्षाएँ आपको बचपन से ही अपने माता-पिता के घर में दी गई थीं।"

"ऐसी भावनाओं को ही मैं जीवन का अवलम्ब और भवसागर की नौका मानती हूँ।"

"आपको नवयुवा प्रेमी-प्रेयसियों या नव-विवाहित पति-पत्नियो का प्रेम-व्यापार अरुचिकर लगता है। सेक्स-आकर्षण को आप निम्नकोटि का और आध्यात्मिक जीवन से विपरीत दिशा में ले जाने वाला मानती हैं।"

"मैं वैसे प्रेम को ऐसा ही देखती हूँ। लेकिन पति-पत्नी के सात्विक प्रेम को, पत्नी की पति-पूजा को मैं बहुत ऊँची वस्तु मानती हूँ।"

"सेक्स-सम्बन्धी लौकिक प्रेम में खुल कर रस लेने वाले सभी स्त्री-पुरुषों पर आपको तरस आता है। उनमें से किसी किसी पर आपको घृणा भी हो आती है।"

"मैं उन्हें बहुत घाटे में समझती हूँ और कभी-कभी उनके सामीप्य से बचकर रहना भी आवश्यक समझती हूँ।"

"सेक्स-सम्बन्धी आकर्षण, विवाह के पहले या विवाह के बाद किसी पर पुरुष के प्रति आपने अनुभव किया है ?"

रत्ना ने कातर-सी दृष्टि से वेंकटाचलम् की ओर देखा और चुप रही।

"विवाह के बाद वैसा आकर्षण आपने किसी पर पुरुष के प्रति अनुभव नहीं किया, लेकिन विवाह के पहले किसी-किसी नवयुवक के प्रति वैसा आकर्षण आपको कभी-कभी जान पड़ता था। क्या मैं ग़लत समझ रहा हूँ ?"

"आप ठीक कह रहे हैं। मैं स्वीकार करती हूँ कि कुछ दिनों तक यह दुर्बलता मुझ में थी।"

"और ऐसी दुर्बलता आपने एक नवयुवक के प्रति विशेष रूप से अनुभव की थी और अन्त में उस दुर्बलता को जीतने में बहुत बड़ी सफलता भी पाई थी।"

"विवाह से दो साल पहले, सोलह वर्ष की आयु में एक ऐसी परिस्थिति मेरे सामने आई थी। उन बातों की चर्चा इनसे करने का कोई अवसर नहीं आया।" रत्ना ने अपने पति की ओर संकेत करते हुए कुछ सहमे, अपराधिनी के से स्वर में कहा।

"अवसर भी नहीं आया और आपका साहस भी नहीं हुआ। लेकिन आपने अपनी दुर्बलता को ही देखा, अपनी विजय पर ध्यान नहीं दिया। आपने अपने शरीर और चरित्र को सर्वथा शुद्ध रक्खा है, यह आज के शिक्षित नारी समाज में बहुत कम मिलने वाली बात है।"

"ऐसा कोई गर्व मैं नहीं कर सकती। मेरे मन में जो विकार आया उसके लिए तो मैं लज्जित ही हूँ।"

"मैं आपको आपके चित्र का अब दूसरा रुख दिखाऊँगा। आप सेक्स आकर्षण को नीचे दर्जे की वस्तु समझती हैं। क्या आपने पार्वतीजी की कथा पढ़ी है, जिन्होंने महादेवजी को वर-रूप में पाने के लिए कठिन तपस्या की थी?"

"मैंने वह कथा पढ़ी है। लेकिन पर्वतीजी का वह प्रेम सेक्स का प्रेम कभी नहीं था। वह उनकी पवित्र आत्मिक आराधना ही थी।"

"वह सेक्स का प्रेम न होता तो वह विवाह के लिए नहीं, भक्ति या किसी अन्य वरदान के लिए तपस्या करती। वह सेक्स का ही प्रेम था, और सर्वोच्च कोटि का सेक्स-प्रेम था। सेक्स-आकर्षण के आध्यात्मिक स्तर भी बहुत से होते हैं।"

"हो सकते होंगे। मैंने उन्हें समझा नहीं।"

"और आपके हृदय में विविध भक्तों और सज्जनों के प्रति जो श्रद्धा-पूजा की भावनाएँ उठती रहती हैं वे भी प्रायः सेक्स-आकर्षण का ही रूपान्तर होती हैं। आज से चौदह वर्ष पहले अपने हृदय के सहज प्रेम की जिस चौड़ी धारा को आपने बल-पूर्वक बाँध लगा कर एक बालू के सागर की ओर मोड़ कर, उसमें सुखा दिया था, वही धारा अब खंड-खंड होकर श्रद्धा-भक्ति, मुक्ति और सद्गति की विविध कामनाओं और तत्सम्बन्धी आशंकाओं के रूप में प्रकट हो रही है। इन टुकड़ों से वह अखंड धारा किसी तरह भी छोटी या नीची वस्तु नहीं थी।"

रत्ना चुप रही।

"आपके जीवन में यह एक बड़ी दुर्घटना हुई है, और आपकी, आपके माता-पिता की और पतिदेव की भी अज्ञानता ने इसमें बड़ा योग दिया है। इसने आपके स्वभाव को बहुत उदासीन और निराशा-प्रिय, आपके दृष्टिकोण को बहुत संकुचित और आपकी प्रवृत्तियों को बहुत कामनाशील बना दिया है। लेकिन आप अपनी इन अस्वस्थताओं को अनुभव कर सकें तो अब भी उसके उपचार का पूरा अवसर है।"

रत्ना फिर भी चुप रही।

"क्या आप समझती हैं कि जिस नवयुवक के प्रति आपने सबसे गहरा आकर्षण अनुभव किया था उसे आप बिलकुल भूल गई हैं?"

"मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है" रत्ना ने अब किंचित दृढ़ स्वर में कहा।

"आपको सन्देह इसलिए नहीं है कि आपने मान लिया है कि वह भी आपको भूल गया है। लेकिन ऐसी बात नहीं है। वह आपको अब भी उतना ही, शायद पहले से भी अधिक प्यार करता है। उसने अभी तक आपका जैसा नारीत्व किसी अन्य स्त्री में नहीं देखा। वह इस समय यहीं, आपके सामने उपस्थित है।"

मेरे शरीर में हृदय से लेकर मस्तिष्क तक और पैर की एड़ी तक एक बिजली-सी दौड़ गई। रत्ना के अविरल नारीत्व ने मुझे प्रथम दर्शन के समय से ही प्रभावित किया था। क्या यह उन्हीं बालाओं में से कोई एक है जिनके प्रति मैंने पिछले वर्षों में विशेष आकर्षण अनुभव किया है? क्या यह उन्हीं दो-एक मुग्धाओं में से कोई एक है जिनके अति स्वल्प कालीन

सम्पर्क या केवल दर्शन के आगे मुझे उनका परिचय प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला, और जिनके रूपों को इतने दिनों बाद न पहचान सकना मेरे मस्तिष्क की एक स्वाभाविक दुर्बलता बन गई है ? क्या यह हो सकता है कि मैंने उनमें से किसीको—यदि वह इन्हीं में से कोई है तो इसे—इतनी अधिक बंधन-वेदना दे दी हो ? इसी क्षण मैं सावधान हो गया। मुझे अपनी आँखें भी तो खुली रखनी थीं, मैंने देखा, रक्षा के अपलक नेत्र एक ओर जम गये थे। उनमें क्या था, मैं नहीं पढ़ सका। चौधरीजी की अविचलित गम्भीरता आश्चर्यजनक थी, हरीश की सौम्य मुद्रा में एक तरलता थी और वेंकट का समूचा व्यक्तित्व जैसे किसी कठिन कल्प-क्रिया के लिए तुला बैठा था।

"जिसको आपने अभी तक अपने हृदय की अज्ञात गहराइयों में प्यार किया है, और जिसने आपको चौदह वर्ष से अपने निरंतर प्रेम से सींचा है आपका वही स्नेही आपके सामने प्रकट रूप में आज उपस्थित है। उसने आपको अपने स्वजन और संरक्षित सहचर के रूप में बराबर अपनाकर रक्खा है। उसे और आपको मिल कर बहुत काम करना है। जिस दैवी विस्मृति ने आपके और उसके बीच, आपकी आंखों के सामने एक कुहरा खड़ा कर उसे भूलने का आपको अवसर दिया था, उसके विलीन होने का आज समय आ गया है। अब तो आप उन्हें पहचान रही हैं ?" वेंकटाचलम् ने अंतिम शब्दों के साथ हरीश की ओर संकेत कर दिया।

रक्षा की आंखें हरीश की ओर उठीं और नीचे झुक गईं। दो बूंद आंसू उनसे ढुलक पड़े।

और हरीश की आंखों से एक अभूतपूर्व वरदान बरस रहा था।

[१६]

सम्मेलन की कार्यवाही पिछले दिन ही समाप्त हो चुकी थी और आज अभ्यागतों के छुट्टी मनाने का दिन था। मेरे लिए भी आज देखने-करने का कोई काम नहीं था। कैम्प में और सब कुछ पूर्ववत ही था। किसी व्यक्ति के जाने की कोई तैयारी नहीं थी। तीन दिन की जिन सभाओं की विस्तृत चर्चा मैंने ऊपर की उनके अतिरिक्त प्रति दिन विशेष कार्यकर्ताओं की एक सभा रात में होती थी, जिसमें विभिन्न नगरों में होने वाले कार्यों की चर्चा और उनके विस्तार की बातें होती थीं।

आज भी हमारा भोजन यथा समय भोजन-शाला से आगया। कैम्प का दल आज फिर वन-भ्रमण के लिए जा रहा था, पर उसके साथ जाने की मेरी इच्छा नहीं हुई। दोपहर तक का समय मैंने पुस्तक के लिए पिछले दिन की कार्यवाही के नोट तैयार करने में बिताया।

आज के प्रातःकाल का घटना चित्र, जिसे मैंने प्रयत्न पूर्वक अभी तक अपने मस्तिष्क में घूमने से बहुत कुछ रोक रखा था, भोजन के पश्चात् दोपहर के विश्राम के समय पूरी रफ़्तार से चल पड़ा। वेंकट के सम्पर्क-काल का यह सम्भवतः सब से अधिक नाटकीय और भावनापरक दृश्य था। रत्ना और उसके पति पर क्या उसने कोई जादू कर दिया था? रत्ना के बचपन से, कह सकते हैं बीस वर्ष से, जिस प्रकार की भावनाओं और मान्यताओं की तहें इस स्त्री के हृदय में जमती आ रही हैं उन्हें क्षण भर में पिघला देने वाली यह कौन सी आंच

हो सकती है? नारी और नर के बीच का आकर्षण कितनी ऊँची वस्तु हो सकती है? क्या वह इतनी ऊँची वस्तु हो सकती है? हरीश और रत्ना अपने प्रथम यौवन के प्रेमी हैं। ऐस कितने प्रेमी आज संसार में एक दूसरे से विलग एक दूसरे को भूले हुए न फिरते होंगे? क्या उन सब के उस बीते हुए प्रेम का इतना ही ऊँचा अर्थ हो सकता है? यह तो असम्भव है। रत्ना और हरीश के आकर्षण को एक विशेष प्रकार का ही प्रेम मानना पड़ेगा। रत्ना की श्रद्धा-पूजा की भावनाएँ और कामनाएँ उसके सेक्स आकर्षण का ही रूपान्तर हैं और किसी समय चाहे हुए पुरुष के प्रेम से अधिक ऊँची नहीं हैं। सेक्सुअली स्टार्व्ड! वेंकटाचलम् की उस बात का अर्थ अब कुछ समझ में आ सकता है। इस 'स्टार्व्ड" का उसकी राय में कुछ घातक प्रभाव भी होता है। हरीश की गहराइयों तक पहुँचना मेरे लिए कठिन है। और चौधरी? मै आदमी को नापने में अभी कितना कच्चा हूँ। उसकी अन्ध-श्रद्धा और अविवेकपूर्ण मान्यताओं पर तो मैने अपना निर्णय बना लिया था पर उसकी उदार सहिष्णुता और आत्म-प्रक्षालन से मै कितना पीछे हूँ! निस्संदेह वह नई नागरिकता का एक आदरणीय सदस्य है। ये कितनी विचित्र बाते हैं! रत्ना का अब क्या होगा? क्या वह हरीश के साथ मुक्त रूप से प्रेम करेगी? वे प्रेमी बन कर रहेगे या पति-पत्नी? क्या उनके प्रेम में सेक्स का स्थान न होगा? या वह एक बार फिर हरीश को भूलने या उससे घृणा करने का प्रयत्न करेगी? इस सम्बन्ध में कितनी बातें सोची जा सकती हैं! और चौधरीजी का उससे क्या नाता रहेगा? मैं इन बातों को सोचने में उलझने के सिवा

और कहाँ पहुँच सकता हूँ। यह वेंकटाचलम् क्या-क्या करने जा रहा है? उसका नया नगर और वहाँ की नई नैतिकता कैसी होगी? उसने आज की बात के प्रारम्भ में रक्षा को योगोपदेश की बात कही थी। क्या यही उसका योग-उपदेश था? यह भी किसी योग-उपदेश का एक किनारा हो सकता है। रक्षा और चौधरी के भीतर से उसने जो आत्म-स्वीकृतियाँ निकलवाईं उन्हें विशेष सार्थक तो कहना ही होगा! उसका चुम्बकीय प्रभाव अनिवार्य है।... सुबह का सारा दृश्य फिर एक बार मस्तिष्क के सामने घूम गया। मुझे हँसी आ गई। मैंने समझा था कि वेंकट मेरे और रक्षा के बीच प्रेमाकर्षण का कोई बड़ा रहस्य उचारने जा रहा था। उस समय प्रतीक्षा की किसी चोटी पर पहुँच कर मैंने एक वैद्युत स्पर्श का अनुभव किया था। वह कितनी मज़ेदार बात थी। क्या सचमुच मैंने रक्षा के प्रति कोई बड़ा आकर्षण अनुभव किया था? कभी नहीं। लेकिन मेरी कल्पनाओं को वेंकट शायद उस समय देख रहा था। दूसरों के विचारों को तत्काल देख सकना कितनी वाहियात बात है। रक्षा के प्रति जिस प्रकार का आकर्षण मैंने अनुभव किया था वैसा आकर्षण सम्भवतः नये नगर में प्रत्येक पुरुष अपनी सम व्यस्क स्त्री के प्रति करेगा। ... सुबह के उस दृश्य का अन्त मेरी आंखों के सामने आकर टिक गया। रक्षा के आंसू—हरीश की शान्त, स्निग्ध दृष्टि — चौधरी का निर्विकार पर्यवेक्षण—वेंकटाचलम् का अचानक उठकर प्रस्थान और उस सभा का विसर्जन।... इसी क्रम में मैं बहुत देर तक इसी घटना की विचारधारा में बहता रहा। तीसरे पहर के अंत में राजा के आगमन ने मुझे उससे मुक्त किया।

"आज आप घर के बाहर निकलेंगे ही नहीं! आगे वाले घाट की सीढ़ियों पर हिमदा बीबी का व्याख्यान हो रहा है और आपको कुछ पता ही नही है।" उसने कहा।

हिमदा के व्याख्यान का आज कौन-सा प्रोग्राम था, मुझे मालूम नहीं था। राजा ने बताया कि शहर के कुछ लोग आये हुए हैं और वे द्वारिकापुरी वाले घाट पर एकत्र होकर हिमदा से बातचीत कर रहे हैं। उन लोगो मे कुछ मेरे मित्र भी हैं। लेकिन राजा इस समय मुझे वहाँ ले चलने का निमंत्रण देने नहीं, स्वयं कुछ बात करने मेरे पास आया था, उसने स्पष्ट किया।

"वेंकटाचलम्, हिमदा और मैमलकाय बजरंग के और उस लम्बे केश वाले तारकेश के भी व्याख्यान आपने इस सम्मेलन में सुने, पर राजा का भाषण सुनने का आपको अवसर नहीं मिला। निस्संदेह इससे आपको मेरे बारे में कुछ भ्रम ही हो सकता है।" राजा ने कहना प्रारम्भ किया।

मुझे उसके इस लम्बे वाक्य पर विशेषकर मैमलकाय बजरंग पर हँसी आ गई।

"तुम्हारा भाषण सुने बिना ही मैं जानता हूँ कि तुम उन में से किसी व्याख्यानदाता से कम नहीं हो और तुम्हारा अवसर शायद इस क्लब की संयोजित और भी बड़ी सभाओं में बोलने का ही आयगा। मैं समझता हूँ कि तुम अंग्रेज़ी भी बहुत काफ़ी जानते हो।"

"आपका अनुमान संतोषजनक है। लेकिन वैसा अवसर आने से पहले मैं कुछ आवश्यक बातें आपसे कह जाना चाहता हूँ। मुझे आज रात को ही यहाँ से चले जाना है और फिर मेरी आपकी भेंट अनिश्चित समय बाद भी हो सकती है।"

राजा की इस सूचना से मेरे हृदय पर एक सूक्ष्म आघात लगा—किसी निकट आत्मीय जन की विदाई का सा। मैं गम्भीर हो गया।

"तुम्हारे जाने का समाचार मुझे अप्रिय लग रहा है, फिर भी तुम्हें जाना तो होगा ही। मैं तुम्हारी बात सुनने के लिये उत्सुक हूँ।"

"इस संघटन की—क्षमा कीजिये, क्लब की—कार्यवाहियों में रोमान्स का पुट मैंने ही दिया है। अभिनय और प्रपंच के कौशल का पूरा सदुपयोग होना इसमें आवश्यक था। मनुष्य को आकर्षित और प्रेरित करने के लिये हमें अपनी सभी कलाओं का प्रयोग करना चाहिये। स्टूडियो में जाकर विविध प्रकार के खेल और भाव-दर्शन कर आने वाले या कल्पनाओं और विचारों द्वारा तरह-तरह के भाव-चित्र काग़ज़ पर उतारते रहने वाले लोग अपनी कला का चौथायी भी उपयोग नहीं करते। उन्हें जीवन के बीच में जाकर, जन-जन के सम्पर्क में आकर अपनी क्षमता का पूरा उपयोग करना चाहिये। क्या आप नहीं देख रहे हैं कि हमारी इस नीति और प्रणाली ने हमारे काम में कितनी जान डाल दी है?"

"मैं बड़े सम्मान के साथ यह देख रहा हूँ राजा, और तुम्हारे सम्बन्ध में जितना कुछ सोचता हूँ उसे कह नहीं सकता। रंजन जैसा कलाकार यदि आज स्टूडियो में ही बैठ कर गीत गा दिया करता और आगरे की गलियों में भिखारी का बाना पहन कर निकलता तो वह अपने नाम का चतुर्थांश केवल 'न' ही रह जाता। मैं स्वयं ही सोचने लगा हूँ कि यदि हमारे कलाकार अपनी कला का उपयोग केवल पैसा या नाम

कमाने तक ही सीमित न रख कर, समाज और उसके व्यक्तियों के साथ सीधे सम्पर्क के लिये करें तो उनकी कला सार्थक हो जाय। मैं समझता हूँ कि इस तरह की प्रेरणा तुम्हारे संघटन ने कुछ कलाकारों को दी है।"

"हमने इस प्रकार का काम प्रारम्भ किया है और देखा है कि यह काम बहुत अच्छे फल लाता है। पर कलाकार वर्ग के कम ही लोग ऐसे जन-सम्पर्क के लिये तैयार होते हैं। अधिकांश कलाकारों का कला-सौन्दर्य उनके मंच, स्टूडियो या रचनाओं से बाहर उनके दैनिक जीवन-सम्पर्क मे नही निकल पाता।" राजा ने गम्भीर होकर कहा।

"यह दयनीय है। फिर भी किसी हद तक तुम्हारे प्रयत्नों ने सफलता पाई है।" मैं पूरी बात सुनना चाहता था।

"आज के समूचे कलाकार वर्ग में, जिसमें आप कवियों, लेखकों, गायकों, चित्रकारों, वक्ताओं और अभिनेताओं की भी एक बड़ी संख्या को गिन सकते हैं, कम-से-कम दस प्रतिशत ऐसे हैं जो अपनी कला का उपयोग जन साधारण के सम्पर्क में कर सकते हैं। यदि उनमें से भी आधे, केवल पाँच प्रतिशत कलाकर इस काम के लिए जाग उठे तो वे समाज को आश्चर्यजनक गति से बदल सकते हैं। हमारे संघटन में जो पाँच-सात ऐसे कलाकार आ गये हैं, उनके काम के आधार पर ही मै यह बात कह रहा हूँ।"

"केवल पाँच-सात?" और मैने उसी क्षण कुछ सम्हल कर कहा, "मैं समझता हूँ कि यह संख्या तेज़ी से बढ़ने वाली होगी।"

"बढ़ने वाली?" राजा ने तत्परता के स्वर में कहा,

"हो सकता है बढ़ जाय, सम्भव है न भी बढ़े। इसका ठीक उत्तर वे कलाकार ही दे सकते हैं। यदि वे व्यक्तिगत रूप में केवल अपना काम ही कर रहे हैं तो यह संख्या नहीं बढ़ेगी; यदि स्वयं काम के साथ-साथ वे अपने जैसे दूसरों को भी तैयार कर रहे हैं तो बढ़ जायगी। मेरे लिए इस बढ़ने और न बढ़ने से कोई अन्तर नहीं पड़ता।"

"अपने लगाये या सींचे हुए पौदे को बढ़ता और फूलता-फलता देखने की अभिलाषा तुम्हारे मन में नहीं है?"

"अभिलाषा!" राजा ने व्यंग्य के स्वर में इस शब्द को दोहरा कर कहा, "अभिलाषा अविवाहित लड़कियों और कमज़ोर आदमियों की चीज़ है। वह मेरी और आपकी चीज़ नहीं है। आप थोड़ा ध्यान देकर इन बाहर के राजा और रावी के भीतर, भीतर के राजा और रावी को देखें तो यह बात स्पष्ट हो जायगी। हम अत्यन्त तीव्र गति से हर क्षण एक-एक नया पौदा लगा रहे हैं, फिर हम किस पौदे की बढ़ने और फलने की अभिलाषा कर सकते हैं? सुस्त और निकम्मे माली ही एक पौदा लगा कर, उसके फलने-फूलने की राह देखते हुए बैठ सकते हैं। हमें वैसी आशाएँ बाँधने की न फ़ुर्सत है, न आवश्यकता।" कहते-कहते राजा के चेहरे पर एक नई दीप्ति झलक उठी।

अनायास ही भीतर के राजा और भीतर के रावी तक उस क्षण मेरी दृष्टि घुस गई। अपनी चेतना के साधारण स्तर से कुछ ऊपर खिंच कर मैंने देखा कि वहाँ मैं और राजा एक दूसरे के विशेष सन्निकट थे। राजा का अभिप्राय मेरे मस्तिष्क पर उतर कर छा गया, उसकी सार्थकता को मैं देखने लगा। मौन, मैं उसी दर्शन में निमग्न हो गया।

"लेकिन इसका यह मतलब नहीं" राजा ने कुछ क्षण बाद फिर कहा, "कि गणित रेखाओं और फलित रूपों का कोई स्थान नहीं है। योजनाओं और उनकी प्रगति के सम्बन्ध में अनुमानों को आधार बनाये बिना तो कोई काम नहीं किया जा सकता। हमारे काम का भी हमारे मस्तिष्क में एक नक्शा है। उस नक्शे की कुछ रेखाएँ हमारे अनुमान से इधर-उधर भी जा सकती हैं। इन रेखाओं के जितने अधिक विन्दुओं में जितनी अधिक उपज शक्ति होगी उतना ही अधिक अच्छा है। उपजाऊ विन्दुओं का अभिप्राय यह है, कि कोई भी रेखा अपने किसी भी विन्दु से, किसी भी भिन्न दिशा में फूट निकले और वह प्रवाह पहले की दिशा में रुक कर दूसरी दिशा में बढ़ता हुआ दीख पड़े। छद्म कला द्वारा लोगों को माधुर्य और प्रेरणाएँ देने का जो काम हमने प्रारम्भ किया था वह सम्भव है, इसी रूप में बहुत आगे न बढ़े; क्योंकि उसी अभिप्राय की पूर्ति के लिए एक दूसरी दिशा खुलती हुई दीखने लगी है, और वह आपके द्वारा।"

"मेरे द्वारा!" मैंने आश्चर्य और असाध्य सम्मान की भावना से भर कर कहा, "मेरे द्वारा ऐसी कौन सी दिशा खुल रही है?"

"लोगों की अगले स्तर की चेतना के सीधे सम्पर्क में आने की। उसके लिए लोगों के आश्चर्यों और उनकी मध्य स्तर की आकांक्षाओं को जगाने और तृप्त करने की आवश्यकता न होगी।"

"लेकिन यह सब मैं कैसे करूँगा? मुझे तो अभी कोई बात दीख नहीं पड़ती। मैंने कहा।

"आप धीरे-धीरे उसे देखेंगे। आप उस काम को प्रारम्भ कर चुके हैं।"

"कैसे ? कौन से काम को ?" मेरा आश्चर्य बढ़ रहा था।

"मैं आपके उपन्यास की बात कह रहा हूँ।"

"उपन्यास ? क्या वह कोई इतनी बड़ी चीज़ होने जा रही है ? कैसे ? और फिर उसकी रचना में मेरा है ही क्या ?" मैं एक साथ पूछ गया।

"मैं उसी के सम्बन्ध में कुछ कहने इस समय आया हूँ। आपका यह उपन्यास, उपन्यास की दृष्टि से एक साधारण कोटि की रचना ही होगी और साधारणतया पाठकों को उसी श्रेणी का मनोरंजन और कुछ मानसिक उत्तेजना दे सकेगा। लेकिन वह कुछ ऐसे पाठकों के भी हाथ में पहुँचेगा जो उपन्यास के भीतर की मूर्ति को स्वयं सजीव करके उसके सम्मुख सम्पर्क में आयेंगे और उसके संसर्ग से अपने लिए नई मूर्तियों की सृष्टि करेंगे। उनकी मूर्तियाँ आपकी रचना से अधिक सुन्दर भी हो सकेंगी। उनमें से अधिकांश लोग हमारे नये नगर के निवासी होना भी पसंद करेंगे।"

"लेकिन उनके सामने वैसी पहली मूर्ति रखने का श्रेय तो मुझे ही प्राप्त होगा।" मैंने विनोद के स्वर में, फिर भी भीतर की अहं-कामना से प्रेरित होकर कहा।

"क्यों नहीं!" उसने भी वैसे ही उत्तर दिया, "आपका ईमान उस श्रेय में से वेंकट, राजा और हिमदा को भी अगर कुछ देना चाहेगा तो उस देने के बाद जो कुछ बचेगा वह आपका ही होगा।"

"इस उपन्यास के लिखने में मेरी सबसे बड़ी आन्तरिक

"लेकिन इसका यह मतलब नहीं" राजा ने कुछ क्षण बाद फिर कहा, "कि गणित रेखाओं और फलित रूपों का कोई स्थान नहीं है। योजनाओं और उनकी प्रगति के सम्बन्ध में अनुमानों को आधार बनाये बिना तो कोई काम नहीं किया जा सकता। हमारे काम का भी हमारे मस्तिष्क में एक नक्शा है। उस नक्शे की कुछ रेखाएँ हमारे अनुमान से इधर-उधर भी जा सकती हैं। इन रेखाओं के जितने अधिक विन्दुओं में जितनी अधिक उपज शक्ति होगी उतना ही अधिक अच्छा है। उपजाऊ विन्दुओं का अभिप्राय यह है, कि कोई भी रेखा अपने किसी भी विन्दु से, किसी भी भिन्न दिशा में फूट निकले और वह प्रवाह पहले की दिशा में रुक कर दूसरी दिशा में बढ़ता हुआ दीख पड़े। छद्म कला द्वारा लोगों को माधुर्य और प्रेरणाएँ देने का जो काम हमने प्रारम्भ किया था वह सम्भव है, इसी रूप में बहुत आगे न बढ़े; क्योंकि उसी अभिप्राय की पूर्ति के लिए एक दूसरी दिशा खुलती हुई दीखने लगी है, और वह आपके द्वारा।"

"मेरे द्वारा!" मैंने आश्चर्य और असाध्य सम्मान की भावना से भर कर कहा, "मेरे द्वारा ऐसी कौन सी दिशा खुल रही है?"

"लोगों की अगले स्तर की चेतना के सीधे सम्पर्क में आने की। उसके लिए लोगों के आश्चर्यों और उनकी मध्य स्तर की आकांक्षाओं को जगाने और तृप्त करने की आवश्यकता न होगी।"

"लेकिन यह सब मैं कैसे करूँगा? मुझे तो अभी कोई बात दीख नहीं पड़ती। मैंने कहा।

"आप धीरे-धीरे उसे देखेंगे। आप उस काम को प्रारम्भ कर चुके हैं।"

"कैसे ? कौन से काम को ?" मेरा आश्चर्य बढ़ रहा था।

"मैं आपके उपन्यास की बात कह रहा हूँ।"

"उपन्यास ? क्या वह कोई इतनी बड़ी चीज़ होने जा रही है ? कैसे ? और फिर उसकी रचना में मेरा है ही क्या ?" मैं एक साथ पूछ गया।

"मैं उसी के सम्बन्ध में कुछ कहने इस समय आया हूँ। आपका यह उपन्यास, उपन्यास की दृष्टि से एक साधारण कोटि की रचना ही होगी और साधारणतया पाठकों को उसी श्रेणी का मनोरंजन और कुछ मानसिक उत्तेजना दे सकेगा। लेकिन वह कुछ ऐसे पाठकों के भी हाथ में पहुँचेगा जो उपन्यास के भीतर की मूर्ति को स्वयं सजीव करके उसके सम्मुख सम्पर्क में आयेंगे और उसके संसर्ग से अपने लिए नई मूर्तियों की सृष्टि करेंगे। उनकी मूर्तियाँ आपकी रचना से अधिक सुन्दर भी हो सकेंगी। उनमें से अधिकांश लोग हमारे नये नगर के निवासी होना भी पसंद करेंगे।"

"लेकिन उनके सामने वैसी पहली मूर्ति रखने का श्रेय तो मुझे ही प्राप्त होगा।" मैंने विनोद के स्वर में, फिर भी भीतर की अहं-कामना से प्रेरित होकर कहा।

"क्यों नहीं!" उसने भी वैसे ही उत्तर दिया, "आपका ईमान उस श्रेय में से वेंकट, राजा और हिमदा को भी अगर कुछ देना चाहेगा तो उस देने के बाद जो कुछ बचेगा वह आपका ही होगा।"

"इस उपन्यास के लिखने में मेरी सबसे बड़ी आन्तरिक

कठिनाई यह है कि तुम्हारी और वेंकट की बातों के अनुसार मुझे अपना जो रूप चित्रित करना पड़ेगा वह बहुत अहम्मन्यता-पूर्ण और इसीलिए संकीर्ण दीख पड़ेगा—जैसे मै उन पर अपनी कोई चीज़ लादना चाहता हूँ। उसके भीतर घुस कर लोग हमारी बात तक पहुँचने के लिए तैयार न होंगे।" मैने अब अपनी बात कही।

"इसकी चर्चा आप वेंकटाचलम् से भी कर चुके हैं। लेकिन सभी लोगों के बारे में आपकी ऐसी पूर्व धारणा ज़्यादती है। क्या आप नहीं देख पाते कि आपके पाठकों में कुछ लोग ऐसे अवश्य होंगे जो आपकी दीखने वाली अहम्मन्यता और संकीर्णता को एक ऊपरी आवरण या अधिक-से-अधिक आप की एक विवशता समझ कर उसके भीतर की वस्तु को देख सकेंगे और उसका उचित उपयोग भी करेंगे?" उसने कहा।

"हो सकता है। तब फिर इस उपन्यास की अगली सम्भावनाएँ और क्या है?"

"आपकी यह रचना हमारे नये नगर की पहली खुली विज्ञप्ति होगी और वह एक नये ढग पर उस नगर के लिए उपयुक्त निवासियों का चयन प्रारम्भ कर देगी। समय भी आ गया है कि लोग एक दूसरे के अधिक समीप आने की प्रेरणाएँ अपने भीतर अनुभव करने लगे हैं। उन्हें लगने लगा है कि मनुष्य का सबसे बड़ा सुख किसी ज्ञात या अज्ञात रूप मे दूसरे मनुष्य के निकट सम्पर्क में—आप कहना पसंद करेंगे नग्न सम्पर्क में—ही है। आपका यह उपन्यास इसी दिशा मे कुछ प्रेरणा उन्हें देगा।"

"और मेरी सम्भावनाएँ? क्या इस सिलसिले में मेरे ए

बड़ा योगी, महापुरुष या कम-से-कम एक महान् साहित्यकार होने की भी कुछ सम्भावना है ?"

राजा मुस्कराया और बोला :

"आपको योग की दीक्षा देने की बात कल रात वेंकट दादा कर रहे थे। क्लेयरवाएंस और क्लेयरआडिएंस—आप इन्हें समझते हैं, आँख और कान की साधारण पहुँच से बाहर की वस्तुओं को देखने और सुनने की योगिक सिद्धियों—से वह अक्सर काम लेते हैं, और ये ही दोनों सिद्धियाँ वे प्रारम्भ में आपको भी देने की बात कह रहे थे। आप स्वीकार करेंगे तो शायद कल ही वह आपके साथ इसका प्रयोग करना चाहते हैं।"

"यह मेरे लिये एक महान् संदेश है" मैंने भीतर से फूल कर कहा, "मैं अपने विकास की अलौकिक दिशा को देख सकता हूँ।"

"लेकिन लौकिक दिशाओं में आपके विकास की हमें अधिक उत्सुकता है। वही आपके और हम सबके अधिक काम आयेगा।"

"हम जो काम करने जा रहे हैं उसकी जड़ क्या अलौकिक शक्तियों और प्रेरणाओं में ही नहीं है? क्या इन अलौकिक शक्तियों के कारण ही वेंकटाचलम् का स्थान और उपयोग हम सब से ऊंचा नहीं है? अलौकिकता के सम्पर्क के कारण ही क्या हमारा यह कार्य संसार का एक महान् और अद्वितीय आन्दोलन नहीं है ?"

"महान् और अद्वितीय ! क्यों नहीं, यह अवश्य महान् और अद्वितीय है और नव-समाज के एक स्रष्टा और साहित्य-

कार के रूप में इस आन्दोलन के सहयोगी आप भी बहुत महान् और अद्वितीय हैं। इतनी ही महान् और अद्वितीय इस पेड़ की यह शाखा भी है" राजा ने छत पर हमारे सामने झूलती हुई इमली की एक बहुत पतली टहनी की ओर संकेत करके कहा, "यह दर्जनों सींकों और सैकड़ों पत्तियों को अपने ऊपर धारण किये हुए हैं और उन सबकी सृष्टा और जीवन-दाता है। लेकिन यह समूचा वृक्ष और उसे धारण करने वाला इसका मोटा तना भी महान् और अद्वितीय है।"

"तुम्हारा मतलब है कि इस विशाल मानव-परिवार और उसके आन्दोलनों में हमारा स्थान बहुत क्षुद्र है।" मैंने कहा।

"यह आपके देखने की बात है। हमारे छोटे-से समाज के आन्दोलन में वेंकटाचलम् का स्थान अवश्य एक कप्तान का है; लेकिन यह हम सब की तुलनात्मक जांच का कोई माप-दंड नहीं है। और लौकिक-अलौकिक की बात आप कहते हैं तो खुली आंखों से देखने पर तो लौकिक की जड़ अलौकिक में नहीं बल्कि अलौकिक की जड़ ही लौकिक में है।"

"तब क्या कोई ऐसा लौकिक आन्दोलन—मेरा मतलब, मनुष्य के समाज और बस्तियों में साधारण मनुष्यों की आंखों के सामने होने वाला आन्दोलन—अभी चल रहा है, या इसके कुछ पहले चल चुका है, जिसका एक आंशिक रूप हम अपने इस नये नगर के आन्दोलन को कह सकें? क्या ऐसा कोई महान् आन्दोलन-कर्ता हमारे इसी युग में मौजूद है, या रहा है?"

"निस्संदेह वैसा आन्दोलन और उसका जन्मदाता हमारे इस युग में अब भी मौजूद है। लेकिन क्या आप मुझे आगे

ऐसे प्रश्नों में घसीट ले जाना चाहते हैं जिनके उत्तर देने से मुझे इनकार करना पड़े या जो मेरी जानकारी से बाहर हों? मैं जो विशेष बात आपसे कहने आया था वह अभी तक नहीं कह पाया हूँ।"

"तुम्हें वह पहले कहनी चाहिए थी। कहो न।" मैंने अपनी जिज्ञासाओं को बरबस समेट कर कहा।

"अपने इस आन्दोलन में रोमांस का पुट डालने की विशेष रुचि मेरी रही है और वही बात मैं आपसे भी कहना चाहता हूँ। आप अपनी कला को, कल्पना और साहित्य-सृजन को, कलम और कागज के बीच में ही दबा कर न रक्खें, बल्कि जन-जन के सम्पर्क में खुले हाथों उसका व्यय करें। रोमांस और नये निर्माण की प्रेरणाओं को केवल अपनी पुस्तकों और मौखिक वार्तालापों में ही न बरतें, बल्कि उन्हें अपने समूचे व्यवहार के काम में लायें। यह दूसरी चीज़ जीवन भर आपके साथ रहेगी, और पहली तो कभी भी समाप्त हो सकती है।"

"तुम्हारी यह मांग विशेष सार्थक है; मुझे स्वीकार है" मैंने सोचते हुए कहा।

"यह आपको पसंद भी है, यद्यपि हमारे इस आन्दोलन में वैसे रोमांस का स्थान अब उतना नहीं रह सकेगा और आपभी उसका अधिक उपयोग नहीं करना चाहेंगे। फिर भी अपने विभाग की पुष्टि तो मुझे करनी ही है।"

जब तक इस आन्दोलन में तुम्हारा स्थान है, तब तक रोमांस का अंश इसमें से घट ही कैसे सकता है!"

"मेरा काम लगभग पूरा हो चुका है" राजा के

स्वर में मैंने एक विशेष भारीपन लक्ष्य किया, "और अब इस आन्दोलन को एक नया मोड़ लेकर बहना है। यह मेरा अठारहवाँ साल चल रहा है।"

"तुम्हारा मतलब?" मैंने उसके अन्तिम वाक्य का अभिप्राय न समझ पाकर पूछा।

"आज से लगभग तेईस सौ वर्ष पहले वृन्दावन में एक बालक था। वह असाधारण सुन्दर था, वह असाधारण रूप से मोहक स्वर में बांसुरी बजाता था। अपने रूप और आकर्षण में उसने सभी को बाँध लिया था। उस समय के जन्म में मैं भी उसके साथ था और उस पर तन-मन से मोहित था। सत्रह वर्ष की आयु में उस बालक की मृत्यु हो गई। तब से सत्रह वर्ष की आयु में मर जाना मुझे भी बहुत प्रिय हो गया है।" कहते-कहते उसका स्वर और भी बोझिल और सकरुण हो गया।

राजा का रूप और आकर्षण उस क्षण एक तीव्र करुणा की मुद्रा में निखर उठा। इतना सुन्दर और उदास चेहरा उसका मैंने कभी नहीं देखा था। कुछ देर पहले भीतरी राजा और रावी की बात कहते हुए उसने उत्कर्ष और उल्लास के उज्वल पीत प्रकाश में मुझे जैसे नहला दिया था, और अब यह बात कह कर एक अस्पष्ट, फिर भी असह्य व्यथा के नील सागर में डुबा दिया। मुझे लगा, मानो मेरा कोई अभिन्न प्रियजन मेरे सामने खड़ा चिर-विछोह के वचन कह रहा है।

उस वेदना के आघात से सावधान होने पर मैंने अपने आपको सम्हालते हुए पूछा: "तुम यह किस बालक की बात कहरहे हो? क्या वृन्दावन के लीला-नायक बाल कृष्ण की ही

नहीं? लेकिन केवल तेईस सौ वर्ष पहले, और सिर्फ़ सत्रह वर्ष की आयु में मर जाने वाले! यह क्या किसी अन्य, इतिहास और पुराण के अपरिचित बालक की बात है?"

"आप के इतिहासकारों और पुराणों के अर्थकारों के सामने जिन बातों की व्याख्या और प्रमाणों में हम लोग अभी नहीं जा सकते उनका नाम भी हमें अभी न लेना चाहिए। कई काम करने हैं, मुझे अब जाना चाहिए।" राजा ने चलने के लिए उठते हुए कहा।

उसके अभिवादन का उत्तर मैंने दे दिया और वह चला गया। लेकिन वह ज़िस असह्य वियोग-सरीखी वेदना का अछोर पर्वत मेरे सीने पर रख गया, वह मेरे जीवन का पहला ही उतना बड़ा अनुभव था!

[२०]

उस दिन जागने के पूरे समय और सम्भवतः रात को भी राजा की बात का बोझ मेरे सीने पर लदा रहा। अगली सुबह जागने पर ही मुझे उससे निवृत्ति का अनुभव हुआ। तब मैंने सोचा, राजा ने मुझसे वैसी बात क्यों कही? क्या सचमुच उसकी मृत्यु का समय आ गया है? और यदि आ भी गया है तो इस बात को ऐसी तीव्रता के साथ मेरे सामने रखने की क्या आवश्यकता थी? इस राजा में भी लोगों की भावना के सागर में डुबाने और उभारने की अद्भुत शक्ति है। और कुछ नहीं, तो उसकी कलकी बात उसकी इस शक्ति की परिचायिका तो है ही। ऐसी बात सोच कर मेरे मन को एक नया संतोष भी हुआ, जैसा अपने किसी स्वजन की विशेष क्षमता को देखकर होना स्वाभाविक है।

उस सुबह मैं स्नानादि से जल्द ही निवृत्त होकर राजगुफा में पहुँचा। देखा, वेंकटाचलम् के पास एक और महाशय बैठे बात कर रहे हैं।

"इनका नाम लाला नवलकिशोर है और यह आगरे में ही रहते हैं। हमारे नये नगर के लिए यह एक लाख रुपया देना चाहते हैं।" वेंकटाचलम् ने मुझे उनका और उनकी बात का परिचय दिया।

"मैंने आपको एक दिन किनारी बाजार के बड़े होटल में देखा है" मैंने अपनी स्मृति का साथ पाकर उन्हें पहचानते हुए कहा, "उस शाम आपकी एक भिखारी लड़के से कुछ बात-चीत हो रही थी।"

"ज़रूर देखा था बाबूजी" लालाजी का चेहरा कहते-कहते खिल गया, "वह भिखारी तो मेरे लिए भगवान् हो गया। कई दिन की तलाश के बाद उसे खोज पाया। इतनी उमर में इतना ज्ञान। उसने मेरी आँखें खोल दीं। परसों मैं आपकी मीटिंग में भी हाजिर था। आप जो नया सहर बसाना चाहते हैं उसी में चलकर मैं भी रहना चाहता हूँ। यहाँ तो सारी दुनिया नोचने-खाने वाली है। पिता ने पाँच लाख की जायदाद छोड़ी थी लेकिन उसके मरते ही यारों ने मुकदमे लगा-लगा कर आधी से जादा खतम-करादी। फिर भी भगवान् की दया से खाने भर को बच गया है। डेढ़ लाख रुपया बंक में जमा है और एक लाख की जायदाद बची होगी। उस रक़म में से एक लाख रुपया स्वामीजी के चरनों में भेंट करना चाहता हूँ। बाक़ी बचा बच्चों के काम के लिए बहुत है। पूत सपूत तो क्यों धन संचय, पूत कपूत तो क्यों धन संचय। क्यों न बाबूजी?"

"आप ठीक कहते हैं लाला जी" मैंने उत्तर दे दिया। मुझे यह देखकर आश्चर्य हो रहा था कि यह वही लालाजी थे जिनके साथ उस दिन राजा की विशेष मनोरंजक झड़प हुई थी और जिन्हें राजा ने तोंद फूटने का आशीर्वाद दिया था।

"उस नये सहर में" वह कह रहे थे, "जहां कोई किसी को लूटे-खसोटेगा नहीं, जहां सब अपने अपने धरम और अपनी अपनी मौज में सुतंतर हो कर रहेंगे, ऐसे सहर में तो एक धोती पहन कर और रूखी रोटी-दाल खाकर रहने के लिए तैयार हूँ। बेफिकरी से बैठकर भगवान का भजन तो करूँगा। यहां तो कमबखत दो मुकदमे इस बखत भी मेरी जान को लगे हुए हैं, एक इनकम टैक्स का एक बिलैक का। ये भी दस बीस हजार रुपया खा जायंगे।"

"आपकी भेंट और सभी बातें हमें मंज़ूर हैं। अबकी बार जब हम उस ज़मीन पर जायंगे तो आपको भी इत्तला देंगे और साथ ले चलेंगे। तभी ज़रूरत के मुताबिक आपसे रुपया भी ले लेंगे।" वेंकटाचलम् ने उससे कहा।

"तो महाराज, यह कब तक होगा? मैं तो बहुत जल्दी चाहता हूँ।"

"आपके मुक़दमे खतम होने से पहले ही। अभी आप जायें। हम इसी हफ़्ते के भीतर आपको एक बार और बुलाकर आपसे बातचीत करेंगे।"

लालाजी वेंकटाचलम् को दण्डवत् प्रणाम करके चले गये। मैंने अनुमान लगाया, उनकी बातचीत काफ़ी देर पहले से चल रही थी।

"यह लालाजी कल दोपहर को भी मेरे पास आये थे।

यह एक लाख रुपया देना चाहते हैं। इनकी शर्त यह है कि उस नगर का नाम नवलपूर या नवल नगर रख दिया जाय, और यदि इतना न हो सके तो उसके एक मुहल्ले या सड़क का ही नाम उनके नाम पर ऐसा ही कुछ रख दिया जाय।" उनके चले जाने पर वेंकटाचलम् ने कहा।

"और आपने इनकी यह शर्त मान ली है।" मैंने कुछ असंतोष के साथ कहा।

"आपको यह बात नापसंद है, लेकिन इसमें हर्ज ही क्या है? हमारा कोई सहयोगी यदि अपने सहयोग के बदले थोड़ी-सी नामवरी चाहता है तो उसमें हमें क्यों आपत्ति होनी चाहिए? यह तो बहुत सरल, स्वभाविक-सी बात है।"

"लेकिन पैसे के द्वारा इस तरह के सम्मान का सौदा क्या हमारे नये नगर में भी वैसी ही ईर्ष्या, हानिकर प्रतियोगिता और अनुचित विषमता न उत्पन्न करेगा जैसाकि आज के समाज का अभिशाप बना हुआ है?" मैंने कुछ और भी तीव्र होकर कहा।

"इस तरह का सम्मान हमारे नगर में सब से सस्ती वस्तु होगी। ऐसे सम्मान की कुछ पुराने लोगों के अतिरिक्त कोई परवाह नहीं करेगा। थोड़े से आर्थिक सहयोग के बदले हम बड़ी खुशी से ऐसा सम्मान बेचना पसंद करेंगे।"

वेंकट की बात अब मुझे कुछ जँचती-सी जान पड़ी। क्षण भर रुक कर मैंने कहा :

"तब शायद आप उस नगर की किसी गली का नाम नवल गली रख देंगे?"

"गली का क्यों, हम उस नगर का ही नाम उसके नाम

पैर रखेंगे। नवल नगर नहीं तो नया नगर सही। दोनों का अर्थ एक ही है।"

मुझे हँसी आ गई। "इस तरह आप एक सीधेसादे आदमी को उल्लू बनायेंगे। आप जैसे नीति-विशारदों की नीति और इन जैसे अनधिकारी नाम के भूखों की भूख का भी स्थान उस नये नगर में रहेगा।"

"आप इसे एक ओछी नीति और उसे एक गन्दी भूख मान रहे हैं। लेकिन ये दोनों आपकी भूलें हैं। आप सोचेंगे तो देखेंगे कि ये वैसी कुछ भी नहीं हैं।"

"सम्भव है, मेरी धारणा भूल पर ही हो। लेकिन उस दशा में वह नया नगर छंगामल लेनों, परसादीलाल रोडों और नौबतराय गंजों से भर जायगा।"

"ऐसा नहीं होगा। इस तरह के दो-चार नाम यदि हमें रखने भी पड़ेंगे तो दस-बीस या पचास वर्ष बाद या उस व्यक्ति की मृत्यु के बाद हम आवश्यकतानुसार उन्हें बदल देंगे। हमारी व्यवस्थापिका सभा को ऐसा अधिकार और सभी को इस का ज्ञान सदैव रहेगा।"

इसी समय प्रयाग के मेरे एक मित्र सपत्नीक मुझे खोजते हुए वहाँ आ पहुँचे। साहित्य और साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में उनके प्रति मेरे हृदय में बड़ा सम्मान था और उन्होंने मेरे लिए बहुत कुछ किया भी था। उन्हें देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई।

"हम आपके घर पर सामान रख कर सीधे यहीं चले आये हैं। हमारे यहां आने से स्वामीजी का कुछ हर्ज तो नहीं हुआ?" प्रारंभिक स्वागत-अभिवादन-वार्ता के बाद उन्होने कहा।

"आपको यहां देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता है।" वेंकटाचलम् ने स्नेहयुक्त बड़प्पन के स्वर में कह कर उनका समाधान किया।

अपने इन मित्र को वेंकटाचलम् का और इन मित्र का वेंकटाचलम् को मैंने परिचय दिया और सम्मेलन की संक्षिप्त बात बताई। मित्र ने अपनी नई पत्नी रजनी का भी हमें परिचय दिया। पहली बार ही मैंने उसे देखा था।

"यह आपकी बहुत बड़ी मूक प्रशंसिका हैं। लेकिन अब मूक क्यों, अब तो इनकी वह प्रशंसा सवाच हो उठी है। आपकी कहानी-कला पर इन्होंने एक लेख लिखा है जो अगले महीने छप जायगा। इस साल हिन्दी में एम्. ए. का फ़ाइनल कर रही हैं।"

मैंने इस तरुणी की ओर देखा। सुन्दर, सुचेष्ट और आंखों में भावुकता की लाज लिये वह मुझे बहुत अच्छी लगी। सच-मुच उसे देखकर मुझे बड़ा सुख मिला।

मैं उससे कुछ कहने को ही था कि अनायास नींद का-सा एक झोंका मुझे आया और दूसरे ही क्षण सावधान होकर मैंने मध्यम स्वर में उसे कहते सुना :

"वह लेख! मैंने उसे फाड़ कर फेंक दिया है। यही है वह रावी! मैं इसे एक सहृदय और ऊंचा कलाकार समझती थी। लेकिन इसने मेरे साथ कौन-सी शत्रुता निकाली है? मेरे नाम को और मुझे अपमानित करने का इसने कितना घृणित प्रयत्न किया है! इसने किस अभिप्राय से वह कहानी लिखी है? रजनी का एक सौ चौहत्तरवाँ पति! रात को ट्रेन में ही मैंने उस संग्रह में यह कहानी पढ़ी है। कालेज के दिनों में कुछ दुष्ट लड़कों ने मेरी जो बदनामी उड़ाई थी उसकी चर्चा इसने सुनी

होगी। दूसरे की ज़रा-सी बात को लेकर किसी निर्दोष असहाय की हत्या ही कर डालना क्या आज के कहानी लेखकों की सहृदयता है ? ऐसी शिकायत मुझे और किसी लेखक से तो अभी तक हुई नहीं। मैं इस कहानी की चर्चा अपने पति से करूंगी, कहानी उन्हें दिखाऊंगी। लेकिन क्या वैसा करना अभी ठीक होगा ? नरोंमे राक्षस भी होते हैं। जी चाहता है किसी बहाने आज ही लौट चलें। यह न जाने और क्या बखेड़े खड़े करदे। देखने में यह कैसा भला आदमी मालूम होता है !"

मेरा माथा घूम गया। मेरी आँखों के सामने इस तरुणी का चेहरा और कानों में इसके शब्दों के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। मैंने चाहा कि कुछ पूछूँ-कहूँ; पर उसी क्षण उसका चेहरा मेरी आँखों से ओझल हो गया और वेंकटा-चलम् को मैंने कहते सुना :

"सावधान ! अभी कुछ मत कहना। आपने उसके मन में उठते हुये विचारों को पढ़ा है, सावधान !"

और इसीके साथ वहाँ का सारा दृश्य मेरे सामने फिर खुल गया। मित्र की पत्नी की आँखों में मैंने एक गहरी दृष्टि डाली, जिसका उत्तर उसने लाज और आदर-सूचक मुस्कराहट से ही दिया; पर उसकी कृत्रिमता और उसके पीछे का रोष मुझसे अब छिपा न रहा।

मूर्ख लड़की ! मैं क्या जानता था कि इसका नाम रजनी है और अपनी कहानी के वैसे किसी पात्र का नाम रजनी मुझे न रखना चाहिये। मुझे अभी तक इस स्त्री की जानकारी और इससे मतलब ही क्या था। यह एम. ए. की लड़कियों की

बुद्धि है। दुनिया में सैकड़ों रजमियाँ होंगी। इसे उस कहानी को पढ़कर ऐसी चिढ़ क्यों पैदा हुई है? मुझे इस तरुणी पर क्रोध आ गया; लेकिन मै इस पर क्रोध भी क्यों करूँ? यह इसकी नादानी है। मेरे हाथों—भले ही अनजान में—इसके हृदय को चोट पहुँची है। उसने मेरी क़दर की है और आज मेरी मेहमान भी है। मेरी लेखनी से उसे चोट पहुँचाने वाली सामग्री निकली, इसका मुझे दुःख है। क्या मै इसका किसी तरह तोष नहीं कर सकता? मै इसे सब बात समझा दूँगा। लेकिन क्या भरोसा कि यह मेरी व्याख्या पर विश्वास कर ही लेगी! इसके कालेज-जीवन में शायद कुछ प्रेम-कथा चल चुकी है। यह कैसी विडम्बना है।······

"आप कुछ आवश्यक परामर्श कर रहे थे" मेरे अभ्यागत मित्र ने सम्भवतः वहाँ के विलम्बित मौन को लक्ष्य कर मेरी विचारधारा भंग की, "आप कहें तो हम लोग आपके कमरे में चलें; आप यहाँ से निवृत्त होकर आ जाइयेगा।"

"हाँ, आप इनकी सुविधा का प्रबन्ध करके थोड़ी देर के लिए आ जाइयेगा। आज की डाक में शायद आपके काम की कुछ बातें होंगी।" वेंकटाचलम् ने मुझसे कहा और मैं अपने मेहमानों को लेकर चल दिया।

उनके लिये आवश्यक प्रबन्ध करके मै शीघ्र ही राजगुफ़ा को लौट आया। इस अतीव प्रिय स्वागत के अवसर पर इस सुन्दरी अतिथि का वह कठोर संदेह मेरे सुख में एक अत्यन्त कटु रस की तरह आ घुला था और उसे मैं किसी प्रकार निकाल नहीं पाता था।

"यह योग का एक प्रकरण रहा" वेंकटाचलम् ने मुझे

देखते ही कहा, "मैंने अपने योगबल से आपको दूसरे के विचारों को पढ़ने का एक अवसर दिया है। क्या आप इस योग-सिद्धि को ग्रहण करना स्वीकार करेंगे? इसे पाकर आप अपना मानसिक स्वास्थ्य, प्रसन्नता और अलौकिक शिष्टाचार बनाये रह सकेंगे? इस सिद्धि के साथ आप ऐसा न कर सके तो अपनी बहुत बड़ी हानि और समाज का बहुत बड़ा अपराध करेंगे।"

"मैंने आपका संकेत देख लिया है और मैं इसका भार उठाने के लिये तैयार नहीं हूँ।" मैंने कहा।

"आपने ठीक देख लिया है। ऐसी योग-सिद्धियाँ बाहर से देखने पर जैसी आकर्षक और स्वार्थ-सुविधा-जनक जान पड़ती हैं वैसी नहीं हैं। इनका उत्तरदायित्व और बोझ बहुत बड़ा हैं। इसकी प्राप्ति तभी उपयोगी है जब आप अपने मन को इतना साध लें कि किसी के भीतर की वस्तु को देख कर उससे अप्रभावित रह सकें और उसके बाह्य व्यवहारों का प्रतिकार ठीक इस प्रकार कर सकें जैसे आपने भीतर की वस्तु को देखा ही न हो। इन सिद्धियों के मार्ग के संकटों से बचने के लिये यह अनिवार्य रूप में आवश्यक है। आप चाहें तो मैं इसी समय इस सिद्धि का पहला पाठ आपको देने के लिये तैयार हूँ।"

"आपकी बात मैंने स्पष्ट रूप में देख ली है और समझ लिया है कि ऐसी शक्तियों की कामना मेरी असामयिक और अनधिकार कामना है। अभी इनकी प्राप्ति में मेरा हित नहीं, अहित ही है।"

"तो इस प्रदर्शन में मैं सफल हो गया हूँ" वेंकटाचलम् ने

मुस्कराते हुए कहा, "और इससे आपको जो कष्ट हुआ है उसे दूर करने का भार मुझ पर ही है। मैं आपकी अतिथि उस लड़की के मस्तिष्क में कुछ सुझाव डाल कर उसके मन से वह क्षोभ निकाल देने का प्रयत्न करूँगा। वह आपको क्षमा कर देगी और यह भी समझ लेगी कि आपकी उस कहानी द्वारा उसकी किसी प्रकार की भी क्षति या मानहानि नहीं हुई है। वह अपनी मूर्खता अनुभव कर लेगी। मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, यद्यपि ऐसा करना मेरी ओर से एक अनुचित हस्त-क्षेप और दुष्कर्म होगा। फिर भी मैं उसका बोझ अपने ऊपर उठाऊँगा।"

"मेरी एक कठिन चिन्ता मिट जायगी और मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँगा।" मैंने कहा।

"मुझे जो थोड़ी-सी मानसिक सिद्धियाँ—आप उन्हें योग सिद्धियाँ कहते हैं—प्राप्त हैं और जिनका मैं कभी-कभी उपयोग भी करता हूँ वे हमारे व्यावहारिक जीवन के लिए बिलकुल आवश्यक नहीं हैं। वे हमें कुछ साधारण-सी सुविधाएँ कभी-कभी दे सकती हैं पर उनके ख़तरे बहुत बड़े हैं। हमारी वर्त-मान स्तर की चेतना में उनका उपयोग ऐसा ही है जैसे किसी साधारण बल के आदमी को एक बादाम तोड़ने के लिए ढाई मन का हथौड़ा दे दिया जाय। राजामंडी स्टेशन पर गाड़ियों के लेट आनेकी सूचना देने वाले बोर्ड के सामने खड़े हुए किसी व्यक्ति के मस्तिष्क को वहाँ बैठे-बैठे पढ़कर यदि मैं यह जान लेता हूँ कि अमुक गाड़ी आज साढ़े तीन घंटे लेट है, तो उससे मेरी कितनी बड़ी बचत हो जाती है! जितनी बड़ी शक्ति का व्यय करके यह बचत की जाती है, उसे

देखते हुए यह कोई बचत नहीं है। मेरे इन यौगिक चमत्कारों का मूल्य अधिक-से-अधिक आपके समय के एक चौथाई मूल्य के बराबर है। अपने ऐसे योग-चमत्कार द्वारा मैं एक घंटे की बातचीत को प्रायः पौन घंटे में समाप्त कर लेता हूँ, जब कि उस वार्तालाप में आपसे प्रश्न न पूछ कर आपके उत्तर मैं स्वयं ही प्रकट कर देता हूँ। ऐसी बातचीत में अधिक-से-अधिक एक चौथाई समय की बचत हो जाती है।"

वेंकटाचलम् द्वारा अपने योग-बल के इस मूल्यांकन पर मुझे हँसी आ गई और उसकी सजग विनम्रता पर श्रद्धा भी बढ़ गई।

"मैं जो बात बार-बार आपके मन पर अंकित करना चाहता हूँ वह यही है कि योग और चमत्कार की सिद्धियों का हमारे जीवन में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है और उनके बिना भी हमारा काम अच्छी तरह चल सकता है। इन वस्तुओं के प्रति कुतूहल, श्रद्धा और निर्भरता की भावना मनुष्य का बहुत अहित करती है। हमने जो काम उठाया है उसमें यदि कहीं-कहीं इन चीज़ों का उपयोग दीख पड़े तो यह न समझें कि इनके बिना ये काम हो ही नहीं सकते थे। मैं फूँक मार कर जलते दीपक की लौ को बुझा देता हूँ तो आप उस पर लोहे का चिमटा रख कर भी उसे बुझा सकते हैं। मनुष्य की सब से बड़ी सिद्धि और शक्ति अपने व्यक्तित्व की सरलतम अवस्था को पहचान लेने में है, और यह पहचान उसे अपने लौकिक जीवन के विचारों और कामनाओं को निष्पक्ष और सहज उत्सुक दृष्टि से देखने से प्राप्त हो सकती है। नये नगर के निर्माण और बसाने के लिए हमें विलक्षण योग-सम्पन्न या

बहुत बड़े और बहुत अच्छे लोगों की नहीं, जीवन की सरलता की ओर बढ़ सकने वाले लोंगो की ही आवश्यकता है। क्योंकि ऐसे ही लोग सर्वोत्कृष्ट श्रेणी के लोग हो सकते हैं। नई मानव-चेतना ऐसे ही लोगों में निखर सकती है। मैं ये बातें इसलिए बता रहा हूँ कि आप अलौकिक दीखने वाले साधनों का गलत मूल्य लगा कर कभी उनके भाव या अभाव में विचलित या निराश न होने लगें।"

कुछ क्षण के लिए हम चुप हुए और इसी समय सामने से कैम्प का एक सदस्य आता दिखाई दिया। उसने आकर उस दिन की डाक वेंकटाचलम् के सामने रखदी। सौ से ऊपर चिट्ठियां और पाँच-छह अखबार थे। दो तीन चिट्ठयाँ उसमें से अलग छांट कर शेष की ओर संकेत करते हुए वेंकटाचलम् ने कहा :

"ये नये नगर में प्रवेश के लिए आगरे वालों के आवेदन पत्र हैं। बीस से ऊपर कल हाथोंहाथ आ चुके हैं और इसी सप्ताह के भीतर हम तीन हज़ार प्रवेश-पत्रों का अनुमान लगाते हैं।"

"तीन हज़ार!" मैंने साश्चर्य कहा "इतनी तो उस दिन की सभा में उपस्थिति भी नहीं थी। मुझे आश्चर्य है कि आपकी यह विज्ञप्ति इतनी आकर्षक और सफल कैसे हो रही है।"

"तीन हज़ार से अधिक परचे उस दिन लोग ले गये थे। अवश्य कुछ लोगों ने एक से अधिक परचे लिये हैं। दो सौ के लगभग कल ले गये हैं। आज के मनुष्यों में नये अनुभवों की रुचि बहुत कुछ दबी हुई है, फिर भी उन्हें दूर से झांक कर देखने का कुतूहल तो है ही। लोग देखना चाहते हैं, लेकिन

यदि देखने के लिए उन्हें घेरे के भीतर आना पड़े तो उनमें से अधिकांश बिना देखे लौट जायंगे। तीन हज़ार प्रार्थियों में से मुझे आशा है, पचास-साठ व्यक्ति उस नगर में बसने के लिए तैयार हो जायंगे। इतना ही हमारा अनुमान और आगरा जैसे नगर से आवश्यकता है।"

"यह सब हुआ तो मैं आपकी योजना को चमत्कारिक रूप में सफल मानूंगा। मैं अभी तक स्पष्ट रूप में नहीं समझ पाया कि नये नगर का कौन-सा आकर्षण कुछ लोगों को इतने बल के साथ अपनी ओर खींच लेगा और उसकी कौन-सी बाधा अधिकांश लोगों को उससे विमुख रक्खेगी। मैं समझता हूँ कि रोटी,कपड़ा और मकान की सुनिश्चित व्यवस्था और केवल अपनी रुचि का कार्य इच्छानुसार करने की स्वतन्त्रता ऐसे आकर्षण हैं जिनके द्वारा निम्न और मध्यम वित्त के अधिकांश अर्थ-संकट में ग्रस्त लोग उसमें आना चाहेंगे। वहाँ की सेक्स-सम्बन्धी उदारता से भी आकृष्ट होकर आज का अतृप्त युवावर्ग उसकी ओर विशेष रूप से अग्रसर होगा। दूसरी ओर धन, सम्पत्ति और परिवार के व्यक्तियों और उनकी भावनाओं पर अधिकार और संग्रह की प्रवृत्ति रखने वाले, तथा धर्म और आचार के सम्बन्ध में संकुचित, रूढ़ मान्यताएं रखने वाले भयवादी लोग ही उससे दूर रहना चाहेंगे। इस प्रकार के आकर्षण और विकर्षण से छंट कर जो लोग इस नई व्यवस्था में आना पसंद करेंगे वे, मुझे दीखता है, वे प्रायः नंगे, भूखे और छिछली उच्छृङ्खल विलासिता के प्यासे ही लोग होंगे।"

"लेकिन आपको उस नई व्यवस्था का कौन-सा आकर्षण अपनी ओर खींचता है? आप यह कैसे मान लेते हैं कि आप

के बराबर सुलझे और सुसंस्कृत लोगों की इस समाज में बहुत कमी होगी ? हमारी नई बस्ती का केन्द्रीय आकर्षण रोटी-कपड़े की निश्चिंतता, रुचिकर कार्य की स्वतन्त्रता और प्रिय-स्पर्शी शरीरों के आलिंगन में नहीं, बल्कि लोगों के उस पारस्परिक, निरावरण संसर्ग में है, जिसका मार्ग उन्हें वहाँ खुला दीखेगा। मानव अनुभूति का सब से बड़ा थ्रिल, सबसे बड़ा उल्लास दो व्यक्तियों के आवरणहीन मिलन में ही है। व्यक्तियों के इस पारस्परिक आकर्षण का पहला, चौड़ा फाटक सेक्स का आकर्षण है। लेकिन इस आकर्षण का यही एकमात्र द्वार नहीं है। बड़े फाटक को पार करने पर भी बिना कुछ अन्य द्वारों को पार किये, आप अपने प्रियजन के अन्तःपुर में उससे नहीं मिल सकते। और उस अन्तःपुर में, जहाँ तक मैंने समझा है, सेक्स का भेद नहीं रह जाता। मनुष्य और मनुष्य का आकर्षण बिना वैसे भेदभाव के ही चिरंतन है। मनुष्य को रोटी और मकान की नहीं, दूसरे मनुष्य की ही आवश्यकता है। यह कविता नहीं, विज्ञान की बात है। उचित परिस्थिति मिलने पर लोग इसे स्वयं सोच सकेंगे। उस मानव समाज की लोगों को कल्पना करने दीजिए, जिसमें शरीर का कुरूप पुरुष भी अपने नगर की रूपरानी से उसके रूप की कुछ भेंट मांग सकता है और निस्संदेह कुछ न कुछ पा भी सकता है; और इस ढंग से पा सकता है कि उससे उसका निज का रूप भी कुछ निखर उठे। उन्हें उस समाज की कल्पना करने दीजिए जिसमें राह का प्यादा कभी भी थकने पर शाह की सवारी में एक कोना पाने का आशापूर्वक प्रस्ताव कर सकता है। और तब वे कुछ अनुमान लगा सकेंगे

कि हमारे नये नगर का वास्तविक आकर्षण क्या होगा। आज के समाज में मनुष्यों की पीड़ा और अतृप्ति का एक बहुत भीतरी कारण यही है कि वे एक दूसरे से बहुत दूर—सभय, सशंक और केवल उनके ऊपरी मद्दे या कभी-कभी प्रलोभन-कारी आवरणों को देखने वाले—हो गये हैं। यही समाज के वर्तमान अंध-संघर्ष का कारण है। इसी कारण के निराकरण का हमने अपनी नई व्यवस्था में प्रबन्ध किया है। उसकी बारीकियों को लोग धीरे-धीरे उसे बरतने पर ही देख सकेंगे। नंगे, भूखे और विलासिता के प्यासे लोग उसमें कैसे आ सकेंगे जब कि रोटी और शरीर का आकर्षण इतना बड़ा आकर्षण नहीं है कि किसी को इतने भीतर तक खींच ला सके। जिसके पैर कीचड़ में सने हैं उसे मख़मल के फ़र्श पर चढ़ने की अपेक्षा नरम, सूखी मिट्टी पर ही अपने पाँव रखने में अधिक आराम मिलेगा। हाँ, यह बात हो सकती है कि जो लोग हमारी बस्ती में आयेंगे उनमें से अधिकांश, बाह्य परि-स्थितियों के कारण, भूखे और विलासितावादी ही दीख पड़ें। लेकिन थोड़े संकेत से ही वे अपने आपको बदल लेने की क्षमता रखने वाले होंगे।" वेंकटाचलम् ने कुछ असाधारण रूप में लम्बी व्याख्या दी।

"यह सब ठीक-ठीक जानने के लिए मुझे प्रतीक्षापूर्वक देखते ही चलना चाहिए" मैंने एक अखबार के पन्ने पलटते हुए वेंकटाचलम् का ही मन्तव्य दोहराया। अचानक मेरी दृष्टि दिल्ली के उस दैनिक पत्र में नगर के दैनिक उत्सवों वाले कालम पर पड़ी। आज शाम दिल्ली के प्लाज़ा थियेटर में उत्तरी भारत की प्रसिद्ध नर्तकी हिमदारानी का नृत्य-प्रदर्शन

होगा, एक विज्ञप्ति में मैंने पढ़ा। वह नोट मैंने वेंकटाचलम् के सामने बढ़ा दिया।

"हिमदा उत्तरी भारत की प्रसिद्ध नर्तकी है, यह मैं आज पहली बार सुन रहा हूँ। क्या उसने इस तरह के पब्लिक डांस दिये हैं?" मैंने पूछा।

"यह उसका पहला पब्लिक डांस है। प्रसिद्ध तो नहीं, पर कुछ बड़े नृत्य-निर्देशकों को हिमदा ने अपने नृत्य से चकित किया है। वह एक विशेष कुशल नर्तकी है।"

"जनता के सामने नृत्य का यह उसका पहला प्रयोग है। इस दिशा में बढ़ने का भी कुछ विशेष अभिप्राय होगा?" मैंने पूछा।

"है ही। उसे नई दिशाओं से अब अधिक-से-अधिक जनता के सम्पर्क में आना है और इसके लिए विज्ञापन और प्रसिद्धि प्रायः आवश्यक होते हैं। हिमदा और राजा पिछली रात ही दिल्ली गये हैं और आज हमारे पूरे कैम्प का प्रस्थान है।"

"आपका भी?" मैंने उस सूचना से कुछ सूनेपन का अनुभव करते हुए पूछा।

"मैं भी आज जाऊँगा" लेकिन इधर प्रायः आता ही रहूँगा। अपना उपन्यास पूरा करने के लिए अब आपको पूरा अवकाश मिलेगा।"

"अवकाश की नहीं, उसे पूरा करने के लिए मुझे अगली सामग्री की ही अधिक आवश्यकता है।" मैंने कहा।

"सामग्री की? वह तो आप को पूरी मिल चुकी है।"

"मैं नहीं समझता। नये नगर का जीवन और उसकी

परिस्थितियाँ कैसी होंगी और आज की मानसिकता में से किस प्रकार उसका विकास होगा, वह कुछ भी तो मैं अभी नहीं देख पाया हूँ।"

"उसे देख कर तो आप पाँच वर्ष बाद अपना दूसरा उपन्यास लिख सकेंगे। अभी जो कुछ आपने देखा है, वह भी अपने आप में पूरी वस्तु है।"

"मुझे लगता है कि वह पूरी वस्तु का पूर्वार्द्धमात्र होगा। मेरे पाठकों को उससे संतोष नहीं होगा—मुझे ही नहीं होगा।"

"हम आपके पाठकों को संतोष नहीं देना चाहते, जिज्ञासा देना चाहते हैं। जिज्ञासा के बिना संतोष अजीर्ण और मन्दाग्नि ही उत्पन्न करेगा।"

"फिर भी बिना उसमें आगे की कुछ और झांकी दिये मेरी पुस्तक का नाम सार्थक नहीं होगा। मैंने उसका नाम 'नया नगर' सोचा है।"

"आपको भी अपने उपन्यास की ही इतनी चिन्ता है" वेंकटाचलम् ने कुछ व्यंग्य के साथ मुस्कराते हुए कहा, "तब फिर लोग भी उसे एक रोचक या अरोचक कोरे उपन्यास की तरह पढ़ कर अलग रखदें तो शिकायत की कोई बात न होगी। क्या आप समझते हैं कि आप केवल एक उपन्यास ही लिख रहे हैं, और इसके बाहर हमारे नये नगर के निर्माण-कार्य में कोई क्रियात्मक हाथ नहीं बटा रहे हैं?"

"वह मैं अवश्य कर रहा हूँ, लेकिन मुझे अपने उपन्यास की भी चिन्ता है, उस बड़े काम के अन्तर्गत यह कितनी भी छोटी चीज़ क्यों न हो। मेरा अनुरोध है कि यदि आप अपने भविष्य दर्शन के बल पर उस नये नगर का कुछ भी वास्तविक

रूप अभी देख सकते हैं तो उसकी थोड़ी-सी झाँकी मेरे उपन्यास में जोड़ने के लिए अवश्य दें।" मैने अनुरोध के सुदृढ़ स्वर में कहा।"

"मैं देखता हूँ कि मुझे कुछ और हारना पड़ेगा" वेंकटाचलम् ने हँसते हुए कहा, "मेरी राय है कि आप इस उपन्यास का नाम 'नया नगर' न रख कर 'नये नगर के सूत्रपात की कहानी' या इसी अर्थ में 'नये नगर की कहामी' रक्खें और उस छोटे नाम को अपने अगले उपन्यास के लिए सुरक्षित रहने दें।"

"मुझे यह संशोधन स्वीकार है, फिर भी मैं अपना अनुरोध वापस नहीं ले सकता।" मैंने कहा।

"आपने अपने उपन्यास की रूप-रेखा तो बना ली होगी। उसमें कितने अध्याय होंगे?"

"अब तक की बातें बीस परिच्छेदों में पूरी होंगी।" मैंने बताया।

वेंकटाचलम् ने अपनी पेंसिल और काग़ज़ का पैड उठा लिया और सामने आकाश के एक विन्दु पर दृष्टि जमा कर, मानो वहाँ लिखे किसी लेख को पढ़ने का उपक्रम करते हुए, लिखना प्रारम्भ किया। उसने मेरे ही ढंग पर संख्यांकन करते हुए लिखा :

[२१]

मैत्री क्लब का अगले वर्ष का शिविर-सम्मेलन नये नगर की भूमि पर ही अक्तूबर मास में पूरे एक महीने का हुआ। कई पत्रों में उसकी चर्चा हुई। बम्बई के एक प्रसिद्ध साप्ताहिक ने लिखा :

"दिल्ली से बीस मील दक्षिण-पूर्व यमुना के समीप कुछ साधन-सम्पन्न युवकों की एक संस्था ने एक नये प्रयोग का प्रारम्भ किया है। उन्होंने छह वर्गमील के लगभग भूमि खरीद ली है और उस पर बड़े पैमाने पर ईंटें बनाने का काम प्रारंभ कर दिया है। स्थानीय सरकार के भवन-निर्माण विभाग ने इसका ठेका उन्हें दे दिया है। बीस के लगभग छोटे-छोटे घर उन्होंने वहाँ अपने बना लिये हैं और वे शीघ्र ही इसे एक अच्छी कालोनी का रूप देने की आशा करते हैं। सड़कें बनाने और खेती के लिए नई भूमि तैयार करने का भी काम उन्होंने प्रारम्भ कर दिया है और इनके तथा बड़े पैमाने की खेती के लिए आधुनिक अच्छे यंत्र उनके पास मौजूद हैं। इस नई बस्ती में संस्था के दस-बारह सदस्य स्थायी रूप से रहने लगे हैं और वे लगभग सौ मज़दूरों की एक टोली साथ रख कर यह काम कर रहे हैं।

"इस संस्था के संचालक एक स्वामी वेंकटाचलम् और उनकी नवयुवा पत्नी (?) हिमदारानी हैं। हिमदारानी ने इन्हीं दिनों नर्तकी के रूप में कुछ विशेष ख्याति प्राप्त की है। इन लोगों के उद्देश्य विचित्र और केवल कल्पना में ही चरितार्थ हो सकने वाले जान पड़ते हैं। ये एक नई मानवता का निर्माण करना चाहते हैं और इसके लिए किसी भी शास्त्रीय या नैतिक विधान के अनुसरण को तथा विश्वासों की एकता को भी आवश्यक नहीं समझते। इस नव निर्माण के लिए ये पहले एक नया नगर बसाना चाहते हैं और यह कारखाना और बस्ती उसी का आरम्भ है। इन लोगों की संख्या चार सौ के लगभग है और इनमें अधिकतर विवाहित

दम्पति ही हैं। इनमें कुछ लोग अच्छे कलाकार और कुछ विशेष धन-सम्पन्न भी हैं। एक संशोधित साम्य-समाजवादी, किन्तु अव्यावहारिक सीमा तक उदार शैली पर ये एक नये समाज का निर्माण करना चाहते हैं और इनका विश्वास है कि इस प्रकार का प्रयोग संसार को युद्ध से विमुख कर शान्ति-पूर्ण विश्व-नागरिकता की स्थापना के लिए एक प्रारंभिक और आवश्यक पग है और ऐसे प्रयोगों के बिना मनुष्य के हृदय में स्थायी शान्तिका सूत्रपात नहीं हो सकता।

"गत अक्तूबर मास के ३१ दिन तक इस संस्था का वार्षिक शिविर-सम्मेलन इसी स्थान पर हुआ। यह उसका तीसरा सम्मेलन था। पिछला सम्मेलन आगरे में केवल चार दिन और उससे पहले का बनारस में दो दिन का हुआ था। लगभग दो सौ व्यक्ति इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए, जिनमें स्त्रियों की संख्या पुरुषों से कुछ ही कम थी।

"बने हुए घरों के गिर्द कुछ नये डेरे इस सम्मेलन के लिए लगाये गये थे। बन-भ्रमण या नौका-विहार, सहभोज और सान्ध्य-सभा इन लोगों का दैनिक कार्यक्रम था। इन सान्ध्य-सभाओं में भाषण और प्रश्नोत्तर वार्ता के अतिरिक्त कभी-कभी संगीत, नृत्य और साहित्य-गोष्ठी का भी आयोजन रहता था। इस सम्मेलन की दैनिक न्याय-सभा सम्भवत: इसकी सबसे अधिक रोचक और नई वस्तु थी। प्रति दिन प्रातः ८ से ११ बजे तक यह न्याय-सभा जुड़ती थी, जिसमें नागरिकों के बीच भांति-भांति के झगड़ों के मुकदमे बना कर लाये जाते थे और नियुक्त न्यायाधिकारी उनकी जाँच और न्याय करते थे। ये मुकदमे प्रायः अनुचित संग्रह, अधिकार, संदेह और वैमनस्य

के, अथवा नैतिक एवं आचारिक अपराधों के अभियोग होते थे, और न्याय-सम्बन्धी इनकी नवीन मान्यताओं के आधार पर इनके फैसले भी विचित्र होते थे। सिद्ध हुए अपराधी को प्रायः अपने प्रतिवादी का किसी न किसी प्रकार का प्रकट सत्कार करने का दण्ड दिया जाता था। साधारणतया किसी भी अपराध की अपेक्षा अपराध को क्षमा न करना अधिक बड़ा अपराध माना जाता था। व्यक्तिगत सम्बन्धों के मामले में किसी की इच्छा के विरुद्ध उस पर बल-प्रयोग सबसे बड़ा अपराध माना जाता था और उसका अंतिम दण्ड देश-निकाला था।

"इस संस्था के सदस्यों में अभी लेखक, कलाकार आदि बुद्धि-जीवी वर्ग के लोग ही अधिक हैं और कुछ धनिक वर्ग के नवीन सुधारवादी युवक भी हैं। इनका अनुमान है कि अगले दो वर्ष के भीतर यह स्थान एक छोटी-सी बस्ती के रूप में बस जायगा, और अगले बीस-बाईस वर्षों में ही एक अच्छे नगर का रूप धारण कर लेगा।

"इस भूमि की पूर्व और पश्चिम की सीमाओं के प्रवेश द्वारों पर, मार्ग के किनारे जो लेख-स्तम्भ लगे हुए हैं उन पर बड़े अक्षरों में नया नगर का नाम लिखकर नीचे उसका मोटो हिन्दी और अँग्रेज़ी में इस प्रकार अंकित किया गया है :

नया नगर

NAYA NAGAR

जियो और जीने दो	Live and Let Live
प्रेम करो और प्रेम करने दो	Love and Let Love
चमको और चमकने दो	Shine and Let Shine

"मानव सम्बन्धों के परिष्कार का प्रयोग करने वाली इस संस्था के प्रति हमारी रुचि और सहानुभूति है। पर हम इन्हें इतनी चेतावनी अवश्य देना चाहते हैं कि ये अपने सिद्धान्तों और प्रयोगों को व्यावहारिकता और हमारी प्राचीन धर्म-सम्मत नैतिकता के विपरीत उस सीमा तक ले जाने की भूल न करें जहाँ इन्हें विफलता और लोकापवाद का ही मुँह देखना पड़े।"

वेंकटाचलम् ने यह काग़ज़ मुझे देते हुए कहा :

"यह आपके उपन्यास का अंतिम परिच्छेद हो जायगा। आज हम कुछ समय के लिये बिदा हो रहे हैं, लेकिन फिर मिलेंगे। हम सबको मिलकर बहुत काम करना है। आप आज से बिलकुल अकेले भी नहीं हो जायेंगे, क्योंकि एक नये अभ्यागत मित्र-दम्पति का साथ आपको मिल गया है। इस बीच आप अपना उपन्यास भी तैयार कर लेंगे।"

वेंकटाचलम् से विदा लेकर मैं अपने कमरे की ओर चल दिया। स्वजनों के विछोह के एक पीड़ांतक झोंके के साथ शीघ्र ही मैंने एक नई स्फूर्ति का भी उसी क्षण अनुभव किया, और इसी बीच मैं उसे ही रह-रह कर बढ़ती और अपने भीतर काम करती देखने लगा हूँ।

हिमदा

राजा

रंजन

तारकेश

रावी

में से किसी को, या किसी से मिलते-जुलते किसी व्यक्ति को आपने देखा है? या आप स्वयं उनमें से किसी के जैसे (या जैसी) हैं? इनमें से चार को (दिवंगत राजा को छोड़ कर) अपने अपने अनुरूप एक-एक और व्यक्ति की खोज है और उनमें से किसी को भी पत्र लिखने के लिए आप स्वतंत्र एवं निमंत्रित हैं।